हेमराज बंसल की

कहानियाँ

visit www.bansalsahitya.com for more books written by Hemraj Bansal

Web Development and PDF Publishing by : GB LABS
visit us at www.gblabs.net

धड़ प्रत्यारोपण तकनीक

विज्ञान फंतासी कथा

गुरुवार दिनांक 9 मार्च 2028। सायं चार बजे मेरे नैनों मल्टीपल कम्प्यूटर पर मेरे बैंगलोर में पढ़ने वाले नाती चिंटू का पीं पीं की आवाज के साथ एक संदेश उभरा। उसने मुझे शरीर विज्ञान केन्द्र बैंगलोर का वेब पता देकर उसकी नव विकसित धड़ बदल तकनीक का अध्ययन करने का सुझाव दिया है। मेरे एन.एम.सी को मैं जेबी यंत्र कहता हूं,। यह मेरे पोते ने मुझे मेरे पिछले जन्मदिन पर उपहार में दिया था। इस यंत्र में फोन, कैमरा, टी.वी., फैक्स, इंटरनेट आदि अनेकों सुविधायें हैं। मैंने तुरंत ही वेबसाइट खोली और एक सांस में ही पूरा विवरण पढ़ गया। वाकई यह खोज तो मेरे बहुत काम की है। मैंने तुरंत ही नाती को फोन लगाया और बाकी जानकारी ली।

'अभी केवल सौ लोगों पर ही यह प्रयोग किया जाना है और जो पहले फार्म भरेगा उसके अवसर ज्यादा हैं। मामू आप फटाफट एप्लीकेशन फीड करें। इधर मेरा कुछ जुगाड़ है। आपका नम्बर तो मैं लगवा ही दूंगा।'

मैंने फोन बंद कर तुरंत ही अपना बायोडाटा एवं आवेदन पत्र में मांगी गई जानकारी मय फोटो के इंटरनेट पर डाल दी। लाइनें व्यस्त जा रही है, मुझे मेरा पंजीयन क्रमांक कुछ देर बाद मिलेगा। अब मेरा दिमाग मेरे मित्रों एवं रिश्तेदारों की तरफ दौड़ने लगा जो इस योजना के अंतर्गत फायदा उठा सकते हों। मैंने अपने मित्रों पवन, रमण, सुरेन्द्र व रमेश को इसकी जानकारी दी। उन्हें एकाएक इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और बहस करने में बहुत समय जाया हो गया। मैंने उन्हें तुरंत ही जन्म प्रमाणपत्र, त्रिआयामी फोटो, आयकर फैसले की प्रति, अनिवार्य स्वास्थ्य परीक्षण की रिपोर्ट तथा अपना पहचान पत्र लेकर मेरे घर आने के लिये कह दिया।

हम मित्रों का दिमाग अभी सक्रिय है तथा हम सबकी उम्र वेबसाइट में चाही गई 70 से 75 साल के बीच की है। आधे घंटे में मेरे चारों साथी मेरे घर पहुंच गये। मैं उनके बायोडाटा क्रमशः इंटरनेट पर डालता रहा। इसी बीच हमारी मजाकबाजी भी चलती रही। पवन ने कहा, 'ऐसा हो जायेगा तो मजा आ जायेगा। मैं तो अपनी डोकरी का भी धड़ बदलवा लूंगा। पैसा चाहे कितना ही लग जाये।'

पैसे की बात आते ही रमेश बोल उठा, 'देखो तो इसमें खर्च कितना आ रहा है।'

'अरे मैं यह तो देखना ही भूल गया।'

मैंने सर्क्यूलर को फिर पूरे मनोयोग से पढ़ा। खर्च का कोई जिक्र नहीं है। हम मित्रों की मजाकपट्टी शुरु हो गई।

'गणेशजी को भी ऐसे ही सिर बदला गया था।'

'हां, और ऋषि दध्यन्त को तो अश्विनीकुमारों ने पहले घोड़े का सिर लगाया था। संजीवनी विद्या सीखने के बाद जब श्राप के प्रभाव से घोड़े वाले सिर के सौ टुकड़े हो गये तो असली सिर लगा दिया।'

'अब विज्ञान की तरक्की देखकर तो पुराणों की सब बातें भी सही लगने लगी है।'

'पर एक बात समझ में नहीं आई, यह इतना बड़ा आविष्कार भारत में ही क्यों हुआ?'

'क्योंकि भारत के इतिहास में यह परिकल्पना पूर्व में ही मौजूद थी।'

'मेरे दिमाग में एक सवाल आ रहा है।'

पवन विज्ञान का विद्यार्थी था। मैं समझ गया इसके सवाल का जवाब देना भारी पड़ेगा।

'क्या?' फिर भी मैंने पूछा ही।

'किसी भी प्राणी का दिमाग ही उसका नियंत्रण करता है। यदि गणेशजी का सिर बदल कर हाथी का लगाया गया तो उन्हें लड्डू के बजाय गन्ना खाना ज्यादा पसंद होना चाहिये था। दध्यन्त ऋषि का सिर हट गया तो उन्हें विद्या क्या हृदय से याद रही?'

सवाल वास्तव में विचारणीय है। हम पुनः वेबसाइट देखने लगे। हमें प्रयोगशाला में इस काम के लिये बना कर रखे धड़ त्रिआयामी चित्रों के रूप में वेब के पटल पर दिखाई दिये। धड़ नीले पारदर्शी से बने हुये हैं। उनके अंदर हड्डियां तथा नसें साफ दिखाई दे रही हैं। शायद इनमें रक्त नहीं है। होगा तो सफेद या नीले रंग का होगा। अब वैज्ञानिकों ने कृत्रिम खून बना ही लिया है। भारत में हैदराबाद में खून की एक फैक्ट्री में उत्पादन शुरु हो चुका है। रक्तदान अब इतिहास की बात हो चुकी है। कुल आठ धड़ बना कर रखे गये हैं। आगे धड़ पर मानव सिर लगा कर उसे चलते हुये दिखाया गया है। यह दृश्य हमें अच्छा नहीं लगा। नकली से असली का मिलान जमा नहीं। रमण ने कहा, 'नकली धड़ तो कपड़ों से ढक ही जायेगा। हाथों में भी दस्ताने पहन लो। इसमें कौन सा पसीना आयेगा?'

'पसीना नहीं आयेगा तो बीमारी भी नहीं होगी।'

'और क्या क्या नहीं होगा सब देखना पड़ेगा। पूरी जानकारी लेकर ही आगे बढेंगें। अभी तो इंटरनेट का ही पैसा लग रहा है।'

केन्द्र की भावी योजना के तहत नकली सिर भी बना कर प्रदर्शित किये गये हैं। ललाट पर एक प्लेट सी चिपकी हुई है। यह कम्प्यूटर चिप है जो असली मानवीय दिमाग की सारी याददाश्त अपने में भर लेगा। अभी सरकार ने सिर बदलने की अनुमति नहीं दी है। इससे कई कानूनी समस्यायें पैदा हो जायेंगी।

पैसे की बात आते ही पुनः चर्चा अर्थ की ओर मुड़ गई।

'हमारा असली धड़ लेकर ही तो कृत्रिम धड़ लगायेंगें। हमारे सारे अंग प्रत्यंग हड्डियां, चमड़ी, रक्त, सभी तो कीमती हैं।'

सुरेश ने आशंका प्रकट की, 'मुफ्त होगा तो क्या हमारा नम्बर आयेगा? नेता, मंत्री, अफसर सब ले जायेंगें।'

'ये बड़े लोग अपने ऊपर परीक्षण करवायेंगें क्या? शहीद होने के लिये तो आम जनता ही है।'

हमारी बहस चल ही रही थी कि मेरे एन.एम.सी. पर संदेश उभरा। शरीर विज्ञान केन्द्र बैंगलोर भारत से मेरा रजिस्ट्रेशन नम्बर एस. वी. के. 089713 मिला है। मेरे से पूर्व भी मात्र बीस मिनट में इतने लोग पंजीयन करा चुके हैं। ताज्जुब है, दुनिया कितनी तेजी से भाग रही है।

मेरे कमरे की घंटी बजी। रेस्तरां से मेरे आर्डर का नाश्ता– अंकुरित उबले हुये मूंग, सिके हुये जौ–चने का छिलका रहित सत्तू, गर्म दूध, चीनी तथा चाय के पाउच और समुद्र के साफ किये पीने के पानी की तीन बोतल तथा मीठे में ताजा फलों का रस आया है। इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही गेंहूं व चावल का उत्पादन बढ़ाने के चक्कर में हमारा सारा पेय जल समाप्त हो गया है। सामान संभाल कर मैने बिल पर हस्ताक्षर कर दिये। मेरे एस.बी.आई खाते से उसे सीधा भुगतान मिल जायेगा। हम गपशप के साथ नाश्ता करने लगे। उधर मेरे एन.एम.सी. पर

आये संदेशों के अनुसार– पंजीयन देरी से भरने या अधूरा बायोडाटा फीड करने के कारण मेरे चारों दोस्तों का ही पंजीयन नहीं हो सका।

'खेद है हमारे एक लाख पंजीयन पूरे हो जाने के कारण आपको पंजीकृत नहीं किया गया है। भविष्य में आपके लिये स्थान सुरक्षित रहेगा।'

मित्रों के जाने के बाद मैं सोने चला गया। रात नींद बहुत कम आई। बात पेट में पच नहीं रही थी। सुबह होते होते मैंने पत्नि को धड़ बदल तकनीक की बात कह ही दी। छूटते ही पत्नि बोली, 'क्या रात भर उल्टे सीधे सपने देखते रहते हो।'

'हां बात तो सपने देखने जैसी ही है। पर विज्ञान के इस युग में कुछ भी असंभव नहीं है। दोपहर में हम दोनों इंटरनेट देखेंगें।'

प्राणी मरणशील है। इस सनातन सत्य को सब जानते हैं। फिर भी सब ज्यादा से ज्यादा जिंदा रहने का भरसक प्रयास करते हैं। मैने न्यूयार्क के 'ह्यूमेन बॉडी आइस ममी सेन्टर' से भी जानकारी ली थी। वे मेरे शरीर को दस लाख डालर में पचास साल तक फ्रीज करके रखने को तैयार हैं। पर मैं यदि तब जिंदा नहीं निकल सका या मेरे रिश्तेदारों ने मुझे नहीं निकलवाया तो मैं क्या कर लूंगा? और फिर पचास साल बाद अपनों के बिना इस धरती पर मन लगे न लगे। मैंने इस विकल्प को छोड़ कानूनी रूप से अवैध अपना क्लोन बेटा बनवा लिया था। शायद उसकी उत्पति में नारी का अंश न होने के कारण वह अत्यन्त क्रूर तथा जिद्दी स्वभाव का था। उसके उत्तेजित हो खूंखार हो उठने पर उसे सुलाने के लिये डाक्टर की सलाह पर एक इंजेक्शन लगवाते थे। एक दिन उसे इंजेक्शन लगा कर सुलाया तो वह उठा ही नहीं। गुपचुप दाह संस्कार किया। उसके जाने का मुझे अफसोस भी नहीं हुआ। अब कई सालों बाद लंबी आयु पाने का यह नया तरीका आया है।

एक सप्ताह बाद मुझे खुशखबरी मिली ही। कोटा के मेडिकल कालेज में बैंगलोर से कुछ धड़ व सिर आये हैं। वहां दिये जा रहे सामूहिक प्रशिक्षण में मुझे भी बुलवाया गया है। मैने अगले दिन प्रथम बैच में शामिल होने की स्वीकृति प्राप्त कर ली। परिवार में वाहन के रूप में मात्र 82 किलो वजन वाली प्लास्टिक तथा एल्यूमिनियम से बनी हैलीकार है जो तरल हाइड्रोजन या बैटरी की ऊर्जा से उड़ती है। बैटरी मानव शक्ति, घरेलू बिजली और सूर्य की रोशनी से चार्ज होती है। कार मकान की छत पर खड़ी की जाती है। सौर ऊर्जा पैनल से दिन भर बैटरी चार्ज होती रहती है। इस बैटरी की बिजली का उपयोग कई बार हम घरेलू कार्यों में भी कर लेते हैं। इस समय बिजली बनाना या बचाना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। बरसात में हम व्यायाम कक्ष से बैटरी को जोड़ देते हैं। हमारी ऊर्जा बैटरी में संग्रहित होती रहती है। मैं निर्धारित दिन 18 मार्च 2028 शनिवार को प्रातः 7.30 पर कोटा मेडिकल कॉलेज में निर्धारित कक्ष के बाहर पहुंच गया। देश की लेटलतीफी के यहां भी दर्शन हुये। यहां के स्टॉफ की हम बूढों के प्रति बेरूखी और बदतमीजी बर्दाश्त के बाहर थी। वहां प्रदर्शित सूचना के अनुसार अभी 20 लोगों को आना था पर साढे आठ बजे तक हम बारह विद्यार्थी ही पहुंच पाये। कक्षा कक्ष साफ सुथरा और पूर्णतः वातानूकूलित था। युवा प्रोफेसर के आते ही अच्छे बच्चों की तरह हमने उनका खड़े होकर सम्मान किया। हमारे पंजीयन जांचने के बाद प्रोफेसर ने शरीर विज्ञान तकनीक पर हिन्दी में भाषण शुरु किया।

'हमारा धड़ सिर को रक्त पहुंचाने का कार्य करता है। यदि किडनी, फेंफड़े, यकृत, ह्रदय आदि अंगों में से कोई काम करना बंद कर दे तो मस्तिष्क को रक्त नहीं मिल पायेगा और प्राणी की मृत्यु हो जायेगी। वर्तमान में कानून दिमागी मृत्यु को मान्यता देता है न कि ह्रदय की मृत्यु को। विज्ञान ने आज सभी अंग पृथक से भी विकसित कर लिये हैं और जीवन बचाने के लिये उनका प्रत्यारोपण भी किया जा रहा है। कई बार धड़ कृत्रिम अंगों को स्वीकार नहीं करते। ज्यादा बीमारियां होने पर पूरा धड़ ही बदला जाना ज्यादा कारगर हो सकता है।'

सामने लगे ग्लोबल बोर्ड पर उससे संबंधित फोटो लगातार चल रहे थे। जिससे हमें सारी बातें तुरंत समझ में आ रही थी। अंत में हमें अंधेरे कक्ष में ले जाया गया जहां कांच के छोटे कक्ष बनाकर पांच धड़ एवं एक सिर रखा गया था। इनकी ही फोटो हमने इंटरनेट पर देखी थी। हम सब आश्चर्यचकित थे। हमारे जेहन में कई सवाल आ जा रहे थे। प्रोफेसर भी इस बात को जानते थे। उन्होंने हमें सवाल पूछने का अवसर दिया। मैंने पूछा, 'इसमें हमारा कितना खर्चा होगा?'

'कुछ नहीं। विज्ञान केन्द्र को प्रयोग एवं अनुसंधान के लिये बजट केन्द्रिय सरकार दे रही है।'

'क्या हम इसमें से धड़ छांट कर ले सकेंगें?'

'नहीं, धड़ तो कम्प्यूटर ही सेट करेगा।'

'क्या मेरा ह्रदय रोग नये धड़ में ठीक हो जायेगा।'

'इस मानवीय शरीर में होने वाला कोई भी रोग नये धड़ में नहीं होगा।'

'और हमारी ऊर्जा जरूरतें?'

'बस वही साधारण भोजन पूरी करेगा। कितना भी खाओ, जितनी जरूरत होगी उतना पाचन होगा बाकी यह शरीर निकाल देगा। वजन घटने बढ़ने का कोई खतरा नहीं है।'

मेरा ध्यान वहां रखे नकली सिर की ओर जा रहा था। मैंने पूछा, 'यह किसलिये है'।

'यह हमारी भावी योजना है। कई बार मानव धड़ तो सही रहता है पर दिमागी बीमारियों के कारण मृत्यु हो जाती है। दुर्घटना में सिर में चोट लगना, मस्तिष्क का कैंसर आदि में हम सिर बदल कर इंसान को जिंदा रख सकेंगें।'

'पर अभी तो आपने कहा था कि दिमाग मरने पर इंसान की मृत्यु मानी जाती है। मै चक्कर में पड़ रहा हूं। आखिर हमारा जीव जिसे हिन्दु धर्मग्रंथों में जीवात्मा कहा गया है, वह कहां रहता है। ह्रदय में या मस्तिष्क में।'

'आपका सवाल अच्छा है। हम भारतीय इस प्रयोग में सिर्फ इसीलिये दुनिया से आगे बढ़ पाये कि हम आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते थे। हमारे ऋषि मुनि पुराना शरीर त्याग कर जवान शरीर में प्रवेश कर लेते थे। हमारे वैज्ञानिकों ने इसी पर अनुसंधान किया और अब हमने आत्मा पर कुछ नियंत्रण कर लिया है। आत्मा अंतिम क्षण तक इस शरीर में रहती है। शरीर को पूरा समाप्त नहीं होने देगें तो आत्मा नहीं निकलेगी। आप लोगों ने गणेशजी को हाथी का सिर लगाने वाली बात तो सुनी ही होगी। सिर कटने के बाद भी शरीर में आत्मा रही और हाथी का सिर लगते ही गणेशजी जिंदा बच गये। हमारे अनुसंधान पर विश्व में बहस छिड़ी हुई है। कुछ दिनों में विश्व स्वास्थ्य संगठन इस पर अपना निर्णय देगा। पक्ष में निर्णय आने पर ही सिर बदलने को कानूनी मान्यता मिल सकेगी।'

मुझे पवनजी के सवाल का जवाब मिल गया है। मैने पूछा, 'पर इन सिरों से पहचान कैसे होगी।'

'इस सिर को मनचाहा आकार दिया जा सकता है।'

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

'अच्छा तो फिर मेरे सिर जैसा बनाकर दिखाओ।'

प्रोफेसर ने मुझे एक छोटे केबिन में खड़ा किया। चारों तरफ से बिजलियां कौंधी और मुझे बाहर निकाल दिया गया। मैं वापस अपनी मेज कुर्सी पर आ बैठा। प्रोफेसर ने कुछ बटन दबाये और श्वेत बोर्ड पर कुर्सी पर बैठे धड़ का चित्र उभरा।

'अब देखिये यह धड़ कैसे काम करता है।'

उधर की बोर्ड पर बटन दबते गये और हम शरीर को उठते–बैठते, अंगड़ाई लेते, चलते, व्यायाम करते, हाथ हिलाकर टाटा करते देखते रहे। चुस्ती फुर्ती नौजवानों की तरह।

'अपना शरीर ऐसा जवान हो जाये तो कहना ही क्या?' मै मन ही मन सोचने लगा। इतने मे ही बोर्ड पर मेरे सिर का चित्र उभरा। चेहरा हूबहू।

'बंसल जी देखिये आपका सिर बनकर आ गया है।'

'पर ये चोट का निशान और ये चश्में से बने काले दाग मिट सकते हैं क्या?'

'हां, हां, क्यों नहीं? पर इसका बिल आपको भुगतान करना पड़ेगा।'

मैंने स्वीकृति दी। प्रोफेसर ने कुछ प्रयोग किया और फिर मेरा जवान गौरा चेहरा सफेद ग्लोबल बोर्ड पर दिखाई दिया।

'यह पसंद आया।'

'हां, बहुत अच्छा है। क्या मैं अपने एन.एम.सी में इसका फोटो ले सकता हूं?'

'हां हां, क्यों नहीं? और यह बिल 45 रु. या 70 डालर या 36 यूरो।'

भारत की उन्नति के साथ ही रुपये का मूल्य बढ़ता गया और आज विश्व में 45 रु. में 70 डालर या 36 यूरो आ जाते हैं। भारतीय स्टेट बैंक पूरे विश्व में सबसे बड़ा बैंक बन कर उभरा है। जिसके मार्फत् विश्व में कहीं भी भुगतान किया जा सकता है।

मैंने फोटो मेरे कम्प्यूटर (एन. एम. सी.) में डाला एवं बिल में रु. के आगे निशान लगाकर अपने एस.बी.आई बैंक का नम्बर तथा मेरा खाता नम्बर लिख कर हस्ताक्षर कर दिये। मेरे साथ बैठे अन्य साथी विद्यार्थियों ने मेरी इस फिजूल खर्ची पर मेरी मजाक की।

कोटा के ही बुजुर्ग साथी ने जो प्रोफेसर की कालोनी में ही रहता था तथा जिसकी प्रोफेसर के दादाजी के साथ उठ बैठ थी, ने कृत्रिम धड़ों को छू कर देखने की इच्छा प्रकट की। हम सब पुनः कांच के कक्ष में गये और कक्ष का दरवाजा खोला गया। सभी ने धड़ छू–छू कर देखे। गुदगुदे से और संगमरमर की तरह नरम। किसी ने पूछ ही लिया, 'क्या प्राण आने के बाद यह चमड़ी कुछ महसूस करेगी?'

प्रोफेसर ने बताया 'अभी विज्ञान चमड़ी में प्रकृति जैसा संवेदना तंत्र विकसित नहीं कर पाया है। हां चोट लगने या दबाव पड़ने पर मस्तिष्क प्रतिक्रिया करेगा।

'पर प्यार दुलार स्पर्श महसूस नहीं होगा।'

'हां ये धड़ केवल मानव मस्तिष्क को बिना तकलीफ के उचित मात्रा में रक्त पहुंचाने के लिये ही विकसित किये गये है।'

'यदि इसमें कहीं चोट लग जाये, या दुर्घटनावश कोई टूटफूट हो जावे तो?'

'तो हमारे पास इसका कोई इलाज नहीं है। बैंगलोर शरीर विज्ञान केन्द्र में ही जाना पड़ेगा।'

हम वापस आकर अपनी मेज कुर्सी पर बैठ गये। हमारा समय समाप्त हो रहा है। बाहर दूसरा दल इंतजार कर रहा है। प्रोफेसर ने हमारे सामने फार्म रख दिये हैं। 'यदि आप धड़ बदलवाने के लिये सहमत हैं तो कृपया फार्म पर निर्धारित स्थानों पर अपने हाथ एवं पैरों के अंगूठों के निशान लगायें तथा अपने हस्ताक्षर करें। हमने आपके फोटो पूर्व में ही ले लिये हैं।'

सबसे पहले मैंने जवाब दिया, 'बिना स्नेह के अहसास के जीना और कुछ टूटफूट हो गई तो बैंगलोर जाना, मैं बाद में बताऊँगा।'

मैं बिना हस्ताक्षर किये विभाग से बाहर आ गया। अपने उड़न खटोले में सवार होने के बाद मैने चालक को घर चलने का निर्देश दिया।

'जब तक हमारे गांव में साइकिल सुधारने वाले की दुकान नहीं खुली थी तब तक तो मैंने साइकिल ही नहीं बसाई थी।'

घर आकर मैं ज्योंही छत से नीचे आया, मेरा पोता चीखा,

'बाबा आ गये'।

वो विस्फारित नैत्रों से मुझे घूर रहा था। मैंने उसे गोद में उठाकर छाती से भींच लिया और तड़ातड़ उसके मुंह को चूमने लगा। पोता बोला,

'बाबा तो पुराने ही हैं, बा तो कह रही थी कि..।'

मैंने रुंधे गले से कहा, 'हां बेटे, मैं यह सुख नहीं खोना चाहता।'

मेरी आंखों से गिरे आंसू पोते के गालों को धोने लगे।

आहुति

उसे कई दिनों से बुखार हो रहा है। अब तो उसके पैरों में सूजन भी आ गई है। गांव में कहावत है कि पैरों में उल्टी सूजन आने के बाद आदमी बचता नहीं है। वह अपने छोटे से गांव बमोरी का छोटा किसान है। उसके पास पच्चीस बीघा सिंचित जमीन है। बस किसी तरह से परिवार का गुजर बसर चल रहा है। चार में से दो बेटे बेटी ही बच पाये थे। दोनों का ब्याह कर वह जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुका है। अब वह चला भी जाये तो कोई गम नहीं है। जिंदगी का कर्तव्य वह पूरा कर चुका है। पर यह बच्चे मानते कहॉ हैं? कल ही बेटा गुना डाक्टर को बता कर लाया है। जांच ही जांच में बहुत सारा खर्चा हो चुका है। अब उसे ग्वालियर ले जाने की तैयारी कर रहे हैं। जवांई जी शिवपुरी में नौकरी करते हैं और भगवान की दया से उनके पास सब कुछ है। भगवान ऐसे बेटे जवांई सभी को दे। पर जवांईजी के खर्चे पर तो वह इलाज नहीं करा सकता न? उसने बेटे दीनानाथ को बुलाया और अपने मन की व्यथा बताई।

''देख बेटे मैं जानता हूं तुम लोग मुझे कितना चाहते हो। तुम सबने मिलकर यथासंभव मेरी सेवा की है। अब लगता है मेरे जाने के दिन निकट आ गये हैं। जो बीमारी मुझे लग रही है उसमें मेरा बचना मुश्किल है। देख ऐसे ही पिछले पौष में ब्याईजी रतनलालजी को बीमारी हुई थी। जयपुर अस्पताल में तू भी कुछ दिन उनके साथ रहा था और एक दिन मैं भी उनसे मिलने गया था। डॉक्टर लोग आश्वस्त करते रहे पर क्या वे जिंदा वापस आ पाये? वो तो गये ही उनका पूरा परिवार मरने के बराबर हो गया। उनके इलाज में सरकारी अस्पताल में ही एक लाख रुपये खर्च हो गये। उनका परिवार आज रोटी–रोटी को मोहताज हो रहा है। बेटे ने कर्ज ले कर अपना फ़र्ज पूरा किया पर ईश्वर के आगे किसी की चली है क्या? मैं जानते–बूझते तुम्हारे पैर कैसे कटने दूं रे? अभी सरसों आयेगी भी कितनी? आढ़तिये का मूल सूद चुकाने के बाद क्या बचेगा? ये मेरे दो छोटे–छोटे पोते क्या खायेंगें? जमीन गिरवी रख देगा तो छुड़ायेगा कैसे? और बिक गई तो? नहीं जमीन तो हमारी माता है। मैं माता को नहीं बिकने दूँगा।''

''पिताजी आज आपको क्या हो गया है? कैसी बहकी–बहकी बातें कर रहे हो। आप ने हमें पालपोस कर बड़ा किया है। हमारी चमड़ी बेचकर भी हम आपका इलाज करवायेंगे। भगवान ने पेट भरने के लिये हाथ पैर दिये हैं न? मैं और आपकी बहू रात दिन मेहनत मजदूरी करेंगे। आप किसी प्रकार की चिंता न करें। आशा दीदी और जीजाजी अभी उनकी कार से आ रहे हैं। कल हमें सुबह जल्दी ही ग्वालियर के लिये निकलना है। वहॉ उनकी अच्छे डॉक्टर्स से जान पहचान है। भगवान के लिये आप यह दवा खा लीजिये और सो जाइये।''

उसने मन में कुछ निश्चय कर लिया था। तभी तो चुप रहने के बावजूद उसके मुंह से बार–बार निकल ही जाता था, 'रहने दे रे बेटे! मुझे शांति से मर जाने दे। मैं नहीं जाऊंगा कहीं भी यह घर छोड़कर।'

रात दस बजे उसके बेटी दामाद घर पहुंचे तब भी वह अर्द्धचेतना में यही राग आलापे जा रहे था। कुछ खातिरदारी के साथ ही बात. चीत का सिलसिला शुरु हो गया। उसने सुना, जवांई जी बता रहे हैं कि उसे गुर्दे की बीमारी निकलेगी। इलाज लम्बा चलेगा। इलाज महंगा भी है पर कोई चिंता की बात नहीं है। वे खर्चे की सब व्यवस्था कर लेंगें। बेटा दीनानाथ बस यही कह रहा था , 'हां, हमें कहीं से भी कर्ज दिलवा दो, पिताजी के इलाज में कोई कमी नहीं रहनी चाहिये। एक बार पिताजी ठीक हो जायें बस। मकान जमीन बेचकर भी कर्ज चुका दूंगा। पिताजी के इलाज का पैसा नहीं रखूंगा।' बेटी आशा भी बाप को लगातार तसल्ली दे रही थी, 'आप चिंता न करें पिताजी मैं अस्पताल में दिन–रात आपके साथ ही रहूंगी।'

'नहीं बेटी मैं तेरे से सेवा करवाऊंगा तो मुझे नरक में जाना पड़ेगा। तू तो मुझे कहीं मत ले जा। ठीक करना होगा तो भगवान यहीं कर देगा। ये अस्पताल कितने लोगों को बचा लेते हैं। अस्पताल और पैसे से ही आदमी बच जायें तो फिर सब अजर–अमर न हो जायें।'

रात कोई दो बजे तक बाप–बेटी में वार्ता होती रही। दीनानाथ व दामादजी तो रात ग्यारह बजे ही अलग कमरे में जाकर सो गये थे। आशा की मां भी बहुत दिनों की थकी–हारी आज बेटी के आने से कुछ राहत पा सोने चली गई थी। दो बजे बेटी की ऑख लगने लगी। उसने अब अपना काम शुरु किया। पुराने बक्से में से कागज पत्र निकाले व फाड़े। बच्चे की कॉपी के कागज पर कुछ लिखने का प्रयास किया पर कलम नहीं चली। रात में न जाने कब वह उठा और घर के बाहर निकला। एक अनजान, अनन्त यात्रा के लिये। घर के कपाट खुलने की आहट सुन पास ही सोई बेटी ने आवाज लगाई, 'कौन है?'

'मैं ही हूं री बेटी।'

'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं बस पेशाब करने जा रहा हूं।'

बेटी पूस की सर्दी में रजाई में दब कर अभी सोई ही थी। उसने न तो यह सोचा कि पेशाब करने के लिये वे बाहर ही क्यों जा रहे हैं और न यह सोच पाई कि इतनी कड़ाके की ठंड में बाहर निकलना पिताजी के लिये घातक हो सकता है।

सवेरे पांच बजे दीनानाथ आदत के मुताबिक सो कर उठा तो पिताजी के पलंग की ओर भी झांका। अरे यह क्या पलंग तो खाली पड़ा है। चौक से बाहर देखा तो घर का दरवाजा भी खुला हुआ था। किसी अनहोनी की आशंका से दीनानाथ का कलेजा जोर–जोर से धड़कने लगा। वह झट घर के बाहर निकला। गली में बीसेक कदम आगे बढ़ा। अरे यह क्या? यहां तो पिताजी गिरे पड़े हैं। ये यहां क्या करने आये? उसने जोर–जोर से आवाज लगाते हुये पिताजी को झकझोरा पर उनकी देह तो बर्फ जैसी ठंडी हो गई थी। थोड़ी ही देर में पूरे मोहल्ले में कुहराम मच गया। बेटी आशा को तो जैसे अपराध बोध से गश आ रहा था।

'मेरी लापरवाही से ही पिताजी मरे हैं। मैं क्यों नहीं उनके साथ उठी। उनको मैं बाहर निकलने से रोक सकती थी पर सोने में रह गई।' बेटी आशा दहाड़ें मार–मार कर रोये जा रही थी और बड़बड़ा रही थी, ''मेरी मां मुझे माफ कर दो।''

दीनानाथ सभी को समझाये जा रहा था, 'इसमें किसी का कोई कुसूर नहीं है पिताजी ने हमारे परिवार को सुखी देखने के लिये अपनी जान की आहुति तक दे दी।'

सूसाइडनोट

रमेशजी सोनी हमारी सर्राफा दुकान का जेवरात बनाने का काम करते थे। उनकी ईमानदारी और कारीगरी के कारण मेरे पिताजी उन्हें घर के सदस्य जैसा ही मानते थे। मैं उन्हें बचपन में काकाजी–काकाजी कहकर पुकारा करता था। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। मेरे पिताजी से भी ज्यादा। कई बार बाजार या उनके घर ले जाते और मुझे बहुत अच्छी–अच्छी चीजें खाने को दिलवाते। मैं जब बारह साल का था, न जाने कैसे उन्हें भगवान ने अपने पास बुलवा लिया। उनके घर में काकीजी और उनकी एक बेटी कोई आठ साल की; दो प्राणी ही रह गये थे। उस समय हमारी दुकान का बहुत सारा सोना चांदी उनके घर जेवरात बनाने के लिये रखा हुआ था। सबसे पहले काकीजी ने हमारा सारा सामान पूरी ईमानदारी से मेरे पिताजी को संभलवाया। मेरे पिताजी तथा मोहल्ले के लोगों ने मिलजुल कर उनके अंतिम संस्कार से संबंधित सारे काम निबटाये। बाद मे भी हमारे परिवार का जुड़ाव उनसे बना रहा। काकीजी को पिताजी ने सिलाई का काम दिलवाना शुरु कर दिया और दोनों मां बेटी अपना गुजारा करने लगे। उनके घर की छोटी–मोटी जरूरतों को पूरा करने के लिये पिताजी मुझे ही हमेशा उनके घर भेजते थे और भेजें भी किसे? मेरे भाई–बहन मेरे से छोटे थे। मेरा उस परिवार से और धीरे–धीरे उनकी बेटी से जुड़ाव बढ़ता गया। मुझे पता नहीं उस शीला नाम की लड़की ने मुझे भाई सा. कहते–कहते कब मनोहरजी कहना शुरु कर दिया। उसे स्कूल कालेज में दाखिले के लिये भी मैं ही लेकर जाता और हारी बीमारी में अस्पताल के चक्कर भी मैं ही लगाता। कुछ सालों में हम जवान हो गये और मुझे उसके पास जाने में कुछ संकोच लगने लगा पर वह लगातार मेरा सान्निध्य चाहने लगी। मुझ गाहे–बगाहे बुलाना और बहुत देर तक बिठा कर बातें करने में उसे पता नहीं क्या आनंद आता था? एक दिन तो उसने मुझ से कह दिया कि मैं उसे बहुत अच्छा लगता हूं। मैंने भी औपचारिकतावश कह दिया कि वह भी बहुत अच्छी है। चार पांच साल से उसने मुझे राखी बांधना भी बंद कर दिया था। उसकी मां के कहने के बाद भी उसने मुझे राखी नहीं बांधी। धीरे–धीरे मोहल्ले में बातें होने लगी और मेरी मां ने एक दिन मुझ से कहा कि मैं बिना काम वहां नहीं जाऊं। बेकार लोग शक करते हैं। मेरे पिताजी ने भी मेरे बजाय मेरे छोटे भाई या नौकर को उनके काम के लिये भेजना शुरु कर दिया। मैं सब बात समझ रहा हूं पर मेरा क्या कसूर? मैं जानता हूं जो वह सोच रही है वैसा हमारे समाज में और इस छोटे गांव में होना बहुत मुश्किल है। मेरा बचपन खेलकूद के बजाय परिवारिक जिम्मेदारियों में ज्यादा बीता है। पिताजी और उनके सयाने मित्रों की प्रेरणादायी बातचीत मैं सुनता रहता हूं। मेरा कोई भी गलत कदम हमारे परिवार की इज्जत को मिट्टी में मिला सकता है। मेरे छोटे भाई बहनों के विवाह संबंधों में अड़चन आ सकती है। मैं उससे दूरी बना कर रहने लगा। वह सदैव मेरे नजदीक आने के अवसर ढूंढती रहती। एक बार मैं शहर जाने के लिये प्लेटफार्म पर रेल का इंतजार कर रहा था तो वह आ गई। मुझे घर न आने के लिये बहुत उलाहना दिया। मैंने मजबूरी बताई। घरवालों को पता लगने की बात भी कही पर वह नहीं मानी। उसने मुझे कसम दी और कहा कि अगले दिन कॉलेज जाने के समय मैं उससे मिलूं। मेरा पूरे दिन काम में मन नहीं लगा तथा रात में भी नींद नहीं आई।

अगले दिन वह मेरा इंतजार कर रही थी। हम कालेज के उद्यान के एक कोने में कॉपियां और किताबें फैला कर बैठ गये। जैसे मैं उसे गणित के सवाल समझा रहा हूं। उसने कहा, 'तुम्हें पता है मैं तुमसे कितना प्यार करती हूं?'

'हां, पता है। पर हम किस गांव में रहते हैं यह तुम्हें पता है कि नहीं?'

'हम कहीं और भी तो चल सकते हैं?'

'भागकर? कितने दिनों का खर्चा चोरी करके ले जायेंगें? तुम तो जानती हो घर में जो भी रुपया पैसा है सब पिताजी के पास है। उसमें से छिपाकर कुछ रखना या चुराकर ले जाना क्या उनके विश्वास को तोड़ना नहीं होगा?'

'क्या ये सब चीजें प्यार से बड़ी है?'

'हां, अभी तुम अल्हड़ हो, नादान हो और मेरे में दुनियादारी आ गई है। मैंने शुरु से ही तुम्हारे को इस नजर से नहीं देखा। तुमने पता नहीं कब और क्यों ऐसा फैसला कर लिया?'

' 'मुझे भी पता नहीं। मैं तो दिल के हाथों मजबूर हूँ। मुझे तो लगता है यदि आपने मुझे नहीं संभाला तो मैं जी नहीं पाऊंगी।'

'ऐसा मत बोल बावली। हमें सिर्फ अपने लिये ही नहीं अपने परिवार और समाज के लिये भी जीना पड़ता है। तुम्हारी मां सिर्फ तुम्हारी खुशी के कारण नहीं जी रही क्या? क्या उसे अकेली छोड़कर चली जाना चाहती हो? तुम चाहे अपने परिवार का बंधन महसूस नहीं करो पर मैं तो उसमें बहुत ज्यादा जकड़ा हुआ हूँ।'

'आप एक बार अपने घर वालों से बात तो करो। मुझे विश्वास है आप की खुशी के खातिर वे मान जायेंगे। मैं मेरी मां को मना लूँगी।'

हमारी बहस बहुत चलती पर अन्य विद्यार्थियों का खलल आ गया। मैं उससे पीछा छुड़ाकर घर लौटा। मैं स्वयं उसके विचारों से सहमत नहीं था अतः माता–पिता या अन्य किसी से मैंने इस विषय में कोई चर्चा नहीं की।

मेरी औपचारिक पढ़ाई पूरी हो गई और मैं पूर्णरूप से दुकान का काम देखने लगा। एक दिन पिताजी ने मेरा संबंध तय कर दिया। मैं न तो शीला सोनी की बात किसी से कह पाया और न ही इस होने वाले संबंध के लिये मैंने ना–नुकर की। मन में शीला का भय जरूर था पर मैंने मेरी तरफ से कोई गलती नहीं की थी। चूंकि हमारे सोनीजी के परिवार से अच्छे रिश्ते थे इसलिये दस्तूर के वक्त शीला व उसकी मां को भी बुलवाया गया। शीला सिरदर्द के बहाने नहीं आई। दूसरे दिन सवेरे मैं सो कर उठा तो पता लगा कि शीला मर गई है। सुबह के चार बजे से ही मेरा छोटा भाई और मेरे पिताजी उसकी व्यवस्थाओं में लगे हुये हैं। डाक्टर को घर पर ही बुलवा कर दिखवाया गया है और स्वाभाविक मौत का प्रमाण पत्र लिया गया है। बाजार के लोगों ने मिल कर उसके दाह संस्कार के काम को भी निबटाया। मैं सुन्न मस्तिष्क, विचार शून्य, चार घंटे तक लगातार बिस्तर पर बैठा रहा। मेरा अनुज आया तो मैने पूछा ही,

'क्या हो गया?'

'कुछ खा लिया दिखता है। भाई सा. आपका नाम आ रहा है। उसकी मां बता रही थी कि मरने से पहले वह लगातार आपका नाम ले रही थी। यहां लोगों ने आपके टीके के दस्तूर और उसकी मौत में कोई संबंध जोड़ दिया है।'

'हां, हो सकता है संबंध हो पर इसका मैं क्या कर सकता हूं। वह नादानी छोड़ने को ही तैयार नहीं हुई थी।'

मैं सदमे में दो–तीन दिन तक घर के बाहर नहीं निकला। कुछ सामान्य होने लगा तो एक दिन खबर आई कि मेरा होने वाला साला

आज हमारे गांव आया हुआ है। वह समाज में कई जगह मेरे चरित्र के बारे में पूछताछ करता घूम रहा है। सात दिन बाद तो मेरे होने वाले ससुराल से चार पांच मुस्टंडे आये। उन्होंने मेरे पिताजी से झगड़ा करने का प्रयास किया पर पिताजी ने उनकी सब बात मान ली। उनका बताया पूरा खर्चा और सामान उन्हें दे दिया तथा चुपचाप मेरा रिश्ता टूट गया। विवाद कर समाज में बात और फैलाने से क्या फायदा? मैं निरपराध इस समाज द्वारा प्रताड़ित अब और नहीं जी पाऊंगा। मैंने अपने आंसुओ में डुबोकर यह पत्र इसलिये लिखा है कि मैं अपनी बेगुनाही सबको बता सकूं। अलविदा।

मुझे यह मुड़ा हुआ पत्र अखबारी रद्दी के बीच मिला था। मुझे बहुत उत्सुकता हुई ऐसी घटना हमारे यहां कब घटित हुई। पहले प्रेमिका द्वारा आत्महत्या और बाद में आठ दिन बाद प्रेमी द्वारा आत्महत्या। मैने प्रयास कर वह दुकान ढूंढ ही ली। एक युवक दुकान पर बैठा अपने साल–छः माह के बेटे को दुलार कर रहा था। मैंने जानबूझ कर कहा, 'क्या आप मनोहरलालजी हैं?'

मेरी आशा के विपरीत युवक ने जवाब दिया, 'हां'।

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर मैंने कहा,

''सुना है आपकी जिंदगी की कहानी बड़ी रोमांचक है। क्या आप उस कहानी को किसी अखबार को बेचना पसंद करोगे?''

मेरी बात सुनते ही वह आश्चर्यचकित रह गया। मैंने उसे कालेज समय में कालेज की वाटिका में ही बुलवा लिया। मेरी तो एक ही बात जानने की इच्छा थी कि सुसाइड नोट लिखने के बाद भी वह बच कैसे गया? यह सब पूछने के लिये उससे उसकी पूरी कहानी दुबारा सुननी पड़ी। अन्त में उसने बताया कि रात ग्यारह बजे मेरे कमरे की लाइट जलती देख कर मेरी मां ने मुझे आवाज लगा ली। मां की आवाज सुन मैंने मेरा पत्र पुराने अखबारों के बीच छिपा दिया तथा रस्सी का वह टुकड़ा पलंग के नीचे फेंक दिया जिससे मेरी फंदा लगाने की योजना थी। मां मेरे पास बैठ एक घंटे तक मुझे प्यार से आध्यात्मिक प्रवचन देती रही। इसके बाद वह मेरे कमरे में ही सो गई। मेरी मरने की तमन्ना अधूरी रह गई।

'लगता है मां ने अपने बेटे के मन के भाव ताड़ लिये थे और मां की सजगता से बेटे के जीवन की रक्षा हो सकी।' चलो यह तो बहुत अच्छा हुआ।

'क्या तुम फिर कभी शीला की मां से मिले?' मैंने पूछा।

''हां मैं गया ही, मेरा मन हल्का करने। मुझे अपराधबोध हो रहा था। मैं सबको समझाना चाह रहा था कि मैंने कोई गलती नहीं की है। काकीजी मुझे और उनकी बेटी दोनों को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने तो जाते ही मेरे से माफी मांगी।

'बेटा तुम्हारे परिवार के मेरे ऊपर बहुत एहसान हैं। मेरी बेटी की नादानी के कारण तेरी सगाई टूट गई इसका मुझे बहुत दुःख है। उसने मेरे से तुम्हारे से प्रेम के बारे में चर्चा की थी। मैंने उसे बहुत समझाया। आप लोगों के अहसानों का हवाला दिया पर कहते हैं न कि प्रेम तो अंधा होता है उसमें भी किशोरावस्था का प्रेम। उसने आसमान की ओर देखना नहीं छोड़ा। उसने अपनी जान तो दी ही यहां हम सबको भी समाज में मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ा। मैं तो शर्म के मारे उस दिन के बाद से आजतक घर से बाहर भी नहीं निकली हूँ। अब क्या मुंह लेकर आप लोगों से किसी सहायता की आशा करूंगी? कुछ समझ नहीं पा रही हूं, अब बाकी जिंदगी किस तरह गुजरेगी? मुझे तो सच कहूं बेटा तेरे यहां आने पर ही बहुत खुशी हुई है। मुझे तो उम्मीद ही नहीं थी कि इतना होने के बावजूद आप लोग मुझ से नफरत नहीं करेंगे। आप बहुत महान् हो बेटा।'

काकीजी ने उस दिन मेरे से बहुत बातें कही। मेरी और मेरे परिवार की बहुत तारीफ कर मेरा मन जीत लिया। आगे जाकर समय आने पर उन्होंने ही मेरे ऊपर लगे दाग को धोया। ईश्वर की कृपा से अगले साल ही मेरी शादी हो गई और मेरा बच्चा तो आपने सुबह देखा ही था।''

'चलो अंत भला तो सब भला। मुझे तो ताजुब्ब यह है कि तुम्हारी चिठ्ठी को मेरे पास पहुंचने में दो साल करीब लग गये। यह लो तुम्हारा सुसाइड नोट! बहुत अच्छा लिखा था बच्चों को हिंदी पढ़ाने के काम आयेगा। आगे से पत्रों पर तारीख डालना मत भूलना।

मेरा नाम मनोहरलाल है। मेरे पिताजी का नाम भरत जैन है। मैं अपने अंतिम समय में पत्र लिखकर जा रहा हूं ताकि मेरे मरने के बाद मेरे घर वालों को कोई परेशानी न हो।

रमेशजी सोनी . . . . .

डरपोक

मैं अपने पैतृक गांव रासपुरा जिला अलीगढ़ से मथुरा के लिये बस में चढ़ा। बस में सामने एक चेतावनी सूचना चिपकी हुई थी। दो–तीन घंटे के सफर में पांच–सात बार वह सूचना पड़ने में आ गई और दिलो दिमाग पर अच्छी तरह छा गई।

'जहरखुरानों से सावधान'

अनजान लोगों से ज्यादा बातचीत न करे। उनके हाथ से कोई खाने पीने का सामान न लें। अपने कीमती सामान प्रकट न करें आदि आदि। अंतिम पंक्ति में था महिलायें भी इन वारदातों में शामिल हो सकती हैं।'

घने कोहरे के कारण बस बहुत विलंब से मथुरा पहुंची। आरक्षण खिड़की सिर्फ दो बजे दोपहर तक खुलती है। मैंने तुरंत एक साइ. किल रिक्शा किया और रेल्वे स्टेशन चलने का आदेश दे दिया। दो कदम बाद ही बड़ी उतावली के साथ एक युवा महिला ने बैठने के लिये हाथ देकर रिक्शा रोका। रिक्शेवाले ने मेरी ओर देखा। मुझे लगा उस महिला को भी बहुत जल्दी है फिर अपने दस रु. भी बच रहे हैं मैंने उसे बिठाने की अनुमति दे दी। लड़की आधुनिक सोच की थी और मैं पचास साल पुरानी सोच वाला। मैं संकोचवश बहुत सिमटकर बैठा और उसे मेरे साथ सटकर बैठने में कोई संकोच, कोई डर नहीं था। रास्ते में उसने ही बात छेड़ी। उसकी गाड़ी आने का समय दो बजे है और उसे टिकट भी लेना है। मैंने भी आरक्षण कार्यालय पर टिकट लेने की जल्दी बताई। स्टेशन आते ही मैंने अपनी ऊपर की जेब में से दस का नोट निकाल कर रिक्शेवाले को दिया और उसने नोटों से भरा पर्स खोल उसमें से बहुत सारे नोटों के बीच में से दस का एक नोट निकाल कर रिक्शेवाले को दिया। मुझसे नहीं रहा गया। मैने टोक ही दिया,

'आप सारे नोट इस तरह दिखा देती हैं। खुल्ले नोट ऊपर रखने चाहिये।'

उसने एक मुस्कान के अतिरिक्त कोई जवाब नहीं दिया और हम अपने–अपने सामान उठा शीघ्रतापूर्वक अपने–अपने टिकट लेने कतार में लग गये। थोड़ी देर बाद ही मोहतरमा मेरे पास आई और बोली,

'आपके पास एक रुपया खुल्ला है क्या? टिकटवाले ने एक रुपये के पीछे मेरा दस का नोट रख रखा है।'

मैंने जेब में से ढूंढकर उसे दो का सिक्का दे दिया।

'यही दे आओ कम से कम आठ रुपये तो बचेंगे।'

वह सिक्का लेकर चली गई और कुछ देर बाद पुनः वापस आ गई।

'मेरी गाड़ी तीन घंटे लेट है। लाओ तुम्हारा टिकट मैं ले देती हूँ। इधर महिलाओं की बिल्कुल भी लाइन नहीं है।'

मेरे दिमाग में एकाएक बस में पढ़ी चेतावनी की अंतिम पंक्ति कौंधी। 'इसमें महिलायें भी हो सकती है।' मैंने उससे कहा,

'अब नम्बर आ ही गया है, वैसे भी मेरी गाड़ी तो साढ़े तीन बजे की है।'

मैं दो–तीन मिनट बाद ही टिकट लेकर लौटा तो वह मेरा इंतजार कर रही थी।

'आओ इस बेंच पर बैठते हैं।'

उसने स्वयं का बैग रख कर कुछ जगह रोकी हुई थी। मैं कुछ आशंकाओं के बीच उसके पास बैठ गया। सामने ग्लोबल बोर्ड देखने पर पता लगा कि मेरी गाड़ी भी एक घंटे देरी से आ रही है। अब समय तो गुजारना ही है। बातचीत उसी ने शुरु की। उसने बताया कि वह बी. एड. में एडमिशन करवाने के लिये ग्वालियर जा रही है। उसने पति से बहुत कहा पर वो दुकान का काम छोड़ साथ आने के लिये तैयार ही नहीं हुये। उसे अकेले ही जाना पड़ रहा है। उसके दो छोटे बच्चे हैं जिन्हें वह उनकी दादी के पास छोड़ कर आई है। वह मथुरा के पास के ही एक गांव की रहने वाली है। उसने मेरे से भी बहुत पूछताछ की। मेरी शादी के बारे में, फिर बच्चों के बारे में और गंतव्य के बारे में। मैं उसके सवालों के जवाब देने से बचने की कोशिश करता रहा। मुझे आश्चर्य तो इस बात का हो रहा था कि वो मुझे हमउम्र मान रही थी। जैसे मेरी शादी हुई या नहीं जैसे सवाल पूछकर। पर इसमें उसका भी क्या कसूर? बाल रंगने के बाद तो मेरे शादीशुदा बच्चे ही मेरे बड़े भाई जैसे लगने लगते हैं। पास में से एक लड़का चाय–चाय की आवाज लगाता हुआ निकला तो उसने कहा,

'चलो चाय पी लेते हैं।'

मेरे दिमाग में पुनः बस में पढ़ी हुई चेतावनी घूम गई। मैंने कहा,

'मैं चाय नहीं पीता हूं।'

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतनी कड़ाके की ठंड, कोहरा और इस कलियुग में किसी खूबसूरत महिला की दावत ठुकराकर कोई कहता है कि वह चाय नहीं पीता है।

'क्या बिल्कुल भी नहीं लेते?'

'ऐसा तो नहीं है पर बहुत कम।'

मेरे से ज्यादा झूठ नहीं बोला गया। वह चाय वाला लड़का जो मेरी सोच के अनुसार उसका साथी था, आगे जा चुका था।

'तो चलो वहॉ स्टाल पर लेते हैं।'

हम दोनों पास में रेल्वे की खानपान सेवा की दुकान पर चले गये और चाय पी आये। बहुत हुज्जत के बाद भी उसने मुझे चाय के पैसे नहीं देने दिये।

वह समझ गई थी कि मैं उसके ऊपर विश्वास नहीं कर रहा हूं। कारण तो वह शायद ही जान पाये। उसने मुझे विश्वास दिलाने के लिये विभिन्न बहानों से उसके पढ़ाई के प्रमाणपत्र आदि बैग में से निकाल कर मुझे दिखाये। नाम रेखा वर्मा। जन्म वर्ष 1986। मेरे बड़े बेटे से एक साल बाद का। उससे कई बार बेटी कहने की इच्छा हुई पर कह न पाया। उसकी बातों में मुझे रस जो आ रहा था। वह मुझे सच्ची लगने लगी। मुझे उसके साथ किये मेरे व्यवहार पर अफसोस सा होने लगा। अंत में उसकी गाड़ी आने की उद्घोषणा की गई। अब हमारे बिछुड़ने की बेला आ गई थी। जाते–जाते उसने अपने हाथ से खींचकर मेरा हाथ पकड़ा और बड़ी गर्मजोशी के साथ हाथ मिलाते हुये बोली,

'तुम बड़े डरपोक हो।'

वह चली गई पर फागुन के महिने में, बसंत ऋतु में, दिल में एक मीठा दर्द दे गई। चलो यही सही। सच्चाई बता देता तो वह अंकलजी अंकलजी कहती।

बंदिनी

उसे इस काल कोठरी में आये दो घंटे हो चुके हैं और अभी तक उसने सिर नहीं उठाया है। संभ्रान्त परिवार की महिला लगती है। इन लोगों का यहां क्या काम? वह भी एक दिन इसी तरह संकोच करती शर्म से सिर झुकाये यहां आई थी पर परिस्थितियों ने उसे तो इस माहौल में जीना सिखा दिया है। इसे भी सीखना ही पड़ेगा। अभी थोड़ी देर बाद भोजन आ जायेगा। इसे तो खाना खिलाना भी एक समस्या हो जायेगी। उसने हिम्मत कर उससे बात शुरु की ही।

'बहिनजी! अब कब तक इस तरह मुंह छुपाये बैठी रहोगी। हम आठ औरतों के अलावा यहां कोई नहीं है जिससे आप संकोच कर रही हो और हम आठों को यहां साथ ही रहना है जब तक ऊपर वाला मेहरबानी करके हमें यहां से निकाल न दे।'

नई आई बंदिनी ने थोड़ा सा सिर उठा कर देखा। सचमुच यहां तो उसके जैसी दुर्भाग्यवान औरतें ही हैं। सहानुभूति के दो बोल सुन कर उसकी हिम्मत बंधी। उसे बहुत देर से प्यास लगी थी पर वह किससे कहे? उसने आसपास देखा फिर पूछा,

'पीने का पानी कहां है?'

'यह रहा न मटके में।'

पुरानी बंदिनी माया ने बिना एक भी क्षण गंवाये गंदे से मटके में गंदे से प्लास्टिक के गिलास को भरकर नई बंदिनी शोभा को दे दिया। शोभा ने पहले मटके, बाद में गिलास और साथ ही माया को हिकारत से देखा।

'ऐसा पानी पीना पड़ता है क्या यहां?'

'हां पानी तो पानी है भाभीजी।'

माया ने शोभा का चेहरा देखते ही अपना संबोधन बदल दिया।

''सुबह मटकी और गिलास धोकर भर लेते है, चल जाता है दिन रात।''

नियति को स्वीकार कर नाक–भौं सिंकोड़ शोभा ने अपना गला तर किया। सजा यही तो है, नर्क यही तो है। यह तो शुरुआत है, अभी तो और न जाने क्या क्या देखना पड़ेगा? पानी पीने के बाद शोभा कुछ खुली। अपने बारे में बताने से पहले उसने माया के बारे में सब कुछ जान लेना चाहा। उसे बोलते देख और कैदी औरतें भी उठ कर आसपास जमा हो गई। माया कथित पिछड़ी जाति की महिला है और बाकी महिलाओं में कोई भी सवर्ण नहीं है। यह जान उसे थोड़ी उबकाई सी आई। घर पर तो कितनी चतराई करती थी और शायद इसी कारण से उसकी बहू उससे नाराज रहती थी। कामवाली बाइयों को तो वह परांडे और चौके से कितना दूर रखती थी। पर यहां तो? 'हे प्रभु! अब तो तू ही मेरे धरम की रक्षा करना।' शोभा मन ही मन सोचने लगी।

माया ने बताया था कि वह यहां काली मतलब अफीम के चक्कर में अंदर आई है। न जाने किसने उसके सामनों में स्मैक की थैली रख दी और पुलिस को सूचना दे दी। उसे तो कुछ भी याद नहीं है। हो सकता है उसका पति ही उससे मिला हुआ हो। उसका पीहर जोधपुर है और ससुराल भवानीमंडी। अब साल में दो चक्कर तो लग ही जाते हैं। पर इस बार तो वह पकड़ी गई। न जाने किस का लालच उसे यहां फॅसा गया। सबने मना किया कि मुंह मत खोलना नहीं तो तेरे घर वाले भी फंस जायेंगे फिर तो तुझे छुड़ाने का प्रयास भी कौन करेगा? नारी जाति है न जैसा आदमी ने कहा माना और यहां नरक भोग रही है।

और यह मांगी। जमीन के टुकड़े के लिये झगड़ा हुआ। मांगी के हाथ में दरांती थी। पति को पिटता न देख सकी और बस दे मारी जेठ के बेटे के। सात साल की सजा हो गई है। बेटा पिछली मुलाकात में कह कर गया था हाईकोर्ट में लगा दी है कुछ दिनों में जमानत मिल ही जायेगी। और यह सुरती दुकानों से कपड़ा चुराती हुई पकड़ी गई थी इसको तो कोई छुड़ाने वाला भी नहीं है। सुना है इसका आदमी दूसरी औरत ले आया है। इससे कोई मिलने भी नहीं आता। सबकी दास्तान उसने सुन ली है पर अपनी सुनाने की उसे हिम्मत नहीं हो रही। उसने कुछ किया भी तो नहीं जो किसी को सुनाये। माया ने छेड़ा ही।

'आपको क्यों आना पड़ा भाभीजी?'

''अरे, मेरी वो नाशपीटी, करमजली मेरी बहू। खुद तो चली गई और वहां बयान में कह गई कि सासू और देवर तंग करते थे।''

'कहां चली गई।'

'अपने शरीर पर घासलेट डालकर जल गई। तीन दिन अस्पताल में तड़पती रही। फिर बयान दे गई और मर गई।'

'हाथों हाथ ही मर जाती तो आपको तो जेल में नहीं आना पड़ता न?'

'नहीं, वो बिना बयान दिये चली जाती तो फिर पुलिसवाले यह कहते कि हमने ही उसको मारा है। इससे तो और बड़ा जुर्म बन जाता। हमारा वकील बता रहा कि उसने जो कहा कि वह सास और देवर के तंग करने से खुद ही तेल डालकर जली है इससे हमारा अपराध छोटा हो जाता है। पर मैं तो यह कहूं कि हमने उस पर ऐसा क्या जुल्म कर दिया था? बस यही तो कहा था कि पीहर अगले सप्ताह में चली जाना। इतनी बात से नाराज हो महारानी रसोई के भीतर जा सांकल लगा कर जल गई। क्या सास को इतना सा भी कहने का अधिकार नहीं है?'

'एक बात में तो इतना गुस्सा नहीं आता। हो सकता है उसके मन में पहले से ही कोई बात भरी बैठी हो।'

'अब बातें तो किस घर में नहीं होती? हमारे जमाने और इस जमाने में कितना फर्क आ गया है। चौक– परांडे की शुद्वता की बातें करना भी इन लोगों को दकियानूसी लगता है। परांडे का पानी ही तो केल, पीपल, तुलसी और देवी–देवताओं को चढ़ाते हैं। भोजन उसी पानी से बनाते हैं, आये–गये मेहमान, संत–महात्मा, ब्राहमण–गौ सब को उसी में से पानी पिलाते हैं और उसी चौके में बनी रोटियां खिलाते हैं। हमारे यहां तो भगवान को भोग लगाने के बाद ही और कोई भोजन ग्रहण करता है। ऐसे में चौका पवित्र रखने की बात कहना क्या गुनाह है? बिना नहाये धोये परांडे को छूने या रसोई में घुसने की मेरे यहां मनाही थी। अब इन बातों से ही कोई नाराज रहे तो रहे। सबका अपना–अपना धरम है कि नहीं। सास मॉ के बराबर होती है और मॉ का फर्ज है बेटे बेटियों को सिखाना। बस इसीलिये मैं बुरी लगने लगी थी। सबसे कहती फिरती थी कि मैं बहुत चिढ़चिढ करती हूं। बस उस बड़े घर की पढ़ी लिखी बेटी को बहू बनाकर लाने का पाप किया था उसी का फल भोग रहे हैं। मेरा तो यही गुनाह है री।

कम्प्यूटर गेम

विज्ञान कथा

मुझे पता नहीं उस महात्रासदी के बाद मैं व मेरी पत्नी कैसे जिंदा रह गये? विश्वयुद्व के बाद बहुत कम इंसान ही इस धरती पर बचे हैं। उनमें हम दो अभागे बूढ़े–बुढ़िया भी थे। जब आकाश से आग बरसी थी तो हम गांव के तालाब के किनारे बैठे थे। गर्मी बढ़ी तो पीली मिट्टी की खदान के अंदर घुस गये। बाहर न जाने क्या हुआ और खदान ढह गई। हम मिट्टी के अंदर दब गये और धीरे–धीरे बेहोश हो गये। जब हमें होश आया तो हम इस अनजाने बेनाम कस्बे के पक्के खंडहर में पड़े थे। दो युवा हमें दाना–पानी दे देते थे पर हम आपस में कोई बात नहीं कर पाये थे। उम्र के अलावा शायद भाषा की भी समस्या हो। पांच सात दिन में मैं बिना बोले युवाओं के साथ खंडहर से बाहर निकल घूमने जाने लगा। बहुत बड़े कस्बे में लगता है कोई नहीं रहता है। यहां के नये जमाने के आरसीसी के बने सब मकान ध्वस्त पड़े हैं। एक बहुत बड़े–कोई सौ–दो सौ साल पुराने चूने पत्थर से बने भवन में बहुत सारे कम्प्यूटर लगे हैं। मेरे युवा दोस्त यहीं आते हैं और कम्प्यूटर चलाते रहते हैं। उन्हें उम्मीद है इस सेंटर के द्वारा वे दुनिया में यदि सभ्यता कहीं बची होगी तो उससे सम्पर्क करने में कामयाब हो जायेंगे। यहां बिजली नहीं है पर शायद इस पूरे सेंटर को सौर पैनल से ऊर्जा मिलती होगी। मुझे छत पर कुछ छतरियां सी लगी हुई दिखाई दे रही है। मेरे लिये भी यह समय गुजारने का अच्छा तरीका रहेगा। इस मशीनी यंत्र से खेलकर मैंने भी अपनी जिंदगी के हजारों घंटे बर्बाद किये थे। एक दिन मैंने एक अलग कमरे में बैठ आखिर एक कम्प्यूटर चालू कर ही लिया। इस पर विचित्र तरह का खेल आ रहा है। आदमी की महत्वाकांक्षा का सबसे बड़ा खेल। खिलाड़ी अपना जेट विमान उड़ाता है और दुनियां के नक्शे में कहीं भी उस विमान से छतरी उतार कर उस धरती पर अपना कब्जा कर लेता है। इस तरह मुफ़्त में ही जमीन पर कब्जा करने में मुझे बड़ा आनंद आने लगा और मैं जब भी अवसर मिलता कम्प्यूटर पर यही खेल खेलने लगता।

धीरे–धीरे मुझे पता लगा कि इस खेल में अंतरिक्ष यान भी है जो चंद्रमा आदि दूसरे ग्रहों पर भी पहुंचा देता है। बस मैंने अपना यान चंद्रमा के लिये छोड़ दिया। बहुत देर तक यान उड़ता रहा और यान उस दिन तो चंद्रमा पर नहीं पहुंच पाया। दूसरे दिन मैंने कम्प्यूटर खोला तो पता लगा मेरा यान चंद्रमा पर उतर चुका है। अब मैंने वहां की जमीन पर कब्जा करने के लिये छतरियां फैलानी शुरु की। सुखद आश्चर्य की बात यह थी कि छतरियों पर हिंदी तथा अंग्रेजी में इस बात की घोषणा की गई थी अब यह प्रदेश भारत देश के अधिकार में है। मुझे विश्वास हो गया कि मैं भारत में ही हूं। अब मैं कम्प्यूटर के इस खेल में अपने आप को निष्णात मानने लगा और मैंने अपना अगला लक्ष्य मंगल ग्रह पर अधिकार करना बना लिया। आकाशगंगा के नक्शे मे मंगल ग्रह को लक्ष्य कर मैंने अंतरिक्ष यान छोड़ा। मैं लगातार आठ दिन तक अंतरिक्ष में अपने यान को विभिन्न स्थानों पर उड़ते हुये देखता रहा। मैं कदापि बोर नहीं हो रहा था। हर पल अंतरिक्ष के नये–नये नजारे देखने को मिल रहे थे। कम्प्यूटर में लगातार विभिन्न ग्रहों नक्षत्रों से दूरियों के संकेत मिल रहे थे जिन्हें मैं ज्यादा नहीं समझ पा रहा था। अंतरिक्ष का भव्य नजारा कम्प्यूटर के पर्दे से नजरें नहीं हटाने देता था। अंत में आठवें दिन मेरा यान कम्प्यूटर में बताये मंगल ग्रह पर पहुंच ही गया। मैं मन ही मन कम्प्यूटर में इस तरह का आनंददायक और उत्तेजक खेल बनाने वालों की बुद्धि की दाद देता रहा। मैंने शाम को ही कुछ छतरियां मंगल ग्रह पर उतारी और वहां कब्जा जमा लिया।

अगले दिन मैं अपने निर्धारित समय पर अकेला ही मिट्टी की दीवार के रास्ते से होकर कम्प्यूटर भवन की ओर जा रहा था तो मेरे से कोई आधा किलोमीटर दूर एक पाइप सा यंत्र अंतरिक्ष में से आकर गिरा। वह पाइप शक्तिशाली बम की तरह फटा जिससे हुये धमाके से सारी धरती कांप गई। फिर वहां से दो राकेट आग उगलते हुये उत्तर व दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। थोड़ी देर बाद गर्जना के साथ दोनों ओर के दो पक्के भवनों में आग लगी हुई दिखाई दी। दृश्य देख मैं उल्टे पांव अपने आवास की ओर भागा। मुझे अपनी पत्नी की चिंता हुई। यदि धमाके से वह खंडहर ढह गया होगा तो?

कुछ मिनट बाद ही पूर्व में हुये धमाके से कोई सौ मीटर मेरी ओर पुनः धमाका हुआ और दोनों दिशाओं में दो राकेट चले। 'अब हमारा कम्प्यूटर सेंटर नहीं बचा होगा।' मैंने कल्पना की और मैं पूरी शक्ति लगा कर भाग अपने आवास पर आया। पत्नी घबराई हुई बाहर ही खड़ी थी। मैं उसे खींचता हुआ कस्बे के बाहर की ओर दौड़ा। पत्नी ने रास्ते में बताया, ''बच्चे लोगों ने मच्छरों को मारने के लिये जो चींटे कांच के जार में पाल रखे थे वे चींटें धमाके से जार टूट जाने के कारण सारे खंडहर में फैल गये हैं और जो भी चीज मिल रही है उसे खाने दौड़ रहे हैं। अगर मैं वहां रुकती तो वे मुझे भी खा जाते।''

''हां वे चींटे खतरनाक हो गये हैं पर शायद वे धूप और गर्मी सहन नहीं कर पायेंगें और अपने आप मर जायेंगे।' मैंने बच्चों के मुंह से पूर्व में सुनी जानकारी पत्नी को दी।

कस्बे के बाहर पुलिस थाना है। यहां दुनियां की खबरें आती जाती हैं। पता नहीं कौन सा संचार तंत्र काम कर रहा है। मैंने वहां बैठे युवक से हाथ के इशारे से पूछा कि यह क्या हुआ? युवक मेरे ऊपर नाराज होता हुआ बोला, 'बैठे–बैठे चैन तो पड़ती नहीं? जाने क्या–क्या करते रहते हो? अब मेरे से पूछते हो क्या हुआ? पूरी धरती तेरे मेरे के चक्कर में खत्म हो चुकी है। अब आपको क्या जरूरत आ रही थी मंगल ग्रह पर कब्जा करने के लिये अपना यान भेजने की। उन्होंने हमारा सिग्नल पकड़ लिया और चेतावनी दी है दुबारा ऐसी हरकत की तो पूरी ध रती को मटियामेट कर देगें।''

'हां ! सचमुच में ऐसा हो गया क्या? मैं तो कम्प्यूटर पर खेल रहा था। अब तो वह कम्प्यूटर सेंटर भी मटियामेट हो गया होगा। तुम उनसे सम्पर्क कर सकते हो तो मैं माफी मांग लूं। मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया है। मुझे क्या पता था कि मैं सचमुच ही कम्प्यूटर से अंतरिक्षयान उड़ा रहा हूं?''

'हां उन्होंने फ्रिक्वेंसी दी थी। मैंने मामला पहले ही संभाल लिया है। उन्होंने तो अपना काम कर ही दिया। महायुद्ध के बाद न जाने कैसे यह केन्द्र बच गया था, अब वह भी खत्म हो गया।'

'चलो अब जंगल की ओर भागो। इन बमों की मार से वहीं बचा जा सकेगा। पहले भी हम शहर से बाहर होने के कारण ही बच पाये थे।' मैं पत्नी का हाथ खींचता हुआ सा भागने लगा।

इससे तो कुंवारा ही ठीक था रे!

मैं आज फिर छुट्टी पर हूं। मालिक का फोन आ गया है। बहुत जोर से डांट पड़ी है। पर मैं क्या करूं? मैं ऐसा उलझा हुआ हूं कि किसी से कुछ कह नहीं सकता। मेरे मां बाप ने मेरा नाम हीरा रखा था पर मुझे भगवान ने एकदम काला कलूटा रंग दिया है। इसी से सभी मुझे काल्या कह कर संबोधित करते हैं। पता नहीं मेरे मां बाप ने भी कभी मुझे मेरे असली नाम से पुकारा हो। काले रंग, ठिगने कद और दुबले शरीर के कारण लड़कियों के मां बाप मुझे पसंद नहीं करते थे। एक दो मां बाप ने पसंद भी कर लिया तो बाद में लड़की मना कर देती। हमारे समाज में लाख बुराई हो पर यह अच्छाई तो है ही कि शादी से पहले लड़की को चुपके से लड़का दिखा दिया जाता है। अगर लड़की नहीं माने तो विवाह नहीं हो पाता। भारत देश में शारदा एक्ट लागू हुये बरसों हो गये पर हमारे यहां लड़के की शादी सत्रह अठारह में व लड़कियों की चौदह सोलह साल की उम्र में कर दी जाती है। मेरी उम्र बाईस को पार कर गई। मेरे अलावा मेरी शादी की चिंता मेरे परिवार, मेरे मित्रों एवं कारखाने में साथ काम करने वालों को भी थी। तभी तो करखाने परिसर में मोटे–मोटे अक्षरों में लिख कर बोर्ड टांगा गया था। जिसमें लिखा था, 'कालू कुंवारे के लिये एक लड़की की जरूरत है। संपर्क करें, 'बजरंग गलीचा फैक्टरी।' इस बोर्ड को पढ़कर सब लोग बहुत हंसते थे। एक दिन तो मालिक ने भी इसे पढ़ा और हॅस–हॅस कर दोहरे हो गये।

मेरा समय आया ही। एक रिश्तेदार ने मुझे एक लड़की के पिताजी को दिखाया। लड़की के पिता मुझे नहीं मेरे पैसों को देखना चाहते थे। मुझे भी ऐसे आदमी से ही उम्मीद थी। पचास हजार रुपये में बात हो गई। लड़की ने मेरे को कहीं देख लिया और पता लगा कि उसने मना कर दिया है। बीच के दलाल ने कहा कि मैं किसी प्रकार की चिंता न करूं लड़की को वह मना लेगा। वह लड़की को मनाकर रखता रहा और मैं उसके लिये दारुपानी का इंतजाम करता रहा। सगाई पर मेरे से तीस हजार रुपये मांगे गये। जोखिम तो बहुत थी पर मैंने दिये ही। इस रिश्ते को मैं नहीं छोड़ना चाहता था। मुझे लगने लगा था कि इस बार मेरी शादी नहीं हो पाई तो मैं कुंवारा ही रह जाऊॅगा। खैर मेरे जमा रुपयों में से मैंने भुगतान कर सगाई की रस्म अदा करवाई। मेरे सास–ससुर के कोई लड़का नही है, मात्र तीन कन्यायें ही हैं। मेरा विवाह बड़ी बेटी के साथ हो रहा है। मां बाप मेहनत मजदूरी कर बच्चों का पेट भर रहे है। एक छोटा सा कच्चा मकान किराये पर लेकर रहते है। पर मेरे को उनसे क्या ? मैं कोई बनिये–बामणों के घर में तो पैदा हुआ नहीं था जो मुझे दहेज मिलता। यहां तो पैसे देकर दुल्हन खरीदनी है। कमोबेश समाज के सभी युवकों को वधु मुल्य देना ही होता है। हमारे समाज की यह परम्परा ही है।

सगाई के दो तीन दिन बाद मेरी दोनों सालियां फैक्टरी में ही मुझे ढूंढती हुई आ गई। मेरे सहयोगियों ने उनसे परिचय लिया और काम पूछा। सालियों ने बताया कि वे तो जीजाजी से आइस्क्रीम खाने आई हैं। मैं उस दिन कारखाने में नहीं था मेरे साथियों ने हंसी मजाक करते हुये उन्हें आइस्क्रीम दिलवा दी। फिर तो उनका रोज आना चालू हो गया। एक दिन मैंने छुटकारा पाने की गरज से बड़े मुनीम से उन्हें डांट पड़वा दी तथा कारखाने में आने से मना करवा दिया। मुनीमजी से मेरी सालियों बहुत बदतमीजी की। बहुत छोटी बच्चियां हैं, यह सोचकर मुनीमजी ने उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। पर यह जरूर कहा, ''अरे काल्या! तेरी सालियां ही ऐसी हैं तो घर वाली कैसी होगी? तेरा तो अब भगवान ही मालिक है रे।''

समाज के सामूहिक विवाह सम्मेलन में मेरा ब्याह हो गया। जोडे गये सब रुपये तो पूरे हो ही गये उल्टा मैं कर्जदार हो गया। तयशुदा रकम के अलावा भी मेरे बीस हजार और ज्यादा खर्च हो गये। उस पर तुर्रा यह कि पत्नी ने आते ही कह दिया कि मैं उसे पसंद नहीं हूं। मां बाप और उस दादा ने पैसे खाकर उसे मेरे गले बांध दिया है। हमारे समाज में महिलायें कई बार हम पुरुषों से ज्यादा कमाई करती है। कारीगरों के साथ या हलवाईयों के साथ मजदूरी पर जाना, घर में बैठकर बीड़ी बांधना, सिलाई कढाई करना, बकरी पालन और घरेलू कार्य झाडू पोंचा लगाना, बर्तन मांजना या कपड़े धोना आदि सभी में अच्छी मजदूरी मिल जाती है। मेरे पत्नी से कमाई करवा कर कर्ज चुकाने के सब सपने टूट गये। यहां तो समय पर रोटी मिल जाये यही पत्नी की बड़ी मेहरबानी थी। मेरी पत्नी के मां बाप के अलावा निकट के रिश्ते में बस एक बुआ ही थी। बुआ भी इस छोकरी की शादी के लिये प्रयत्नशील थी पर उसका दांव नहीं बैठा। उसके मार्फत शादी होती तो उसे बीच में कुछ माल मिलता। उसका हक कोई ओर जीम गया। अब बुआ के तो पेट में गांठ ही पड़ गई। बुआ उसे मेरे खिलाफ भड़काने का कोई अवसर नहीं छोड़ती। ऐसे में मैं पत्नी को अकेली नहीं छोड़ सकता था। वह मेरे लिये कीमती जेवर थी जिसे चुराने के लिये कई लोग प्रयत्नशील थे और मैं अपनी संपत्ती की रक्षा करने के लिये सन्नद्व। ऐसे मे मैं कई दिनों अपने गांव में रहा और शहर में भी आया तो मेरी दीदी या मां किसी न किसी को पत्नी की सुरक्षा के लिये साथ रखा। इसी बीच कई सारी दुखद घटनायें भी घटी। मेरे बड़े भाई साहब की असामयिक मृत्यु हो गई। मेरी सास कई दिनों तक अस्पताल में भर्ती रही और बाद में उसने दम तोड़ दिया। इन सब कामों के लिये अवकाश लेना ही पड़ा। पत्नी को इस कारण कई बार उसकी मां के घर छोड़ा पर मैं सदैव आशंकित बना रहा। मेरे सास–ससुर मेरी सेवा से प्रसन्न थे तथा वे सदैव मेरी पत्नी को मेरे पक्ष में करने के लिये प्रयासरत रहे। आखिर एक साल बाद जब मेरी पत्नी गर्भवती हुई तब उसके मन में मेरे प्रति प्यार जागा। ऐसी अवस्था में नाते जाने या किसी के साथ भाग जाने के अवसर भी कम होते हैं। अतः मैं सुख की नींद सोने लगा और मेरा स्वास्थ्य अच्छा हो गया।

कुछ महिनों की तनाव मुक्त जिंदगी के बाद प्रसवपूर्व के इलाज शुरु हो गये। बाद में प्रसूती के खर्च और सबसे बढ़कर नवजात शिशु की बीमारी ने मेरे कर्ज के बोझ को कम नहीं होने दिया। यह सब तो मामूली बातें हैं जो हर इंसान की जिंदगी में होती है पर मेरे साथ तो कुछ विशेष ही होना था। एक रात को मेरे ससुर जी जो रोज ही शराब पीते थे, किसी से लड़ पड़े। हाथापाई में उनके सरोते से सामनेवाले के गाल पर कट लग गया। पुलिस को पैसे देकर पटाने की क्षमता तो थी नहीं, सीधा धारा 307 का मुकदमा बन गया। निचली कोर्ट और जिला अदालत दोनों जगहों से जमानत खारिज हो गई। अब आप सोच ही सकते हैं कि इन सबके लिये समय और पैसे मेरे अलावा कौन खर्च करता। अब चूंकी ससुरजी भी नहीं रहे तो मेरी दोनों सालियां अपनी दीदी के साथ मेरे घर में ही रहने लगी। यार दोस्तों ने चुटकुला बना लिया एक के साथ दो मुफ्त। पर मेरी मैं ही जानता हूं। घर गृहस्थी पर खर्च का भार और बढ़ गया। इधर हाइकोर्ट से जमानत होने में तीन महिने लग गये। ससुरजी जेल से बाहर आये तो एकदम बीमार। वहां भला पीने के लिये कहां मिलती। अब काम भी छूट गया तो बाहर भी व्यवस्था नही। दो तीन बार अस्पताल से आये गये फिर वो भी नहीं बच पाये। उनका यथोचित क्रियाकर्म किया और बाहरवें दिन बाद उनका किराये का मकान खाली कर दिया। अब मेरी गृहस्थी पांच प्राणियों की हो गई। बढ़ते कर्ज के बावजूद मुझे पांच प्राणियों को पालने में भी कोई जोर नहीं

आ रहा था। उम्मीद थी ही, मेरी साली बड़ी हो रही है उसका ब्याह करेंगे तो कर्ज चुक ही जायेगा। मेरा एक साल अच्छे सुकून से निकला। फिर मेरे ग्रह नक्षत्र खराब आ गये। एक दिन रात को पत्नी ने बताया कि उसकी बहिन निम्मी सुबह से पड़ौस के लड़के के साथ महू गांव का मेला देखने गई हुई है, अभी तक नहीं लौटी। मैंने कई जगह जाकर पता किया। वे लोग आज तो नहीं आये थे। रात भर बैचेनी रही। सुबह होते ही पत्नी ने मुझे महू भेज दिया। मेरे को फिर बिना छुट्टी लिये नागा करनी पड़ी। दिन भर कई लोगों से मिलने के बाद मैं मेरी बड़ी साली निम्मी को वापस घर ला सका। पत्नी से मैंने सलाह की और चौदह साल की निम्मी के लिये लड़का ढूंढना भी शुरु कर दिया। इधर निम्मी का मन लगाये रखने के लिये हम मियां–बीबी ने प्रयास कर उसके लिये बर्तन मांजने व पोंचा लगाने का काम भी ढूंढा। खाली दिमाग शैतान का घर होता है। फिर कुछ काम करेगी तो पैसे खर्चे में काम आयेंगे। अब निम्मी बच्ची तो रही नहीं कि उसे लाड–प्यार ही करते रहें।

तीन महिने बाद निम्मी पुनः अपनी एक सहेली के साथ घर छोड़कर भाग गई। पुनः मुझे शहर में उसे ढूंढने जाना पड़ा। पांच दिन बाद मैं उन सहेलियों तक पहुंच पाया। उसकी सहेली के एक रिश्तेदार ने उन्हें शहर के एक होटल में बर्तन मांजने का काम दिलवा दिया था। पगार अच्छी थी और दोनों सहेलियां काम छोड़कर नहीं आना चाहती थी। मैं ही जानता हूं कि मैं उन्हें किस तरह मना कर लाया। मैं पढ़े लिखे लोगों के साथ रहता हूं। मुझे पता है कि अठारह साल से पहले लड़की का ब्याह करना जुर्म माना जाता है। सारे रिश्तेदारों को सजा हो सकती है। पर सरकार को यह पता नहीं है कि यहां तो लड़कियां चौदह बरस में ही जवान हो जाती है और अपने पंख फैलाकर आसमान में उड़ने लगती है। उन्हें जमाने की हवा से बचाना मां बाप के लिये कितना मुश्किल होता है। फिर बिना मां बाप की बेटियां। अब पत्नी ने उसकी शादी करने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर ही डाली है और वह भी तुरंत ही। आते ही मैंने उसके विवाह के बारे में मेरी कोशिशें और तेज कर दी। चार कामकाजी लड़के उसे दिखाये पर वह तो सबके लिये मना करने की ही सोच कर बैठी थी। और अब यह लफड़ा हो गया। तीन दिन पहले मेरी दूर की रिश्तेदारी का मेरा भाई निम्मी को कोई लड़का दिखाने के बहाने से लेकर गया था। एक दो दिन इंतजार के बाद वह नहीं लौटी तो मैंने पूछताछ की। एक हमारे समाज के घर में ही वह मिल गई। मैंने उससे वापस घर चलने के लिये कहा तो उसने मुझे मुंह चिढाया। थोड़ी बाद घर के अंदर जाकर सिंदूर लगा आई और बोली, ''हमने तो विवाह कर लिया है। अब यही हमारा घर है।'' बहुत समझाने के बाद भी मैं उसे मनाकर घर नहीं ला सका। लड़ाई झगड़ा कर उस परिवार से जीतना मेरे बस की बात है भी नहीं। फिर जिसके लिये झगड़ा करें वही अपने साथ न हो तो? समाज में बेइज्जती तो हुई ही, कर्ज चुकाने का मेरा सपना भी चूर–चूर हो गया।

इंसान इतनी जल्दी हार भी नहीं मानता है। मैं अपने एक मित्र के साथ निकट की पुलिस चौकी पर रिपोर्ट दर्ज करवाने चला गया। वहां बैठे अधिकारी को मैंने सारी बात बताई तो वह तो मेरे ऊपर ही इल्जाम लगाने लग गया। उसे पता था कि हमारे समाज में पैसे लेकर लड़कियों का ब्याह किया जाता है। उसकी धारणा यह बन गई कि मैंने लड़की को बेच दिया है और अब ज्यादा पैसे लेने के लालच में मैं उसे वापस लाना चाहता हूं। अब ऐसी पुलिस से मैं क्या उम्मीद करता? मैं एक वकील से मिला। अदालत में नाबालिग के अपहरण का मामला तो लग सकता है पर मैं उसका नैसर्गिक संरक्षक नहीं हूं। लड़की कहीं मेरे खिलाफ ही कोई अनर्गल आरोप लगा दे तो लेने के देने पड़ जायें। नाबालिग के आधार पर लड़की का विवाह तो रुक सकता है पर उसके बाद वह मेरे साथ न रहना चाहे तो शायद अदालत उसे नारीशाला भेज देगी। यदि वह मेरे साथ रहने के लिये मान भी जावे तो क्या तीन चार साल फिर मैं उस बला को संभाल पाऊंगा जो न कानून मानती है, और न ही सामाजिक मर्यादाओं और पारिवारिक रिश्तों का लिहाज करती है। अदालत के आदेश के बाद तो अठारह साल की उम्र के पहले उसका विवाह कर ही नहीं सकूंगा। हर हाल में मेरी तो हार ही होनी है। इससे तो यही अच्छा है कि मैं उसे भूल जाऊँ। अभी मैं कम से कम किसी जुर्म का भागीदार तो नहीं बना। पत्नी के ताने उलाहने और साली की करतूतों से मैं कई दिनों से बहुत परेशान हूं। अभी तो एक साली और घर में बैठी है जो कमोबेश अपनी दीदी के विचारों की ही है। बार–बार मुंह से एक ही बात निकलती है, 'कहां विवाह करके फंस गया। इससे तो कुवारा ही ठीक था रे।'

अंतिम रस्म पूरी नहीं हुई।

बस स्टैण्ड पर उतरते ही उसके माता–पिता उसे दिखाई दिये।

'ओह! मां बाप को बेटी के आने की कितनी उत्सुकता रहती है।' उमा ने मन ही मन सोचा। उमा मां बाप के पैर छूने को उद्धत हुई पर वे पीछे हट गये।

''बेटी हम सब को तुरंत ही वापस तेरे ससुराल जाना है। जवांईजी की तबियत बहुत खराब है। फोन आये दो घंटे हो गये हैं और तभी से हम तेरा इंतजार कर रहे हैं। देई जाने वाली यह अंतिम बस तैयार खड़ी है। आ झटपट इसमें बैठ जाते हैं।''

उमा हतप्रभ रह गई। उसका चेहरा भय से पीला पड़ गया। मन ही मन ख्याल आया। कुछ कर तो नहीं लिया। फिर भी उसने वापस बस में बैठने की कोई उत्सुकता नहीं दिखाई।

''बीमार हैं तो इलाज करावा लेंगे न।'' वह अपना बैग उठाये घर की ओर आगे बढ़ती हुई बोली।

''नहीं बेटी चलना बहुत जरूरी है। लगता है कोई बहुत बड़ी बात हुई है इसलिये ही उन्होंने हमें फोन कर तुरंत बुलवाया है।'' मां ने कहा।

''ओह मॉ! क्या बात होगी? चार घंटे पहले तो हम सब को भलाचंगा छोड़कर आये थे। जीजाजी तो हमें बस में बिठा कर गये थे।'' उमा के छोटे भाई मनोज ने दीदी का पक्ष लिया।

मां बाप के मना करने के बावजूद बेटी घर पहुंच गई और कमरे में जाकर पसर गई। अब तो सच बताना ही पड़ेगा। मां बाप का कलेजा मुंह को आ रहा था। यह बेटी कुछ समझने को ही तैयार नहीं है। मां ने आखिर हिम्मत कर चुपके से बेटी के कान में कहा ही,
'तेरे पति, हमारे जवांईजी गुजर गये हैं, तू विधवा हो गई है, अब तो समझ।'
मां यह कह गला फाड़ जोर–जोर से रोने लगी। कई घंटों से दिल में दबा दर्द अब पूरे वेग से बाहर निकलने लगा। थोड़ी देर में ही पूरे घर में कोहराम मच गया। मां बाप को उम्मीद थी बेटी अब तो वापस ससुराल जाने को तैयार हो जायेगी। पर यह क्या? बेटी के न तो मनोभावों में ज्यादा परिवर्तन आया और न ही उसने अपना निर्णय बदला। कुछ फुसफुसाते से शब्द बिखेरे,

'फोन करवा कर कह दो कि बस निकल गई है, हम नहीं आ पायेंगें। अब मुझे कुछ देर आराम कर लेने दो, मेरी तबियत ठीक नहीं है।' इतना कह उमा ने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया। सब हतप्रभ! यह उमा को क्या हो गया है? पति के मरने का कोई गम नहीं या गम में पागल हो गई है या कुछ और करने का इरादा है। मां के मन में कई शंकाओं ने जन्म ले लिया। वह रोते–रोते ही कहने लगी, 'बेटी कुछ कर मत लेना, तेरे पीहर में भी तेरे को कोई दुख नहीं देगा। तेरी मर्जी हो तो जा नहीं तो मत जा। भगवान के लिये दरवाजा खोल दे बेटी। होनहार को कोई नहीं टाल सकता। बेटी ने अंदर से खिड़की खोल दी और कह दिया,

''मां तू चिंता मत कर तेरी यह बेटी कायर नहीं है। तेरी बेटी सब मुसीबतों का सामना करने के लिये जिंदा रहेगी। बस तू मुझे थोड़ी देर अकेला छोड़ दे।''

उमा औंधे मुंह लेट अपने मन में घुमड़ रहे विचारों के तूफान को थामने का प्रयास करने लगी। शायद थोड़ी झपकी ही लग जावे। लेकिन विचार तो थमने का नाम ही नहीं ले रहे। कितने अरमानों से अभी सात दिन पहले ही तो वह इस घर से दुल्हन बन कर विदा हुई थी। सब कुछ मन माफिक ही तो मिला। अच्छा घर और अच्छा वर। सबका व्यवहार भी उसे भा गया। पूजा की रस्में भी सब हंसी खुशी हो गई थी। सब कुछ जैसा जमाने में होता आया है। बस अब प्यार की चरम सीमा आनी बाकी थी। उसने बताया पूरी शादी की व्यवस्थायें उसी के जिम्मे हैं वह बहुत थक रहा है और सोना चाहता है। उसका माथा तो ठनका था। इन पलों को छोड़कर कोई सोना चाहता है। पर वह भी क्या करती। सारी जिंदगी ही तो पड़ी है। दूसरी रात भी यही कहानी दोहराई गई। उसने हल्के फुल्के अंदाज में ताना भी मारा था और अपने स्तर पर सोये शेर को जगाने का प्रयास भी किया पर कोई लाभ नहीं हुआ। तीसरी रात तो एक लंबी बहस चली। विवाह सात जन्मों का बंध न है। यह आत्मा से आत्मा का मिलन है। शारीरिक सुख तो नश्वर है। कई उदाहरण संत महात्माओं के दिये। यदि कुछ कमी भी है तो हम उसे सह करके भी जीवन गुजार सकते हैं। मैं क्या करती? कामचिता से दग्ध हो रहे तन को ठंडा करने के लिये रात के बारह बजे नहाकर आई तो सास ने देख लिया था। नारी की पीड़ा शायद नारी जान गई हो? पर यह मेरे मन का भ्रम ही निकला । मेरा मन विद्रोह कर उठा। यदि तुम समर्थ नहीं थे तो तुमने मेरा जीवन क्यों बर्बाद किया? तुम्हें शादी से मना कर देना चाहिये था। मुझे तपस्या ही करनी होती तो गृहस्थ जीवन में क्यों बंधती? मैं इस तरह तरसती हुई नहीं रह सकती। मैं सब को बताऊंगी और तुम्हारे पास दुबारा नहीं आऊंगी। उसने बताया था कि वह कभी विवाह करने का उत्सुक नहीं था। बस समाज में रहना है तो वहां के संस्कार मानने पड़ेंगे यह सोच कर उसने विरोध भी नहीं किया। उसे उम्मीद थी कि समय आने पर सब काम सही हो जायेगा या वह मुझे 'जाहि विधी राखे राम ताहि विध से' जीने के लिये तैयार कर लेगा। उसने मुझ से दो तीन दिन की मोहलत ली। नीम हकीम, वैद्य, डॉक्टर किसी न किसी से तो इलाज करवा ही रहा होगा। मैं रातों को सो नहीं पाई। पूरे दिन काम में मन नहीं लगता था। बस एक ही धुन थी मेरी पीड़ा कब और कैसे सबको बताऊं? भारतीय नारी के संस्कार मुंहफट बनने से मुझे रोक रहे थे। परसों रात को तो बहुत जोर से विवाद हुआ। मेरे भाई मुझे लेने आ रहे हैं। अब मैं और बर्दाश्त नहीं कर सकती। सबसे कह कर जाऊंगी और दुबारा ससुराल नहीं आऊंगी। मैंने साफ कह दिया तो जवाब मिला कि यदि मेरी ऐसी कोई बदनामी हो गई तो मैं जिंदा नहीं रह पाऊंगा। समाज में मेरी इज्जत है, मोहल्ले में मेरा दबदबा है। मैं किसी को क्या मुंह दिखलाऊंगा? मेरे से निवेदन भी किया गया कि मैं चाहे महिने पंद्रह दिन बाद आऊं पर एक बार तो वापस आ जाऊं। यह हमारे बीच की बात है, इसे गोपनीय ही रखूं। पुरुष वर्ग नारी का सदियों से इसी तरह चिकनी चुपड़ी बाते कर शोषण करता आ रहा है। यदि मेरे में कोई कमी होती तो? क्या तब मुझे स्वीकार कर लिया जाता? तो मैं भी क्यों स्वीकार करूं इस अधूरे मानव को। सदियों से बच्चे न होने पर महिला को बांझ घोषित कर उसे छोड़ा जा रहा है चाहे कमी पुरुष में ही हो। मैं मूक बन कर यह सब सहन नहीं कर पाऊंगी। मेरे साथ धोखा हुआ है, अन्याय हुआ है, मुझे इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना ही होगा। मैंने मन ही मन तय कर लिया था।

सबने मेरे भाई बहनों को अच्छा मान दिया और विदाई की घड़ी में उचित सौगातें दी। मेरे चेहरे की उदासी मेरी सास से छिप नहीं पाई थी। मेरे से अलग हट कर बात करने लगी। मैंने साफ कह दिया यहां मेरे लिये क्या रखा है जो दुबारा आऊंगी। ज्यादा पूछताछ करने

लगी तो कह आई 'अपने बेटे से पूछना'। निश्चय ही मेरे विदा होकर आने के बाद मां बेटे में बात हुई होगी और उसने शर्म के मारे शायद जो कहा वही कर दिखाया।

घंटों गुजर गये। खिड़की के पास बैठे– बैठे परिजनों को भी नींद लग गई और उमा भी सो गई। सुबह– सुबह मां ने बेटे को भेज कर उमा की सहेली राधा को बुलवा लिया था। उसी ने दरवाजा खुलवाया। राधा सारे समाचार सुन स्वयं दुखी थी। वह तो सिर्फ यह जानना चाहती थी कि कहीं उसकी सहेली पागल तो नहीं हो गई? दोनों ने थोड़ी देर सुख दुःख की बाते की फिर राधा ने सीधे–सीधे पूछ ही लिया कि अपने पति की मृत्यु होने पर भी उमा अपने घर क्यों नहीं जाना चाहती? उमा ने सबको सुनाते हुये जोर से कहा,

''कौन सा पति? कौन सी शादी? मैं तो अभी कुवांरी ही हूं। मां! तू भी सुन ले। मेरी शादी की अंतिम रस्म अभी पूरी नहीं हुई है।''

जाणतेरी

वह बहुत देर से कपड़े देख रहा था। अंत में उसने दुकानदार से एक मीटर लाल सूती लठ्टा मांगा। दुकानदार अनुभवी था। उसने कपड़ा फाड़ने के पहले ही ग्राहक से छः रुपयें मांग लिये। ग्राहक ने पांच रुपये निकाल कर दिये और कहा कि पांच में ही दे दो। भैरव बाबा के मंदिर में काम आयेगा। दुकानदार उसकी हरकतों से बहुत देर से परेशान हो रहा था। उसने कहा कि यह कोई धर्मादे की दुकान नहीं है। आगे जाओ मैं नहीं दूंगा। कपड़े का थान समेट लेने के बाद इस तरह का व्यवहार किया कि इज्जतदार तो तुरंत ही उठकर चल दे पर वह ग्राहक भी कोई तीस मारखां ही था।

''रुपये दो रुपये में आपके क्या फर्क पड़ता है? आपकी भलाई इसी में ही है कि आप कपड़ा दे दें।'' उसकी भाषा में धमकी भी कहीं–कहीं दिखाई दे रही थी।

''तुम्हारे जैसे उठाईगिरे बहुत आते हैं यहां। चल भाग यहां से।'' युवा दुकान मालिक ने उसका हाथ पकड़ उसे उठाने का उपक्रम किया। ग्राहक दुकान से नीचे उतरते–उतरते बकने लगा,

''अभी देखना तुम चमत्कार। आध घंटे में क्या होता है। पानी भी नहीं मांगोगे पानी भी।''

''अच्छा इतना बड़ा जाणतेर है तू। ले तुझे बताता हूं।'' दुकानदार दुकान के नीचे उतरा और ग्राहक का ही जूता जिसे वह पहनने का उपक्रम कर रहा था उठा कर उसी से ग्राहक को ठोक दिया। दस बीस जूते खाने के बाद ग्राहक अपने जूते पहन बहुत सारी धमकियां देता हुआ चला गया। कोई घंटाभर बाद पुलिस स्टेशन से एक सिपाही आया। मारपीट की शिकायत दर्ज हुई है। दुकानवाले को बुलवाया है। दुकानवाले माणकजी तुरंत माजरा समझ गये। अपने एक मिलने वाले को समाचार भेजा और पुलिस चौकी आ गये। वहां मौजूद अधिकारी ने पूछा,

''क्या तुमने इसे मारा है।''

''हां मारा है। पर इससे पूछो तो, तलवार से मारा है कि लकड़ी से मारा है।'' माणकजी बोले।

''नहीं मेरे जूते से ही मारा है।'' शिकायत कर्ता बीच में ही बोल पड़ा। माणकजी ने पूरा वाकया सुनाया और कहा कि ये कोई जाणतेर है। थोड़ा बहुत हम भी जानते हैं। इसने मेरे ऊपर कोई जाणतेरी की होगी तो इसका जूता इसे ही मारने से उसका प्रभाव खत्म हो जाता है। मैंने तो बस वही टोटक्या किया है। कोई गंभीर चोट तो पहुंचाई नहीं। पूछ लो आप इसी से। दुकानदार की बात सुन थाने में मौजूद हर व्यक्ति को हंसी आ गई। शिकायत करने वाले ग्राहक को लगा कि ये सब तो मिले हुये हैं। वह थाने के बाहर निकलते–निकलते बड़बड़ाने लगा,

'तुम सब मिले हुये हो, थोड़ी देर में देखना तुम्हारा क्या हाल होता है। उठकर पानी भी नहीं मांगोगे।'

थानेदार उसके पीछे लपका।

'ठहर मुझे भी तेरा जूता तेरे को ही मार लेने दे ताकि मेरे ऊपर भी तेरी जाणतेरी असर नहीं करे।'

फरियादी बिना जूता खाये रफूचक्कर हो गया।

विचित्र संयोग की बात यह हुई कि थोड़ी देर बाद ही थानेदारजी को स्थानान्तरण आदेश प्राप्त हो गया।

अपराधबोध

यह कहानी नहीं आश्चर्यजनक सच्ची घटना है। मेरे जैसे नास्तिक के दिमाग को इस घटना ने झकझोर कर रख दिया था। इसलिये सबके सामने उजागर कर रहा हूं ताकि मेरे दिल से एक भारी बोझ उतर जाये।

केशवरायजी पाटन में मेरे पिताजी के काकाजी का परिवार है। मेरे छोटे भाई अर्थात् पिताजी के काकाजी के पौत्र के विवाह में शामिल होने मैं सपरिवार गया। मई का गर्म महिना था पर गर्मी इतनी ज्यादा भी नहीं थी। मेरे बहनोईजी जिन्हें मैं कंवर साहब कह कर संबोधित करता हूं तथा बहिन शकुंतला भी मेरे साथ थे। शाम का भोजन स्कूल के बड़े मैंदान में स्वरुचि भोज के रूप में रखा गया था। बहुत अच्छी सजावट और बहुत सारे गर्म पकवानों के लिये अलग अलग काउंटर। मेरे बहिन बहनोईजी जैन धर्म मानते हैं और ब्यालू करते हैं अर्थात् वे रात में खाना नहीं खाते। शाम होते ही उन्होंने मेरे से कहा,

''ब्यालू कर आते हैं, लड़की वाले भी जैन परिवार के हैं इसलिये ब्यालू की व्यवस्था तो होगी ही।''

''हां, मैं उधर गया था खाना तो लगभग तैयार ही है। आप पधारो दावत का उद्घाटन करने।''

'' हां अकसर कर हम जैन लोग ही सबसे पहले खाना शुरु करते हैं। सब सामान आराम से मिल जाता है। भीड़–भड़क्का भी नहीं रहता और किसी के झूठे हाथ भी खाने के तब तक नहीं लगते।''

हम मजाक करते भोजन पांडाल में पहुंचे।

''वाह इस बार तो चाचाजी ने बहुत जोरदार व्यवस्था की है। कूलर भी बहुत लगा रखे हैं और बिजली की सजावट भी जोरदार है।''

लड़की वाले शहर के हैं न और वे भी इसी स्कूल में रुके हुये हैं तो उनके स्तर से ही तो व्यवस्थायें करनी पड़ेंगी न?'' मैंने बात आगे बढ़ाई।

''माल भी अच्छा दिया बताते हैं।''

''हां अब माल का क्या है जो आ गया ठीक नहीं तो कोई मांगने थोड़े ही जाता है। फिर आज के जमाने में तो ब्याह हो जाये वही बड़ी बात है। हमारे चाचाजी (दूल्हे के पिताजी) की प्रकृति भी ऐसी नहीं है।

हम बातें करते करते भोजनशाला के बीच तक पहुंच गये। अभी भोजन शुरु नहीं हुआ था। कई काउंटर तो पूरी तरह जम भी नहीं पाये थे। पूरियां अभी कड़ाह में नहीं डाली गई थी। मेरे परिवार की शादी मान मैंने अधिकार पूर्वक वहां मौजूद हलवाई से शीघ्र ही पूरी तलकर देने का आग्रह किया। पास ही काउंटर पर खड़े चाचाजी के मित्र (एक जिम्मेदार कार्यकर्ता) ने बताया,

'पहले पत्तलें निकलेंगी उसके बाद भोजन शुरु होगा हमें ऐसा आदेश दिया गया है।'

मुझे वहां पत्तलें निकालनेवाला कोई घर का सदस्य नजर नहीं आया। मैंने अपनी बुद्धिमानी लगाते हुये कह दिया,

''भोग की पत्तलें तो सुबह निकलती है। अब जब सब लोग सुबह का खाना खा ही चुके हैं तो अब पत्तल का क्या औचित्य है।''

वहां खड़े चाचाजी के मित्र ने मुझे घर का जिम्मेदार व्यक्ति मानते हुये खाना शुरु करने की मौन स्वीकृति दे दी। सबसे हमारे दल ने भोजन करना शुरु किया और दस मिनट में ही सौ के करीब लोग ब्यालू करने लग गये जिनमें अधिकांश वधू पक्ष के थे। थोड़ी ठंडक आ गई थी, पूरा भोजनस्थल विभिन्न पकवानों की खुशबू से महक रहा था एवं स्पीकर पर तेज आवाज में संगीत बज रहा था। बहिन व कुंवर साहब लगभग खाना समाप्त कर चुके थे। तभी मुझे लगा कोई दस बीस लोग मिल कर भांगड़ा नृत्य कर रहे हैं। ब्याह शादी में नाचना गाना आम बात है। मैंने बहिन से कहा, ''भोजन हो गया हो तो आओ देखते हैं कौन डांस कर रहा है। हम भोजन स्थल के मुख्य द्वार पर आये तो वहां एक युवा महिला नाच रही थी। कुछ लोग उसके आसपास जमा थे। हम भी तमाशा देखने पहुंच गये। अरे यह क्या? यह तो नाच नहीं रही है बल्कि कोई जिद करके मचल रही है। ध्यान से सुना और देखा तो हम डर गये। महिला लगातार कह रही थी, 'म्हारी पत्तल, म्हारी पत्तल; म्हारी पत्तल, म्हारी पत्तल। और जोर–जोर से पैर फटकार रही थी। उसके चेहरे पर क्रोध का भाव और हाथ–पैरों को पछाड़ना, बहुत दहशत पैदा कर रहा था। उसकी आंखों में लालिमा उतर आई थी। मुझे आभास हो गया हो न हो यह मेरा ही अपराध है। मैं बिना भय वहां खड़ा मन ही मन क्षमा मांगते हुये जानकारी लेने लगा। यह जो भी भाव या देवी देवता आये हैं वे दुल्हन की भाभी के आये हैं। पहले ही लड़केवालों से कह दिया था कि देवी देवताओं के भोग की पांच पत्तल निकाल दें, उनके परिवार के तो यहां कोई रहे नहीं और सब लोगों ने खाना शुरु का दिया। दस–दस आदमियों से उसको संभाला नहीं जा रहा, ऐसी न जाने कौन सी ताकत उसमें आ गई है। सारी बातें सुन मैं अपराधबोध से ग्रसित हो इस समस्या के सुलझाने के बारे में हो रहे विचार–विमर्श को सुनने लगा।

लड़की के परिवार की महिलाओं एवं बुजुर्गों ने आकर उस भाव के सामने माफी मांगी। तब उसका रौद्र रूप कुछ शांत हुआ। लड़की के पिताजी कट्टर जैन धर्म के अनुयायी थे उन्होंने इसे ढकोसला बताते हुये अपनी बहू से माफी मांगने से मना कर दिया। लड़के के पिताजी मेरे चाचाजी भी तब तक वहां पहुंच गये और उन्होंने आते ही उस भाव को ढोक दे माफी मांगते हुये कहा, गलती सिर्फ मेरी है ब्याईजी ने तो मेरे से पहले ही कह दिया था पर मैं दूसरे कामों में उलझ गया और आपकी पत्तलें नहीं निकाल सका। रिश्तदारों ने लड़की के पिताजी को जोर देकर माफी मांगने को तैयार कर लिया। उनके माफी मांगने के बाद करीब चालीस मिनट में यह पूरा नाटक खतम हुआ पर सबको गल्ती की सजा देने के बाद।

इसी दौरान न कहां से जोर से आंधी आई। काउंटर पर लगे सब सजावटी पर्दे उड़ गये और पांडाल गिर गये। सारी गैस भट्टियों को बंद करना पड़ा। बिजली चली गई और फिर एकदम तेज बरसात शुरु हो गई। सारे मैदान में व सड़कों पर सब जगह पानी बह निकला। बेमौसम आंधी व बरसात ने सारी शादी की खुशियां मिट्टी में मिला दी। काउंटर्स पर रखा अधिकांश खाना बरसात में भीग कर खराब हो गया। इस परिसर में कोई छायादार स्थान नहीं था। परिवार के सारे जिम्मेदार लोग कुलदेवता को मनाने में व्यस्त थे। बारिश आने की कोई कल्पना नहीं थी जिससे उसके बचाव की व्यवस्था की जाती। जो लोग खा चुके थे वे प्रसन्न थे और मेरे जैसे रात में खाने वालों को खाने की चिंता थी।

रात दस बजे बूंदाबांदी के बीच कीचड़ भरे रास्तों से दूल्हे की निकासी निकाली गई व शादी की रस्में जैसे तैसे पूरी हुई। मैंने तथा और बहुत सारे लोगों ने रात ग्यारह बजे बरामदों में बनाई जा रही पुरियां और पकौड़ियां खाकर जैसे तैसे भूख मिटाई। आज तक सिर्फ हम चार को ही पता है कि यह मेरा अपराध था। किसी ने मेरे ऊपर आक्षेप नहीं लगाया पर मन में बरसों बाद भी यह अपराध बोध बना हुआ है।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों में तथा कृष्णकथा में नाराज होकर इंद्रदेव द्वारा इस तरह आंधी तूफान के साथ आकर मानव को सबक सिखाने का कई स्थानों पर वर्णन आया है। मैंने और हजारों लोगों ने इसे उस दिन प्रत्यक्ष देखा।

बाल अपराधी

1. मजबूर चोर

सवेरे–सवेरे गोदाम खोलते ही मेरे मजदूर ने एक बच्चे को गोदाम में से कबाड़ा लोहा चुराते हुये पकड़ लिया। दो–चार चपत जमाने के बाद उस बारह–तेरह साल के बच्चे को मेरे पास लाया गया। मैंने सोचा स्मैकची होगा? इसके मां बाप को इसकी करतूतों की सूचना दे दूं, शायद बच्चा सुधर जाये। मारने या पुलिस में देने से भी क्या होगा? मैंने पूछा,

'कहां रहते हो?'

'गांधी कॉलोनी में।'

'तेरे पिताजी क्या करते हैं।'

'हलवाईयों के साथ मजदूरी पर जाते थे।'

'अब नहीं जाते क्या?'

'अब मुझे पता नहीं है। अब वे हमारे साथ नहीं रहते। उन्होंने हमारी मां को छोड़ दिया है। दूसरी लुगाई कर ली है उसी के साथ रहते हैं।'

'तुम कितने भाई बहन हो।'

'मेरे एक छोटी बहन भी है।'

'तुम्हारा खर्च कैसे चलता है? क्या तुम्हारी मां कोई काम नहीं करती?'

'कर लेती है। हलवाईयों के साथ पूरियां बंटने के काम पर चली जाती है। पर अभी काम नहीं है।'

'बेटे तुमने चोरी का धंधा अपना कर तो अच्छा नहीं किया न?'

'मैं तो चाय की होटल पर आठ सौ रु. महिने में काम करता था। पंद्रह बीस दिन पहले सरकारी आदमी आये और उन्होंने मेरे से उम्र पूछी। मैंने तेरह साल उम्र बताई तो उन्होंने कहा कि मैं काम नहीं कर सकता। मालिक ने मुझे निकाल दिया।'

'तब ही तुमने चोरी शुरु कर दी।'

'मैं क्या करुं? मेरी मां व बहिन भूखी है। दस बीस रु. आयेंगें तो आटा लेकर जाऊंगा।'

कहते–कहते बालक की आंखों में आंसू आ गये। मेरी आंखों में से भी आंसू टपकने वाले थे। मेरे कर्मचारी न देख लें, इसलिये मुंह मोड़ कर दुकान पर आ बैठा। मेरे देश का बाल श्रम निरोधक कानून बच्चों को काम करने से तो रोक सकता है पर चोरी करने से नहीं। मैं भी उस बच्चे को काम नहीं दे सकता। कानून के अलावा अब उस पर चोर होने का ठप्पा भी लग चुका है। मैंने उसे छुड़वा दिया।

इस हिदायत के साथ कि कहीं भी चोरी कर, मेरे यहां मत करना।

2. आदत से मजबूर

हमारे घर में दिन–दहाड़े दो बार चोरी हो चुकी थी। हम कुछ सतर्क थे। एक दिन प्रातः दस बजे एक किशोर यही चौदह साल करीब का, दूसरी मंजिल पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। मैंने पूछा,

'कहां जा रहे हो?'

'रामनिवास जी शर्मा रहते हैं न यहां?'

उसने पूर्ण आत्मविश्वास से प्रतिप्रश्न कर जवाब दिया और मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मुझे यकीन हो गया कि बहुत बड़ी गड़बड़ है। इस पूरे मोहल्ले में कहीं रामनिवासजी शर्मा नहीं रहते हैं। मैंने उसे बातों में उलझाया और छोटे भाइयों को बुलाकर पकड़वा दिया। हमारे घर का चोर यही हो सकता है। उससे लंबी पूछताछ चली। वह गलत नाम पते बताता रहा। दो भाइयों ने उसे मोटर साइकिल पर बीच में बिठाया और उसके घर ले गये। मोहल्ले में भी चोरियां हुई थी तो तीन जने और साथ लग गये। उसने झूठे पते बता–बता कर पूरी बारां नगरी में पांच–सात किमी घुमा दिया। फिर उसकी कुछ धुनाई हुई तब उसने अपने घर का असली पता बताया। उसके पिताजी सरकारी कर्मचारी हैं और समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गिनती होती है। उसकी मां ने कहा,

'खूब पीटो इसे, हमारे से तो यह सुधर नहीं सका शायद आप लोग ही सुधार दो। पहले घर का ही कबाड़ा कर दिया अब यहां दांव नहीं लगने देते तो औरों के घरों में घुसने लगा।'

वहां उसने हमारे घर से एक घड़ी चुराना स्वीकार किया। तीन–चार जगह घूमने के बाद घड़ी बरामद की गई। उसने पंद्रह सौ रुपये वाली घड़ी पचास रुपये मात्र में बेची थी। हर बार अपराध स्वीकार करवाने के लिये उसे दंड देना पड़ा। मोहल्ले की अन्य चोरियां उससे नहीं उगलवाई जा सकी। किसी को पता नहीं था कि यह सीधा–साधा लड़का इस तरह का काम कर सकता है। इस घटना से पूरे गांव को पता चल गया कि यह लड़का चोर है। शारीरिक दंड भी पर्याप्त मिल चुका है और समाज की प्रताड़ना भी। बिना पुलिस में दिये उसे छोड़ा।

वह चोरी क्यों करता था? मात्र बाजार में कम्प्यूटर पर गेम खेलने के लिये। उसे इस काम के लिये चालीस–पचास रु. रोज चाहिये। जो मां बाप देंगे भी क्यों?

क्या यह भी स्मैक से कम नशा है?

पकड

मेरे पास सुबह–सुबह मेरे मौसाजी का फोन आया। उनके दो बच्चों का कल सायंकाल किसी ने अपहरण कर लिया है। वे लोग बहुत परेशान हैं। स्वाभाविक था वे मुझे तुरंत बुलाना चाहते थे। ऐसे आड़े वक्त में रिश्तेदार मदद को नहीं आयेंगें तो कौन आयेगा? मैं पहली गाड़ी पकड़ कर गुना पहुंचा। रास्ते में ट्रेन में ही गुना से छपने वाले भास्कर अखबार में इस अपहरण की खबर पढ़ने को मिली। मतलब बात जगजाहिर हो गई है। प्रशासन तथा पुलिस को भी खबर लग गई है। वे भी कुछ कर ही रहे होंगे। मैंने दो वर्ष पहले ही वकालत करने का पट्टा प्राप्त किया है। परिवार के लोग इसीलिये मेरे से बहुत उम्मीद रखते हैं। गुना से कोलारस बस से पहुंचा जहां मौसाजी ने मेरे को लेने के लिये मोटर साइकिल भेज दी थी। अन्यथा दो किमी पैदल जाना पड़ता। मौसाजी का मारकी गांव छोटी सी पहाड़ी पर बसा है जिसके आसपास घना जंगल है। इस इलाके में ऐसी वारदातें होती रहती है। इस बार हमारा नम्बर आ गया। मुसीबत आ गई है तो पार पाना ही पड़ेगा। किसी भी तरह से बच्चों को घर लाना है। घर में कुहराम मचा हुआ है। उनकी मां का तो रो–रो कर बुरा हाल हो रहा है। कल से किसी ने खाना नहीं खाया है। मैंने भी सुबह से कुछ नहीं खाया था। मैंने जाते ही मौसीजी से खाना मांगा। खाने से पहले कसम दे कर मौसीजी एवं मौसाजी को खाना खिलाया। हम भूखे रह कर कमजोर हो जायेंगे समस्या से कैसे जूझ पायेंगे?

अभी तक अपहरण करने वालों की तरफ से कोई समाचार नहीं आया था। मैं मौसाजी को लेकर पास के पौसरी थाने में गया। वहां बच्चों के अपहरण होने की रिपोर्ट कल ही लिखा दी गई थी। थाने में कोई कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। उन्हें और यहां के सब लोगों को पता था कि इस केस में अब क्या होगा? उनके लिये तो यह आम बात थी। या तो पकड़ फिरौती देकर छुड़ाई जाती है या मारी जाती है। उन्होंने बताया कि डकैत गुना जिले से अपहरण कर शिवपुरी जिले में निकल जाते हैं। यह गांव दोनों जिलों की सीमा पर बसा है। थोड़ा आगे जाते ही उत्तरप्रदेश आ जाता है और इधर प्रदेश की सीमा राजस्थान से लगी है। डकैत राज्य बदल–बदल कानून से बचते रहते हैं। इनका संभावित ठिकाना शिवपुरी जिले में है अतः हमें उस जिले के पुलिस अफसरों से ही बात करनी चाहिये। वहां से निराश हो मैं मौसाजी को जिले के सबसे बड़े पुलिस अधिकारी से मिलवाने शिवपुरी ले गया। मेरी वकील की पदवी ने काम किया और हम साहब से मिलने में कामयाब हुये। मौसाजी ने तो रो–रो अपनी बात कह दी। मैंने साहब से अकेले में बात की। हमें किसी भी तरह से हमारे भाई वापस चाहिये। कानूनी या गैर कानूनी जो भी तरीका हो। पुलिस व कानून की लाचारी मैं भी समझता हूं और साहब तो उसमें रचे बसे हैं ही। उन्होंने मेरे को कुछ विशेष बातें समझाई और कुछ करने का आश्वासन दिया। साहब ने दिन में फोन से बातें की और हमें गुना की सीमा पर शिवपुरी जिले में स्थित मयाला थाने में पहुंचने के लिये कहा। हम अगले दिन सुबह मयाला थाने में वहां के अधिकारी से मिले। साहब का फोन आ चुका था। वे लोग अपहरण ाकर्ताओं को पहचान चुके थे।

''अरे वही मंगल राव! जो पहले रेलगाड़ी में से अटैचियां पार किया करता था। आगरा की जेल से पेरा. ेल पर छूटा था तो वापस नहीं गया। अब दो–चार और अपराधियों के साथ मिल यह फिरौती का धंधा कर रहा है।''

''देखो! मैंने एक आदमी को बुलाया है। आप साथ चले जाओ। भगवान ने चाहा तो काम हो जायेगा।''

एक थानेदार के साथ हम मयाला के बियाबान जंगल में पहुंचे। वहां एक पुराना मठ सा बना हुआ है। हम एक गंदे से चबूतरे पर जाकर बैठ गये। ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। पीछे की टूटी हुई दीवार फांद कर एक फटेहाल ग्रामीण ने प्रवेश किया। ग्रामीण ने इशारा कर थानेदार को बुलवाया। दोनों ने आपस में बहुत देर बातें की। पता लगा यह मंगल का दलाल है। थानेदार से आश्वासन चाह रहा था, कहीं धोखा तो नहीं हो जायेगा। अपराधी तो आम आदमी से ज्यादा ही डरता है न? यह बात तो तय हो गई थी कि मेरे भाईयों को उठाने वाला मंगल राव ही है। अब समस्या उसके पंजे से उन्हें छुड़ाने की थी। जरा भी शक–सुबहा दोनों की जान को खतरे में डाल सकता था। हमने चुप रहने में ही भलाई समझी। दलाल से बात करके हम वापस मयाला थाने आये। थाने वालों ने आपस में मामला समझा और कहा कि अब हमें कल पुनः शिवपुरी बड़े साहब से मिलने चलना है।

थाने वालों के आदेशानुसार दूसरे दिन हम किराये की जीप करके पुलिस अधिकारी को मायला थाने से साथ बिठा कर शिवपुरी साहब के कार्यालय पहुंचे। पुलिस वालों ने आपस में बातें की फिर साहब ने हमें बुलवाया।

''देखो आप वकील हैं और मैं कानून का रखवाला। सब कुछ जानते हुये भी हमें आपके बच्चों की जान बचाने के लिये गैरकानूनी प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ेगा। बीच में जितने लोग आयेंगें उतनी ही रकम बढ़ती जायेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि आप लोग सीधे ही लेनदेन की बात कर लें और अपना काम निकलवा लें। बात फैलने में या पुलिस कार्यवाही में तो आप जानते ही हो बच्चों के जीवन को खतरा हो सकता है।''

''हां यह तो मैं पहले ही समझ रहा हूं। आप के ऊपर कोई आंच नही आयेगी। पूरी बात गोपनीय ही रहेगी। आप जो भी व्यवस्था करवाना उचित समझें करें, मुझे आप पर पूरा विश्वास है।''

''तो ठीक है मैं थानेदारजी से कह देता हूं वे आप का काम करवा देंगे। आप लोगों के लिये हमें भी खून का घूंट पीना पड़ता है। साले उन लुच्चों की शर्तें माननी पड़ती है।''

''बस साहब आपकी कृपा से हमारा काम हो जाये। हम आपका अहसान जिंदगी भर नहीं भूलेंगें।''

मौसाजी ने कृतज्ञता प्रकट की और हम शिवपुरी से जीप में बैठ वापस मायला थाने आ गये। थानेदारजी ने एक–दो फोन किये और हमें अगले दिन सुबह छः बजे बुलवाया।

अगले दिन अलसुबह फिर हम थाने में हाजिर हो गये। थानेदार साहब ने कहीं फोन लगाया।

''मैंने मिलने के लिये समय ले लिया है, वहां एक ही आदमी जा सकता है। आप जाओगे वकील साहब या मौसाजी को भेजोगे।''

''वहां बात क्या करनी होगी?''

''बस सौदेबाजी। बात नहीं बनी तो फिर खतरा ही खतरा है।''

''वह हमें भी उड़ा या उठा सकता है?''

''नहीं अभी वहां ऐसी कोई बात नहीं होगी। बच्चों की जान पर खतरा होने की बात कर रहा हूं।''

मैंने मौसाजी की तरफ देखा। वे मेरा गुस्सा जानते थे। मैं बात बिगाड़ भी सकता हूं। मुझे लगा वे जाने को तैयार हैं। मौसाजी ने घर से लाये दस हजार रुपये पुलिस वालों के सामने रख दिये।

''ये उन लोगों को देने के लिये लाया हूं। आप अपने हाथ से दे देना। बच्चों को कोई तकलीफ न हो। ''

''अरे पटेल! पैसे मत दिखा। पैसे देखकर तो उसके बहुत भाव बढ़ जायेंगे।''

चौकी प्रभारी ने पहली बार पुलिसिया अंदाज में मौसाजी को डांटा।

मौसाजी ने रुपये वापस नहीं उठाये तो प्रभारी ने उन्हें अपनी मेज की दराज में डाल लिया।

''वहां गरीब बन कर ही बात करना।'' पुनः मौसाजी को समझाया गया।

पुलिसवाले की मोटर साइकिल पर बैठ कर मौसाजी जंगल में चले गये। पुलिसवाला दस मिनट बाद आ गया और मौसाजी पूरे पचास मिनट बाद पैदल लौटे। वे पचास मिनट मैंने पचास घंटों की तरह गुजारे।

''क्या हुआ?'' मैंने आते ही सवाल दागा।

''बात हो गई है। कल शाम को छः बजे साढ़े तीन लाख रुपये उसी जगह पहुंचाने हैं। वरना वह दोनों बच्चों को मार कर हाइवे पर डाल देगा।'' कहते हुये मौसाजी की आंखों से अविराम अश्रुधारा बहने लगी।

''आपने इतनी बड़ी रकम देना कैसे मान लिया? वह भी इतना जल्दी। कहां से लायेंगे हम?''

''नहीं मानता तो बात खत्म हो जाती और उसके साथ ही हमारी उम्मीदें भी। दस लाख मांगे थे। मैंने गरीबी का रोना रोया तो कहने लगा, 'झूठ मत बोलो, हम सब जानते हैं।' उसे हमारे घर, परिवार, खेती, व्यापार, सबकी जानकारी है। बड़ी मुश्किल से माना है। चलो हमारे पास बस पेंतीस घंटे का ही समय बचा है।''

हमने पुलिस चौकी से विदा ली। बदहवास मौसाजी पुलिसवालों को धन्यवाद देना भी भूल गये। दस हजार रुपये मेज पर रख दिये गये थे। मौसाजी ने उन्हें नहीं उठाया तो मैंने उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

कैसे क्या हुआ? पूरे रास्ते मैं मौसाजी से बतियाता आया। पुलिसवाले ने उन्हें कोई एक फर्लांग दूर छोड़कर जंगल में इशारे से स्थान बता दिया था। वहां पहुंच कर मौसाजी ने दो बार कुकडू कूं बोला तो एक मोटर साइकिल पर बैठे दो व्यक्ति प्रकट हुये। बड़े अदब के साथ 'पटेलजी राम राम सा.' के साथ उनकी अगवानी की गई। फिर डकैत ने अपना परिचय दिया। दोनों बच्चों को उठाने की बात भी उसने मानी। मौसाजी ने कुछ अविश्वास प्रकट किया तो उसने पांच मिनट के अंदर दोनों बच्चों को भी वहीं बुला लिया। दूसरी मोटर साइकिल पर बैठे हुये, हाथ और मुंह बंधे हुये बच्चों को दिखाने से बाप का प्यार फूट पड़ा और सौदेबाजी में डकैत ने बाजी मार ली। मुझे दो लाख का अनुमान बताया गया था। यहां करीब यही रेट चल रही है। अब ठीक है जो बात कर ली देना ही पड़ेगा। डकैत बातें बनाने में भी चतुर है। पकड़ के पहले जानकारी तो सभी लेते हैं पर यह व्यापार में विशेष होशियार लगता है।मौसाजी से कहा

,'जैसे आपका धंधा वैसे ही यह हमारा धंधा। आप कलम घिस–घिस कर धीरे–धीरे मारते हो और हम एक झटके में हलाल करते हैं। नैतिकता और धर्म आप में भी कहां है जो मुझे सिखा रहे हो। आपके ब्याज, मुनाफाखोरी, मिलावट, मजदूरों का शोषण, अतिक्रमण कर जमीन दबाना, सब कानूनी तो मेरा धंधा भी कानूनी। आप अफसरों को पटा कर रखते हो तो मैं भी पुलिस और नेताओं को जेब में रखता हूं। आप मुझे दोगे तो क्या सारा मेरी जेब में आयेगा? न जाने कहां–कहां बांटना पड़ता है? आपके बच्चों से मुझे भी प्यार है। पकड़ को खाना पहले खिलाते हैं, हम बाद में खाते हैं। अब पैसे न आयें वे हमारे किस काम के। इसलिये हमें उनको मारना ही पड़ता है। न जाने कैसे पटेलजी आप मेरे पास पहुंच गये नहीं तो एक दो दिन में मैं आपको खबर भेजता ही। लगता है पुलिस में अच्छी पहचान है आपकी। खैर समय का ध्यान रखना और कोई चालाकी दिखाने की कोशिश मत करना वरना आप हमारे धंधे का दस्तूर जानते ही हो। कल जब आप पैसे लेकर आयेंगे तो आपको मेरा आदमी मिलेगा। पहचान के लिये यह बीड़ी के बंडल का कागज और यह कारतूस। ऐसा ही वह तुम्हें दिखायेगा। नोटों के साथ यह पहचान देना और उससे भी यह पहचान ले लेना। यह पहचान काम पूरा होने के पहले किसी को भी मत बताना।'

पूरी बातें समझा कर डाकू राव चला गया और मौसाजी कोई एक किमी पैदल चल थाने आ गये। घर पहुंचते ही जमावड़ा जम गया। साढ़े तीन लाख! कुछ रुपये कोलारस के बैंक में पड़े हैं। वहां के कैशियर से बात की तो पता लगा कि आज तो बैंक में हड़ताल है और कल त्यौहारी छुट्टी तथा परसों रविवार। बैंक के पैसे तो बस सोमवार को ही निकल पायेंगें। आढ़तिये ने कुछ रकम देना स्वीकार किया है। मौसाजी ने सारे घर का जेवर इकठ्ठा करवा लिया है ताकि उसे गिरवी रख कर पैसे का इंतजाम हो सके। मुझे भी मौसाजी की कुछ मदद करनी ही चाहिये। मैंने अपने मित्रों को फोन लगाया और मौसाजी से कह दिया कि मैं कल डेढ़ लाख रुपये लेकर आ जाऊंगा। बाकी व्यवस्था आप कर लेना। मैं मोटर साइकिल बस और रेल में सफर कर रात अपने घर पहुंचा। डेढ लाख रुपये थैले में डाल दूसरे दिन दोपहर तीन बजे वापस मौसाजी के घर पहुंचा। वहां से मोटर साइकिल उठा हम मयाला थाने में आ गये। मैंने पुनः पुलिसवालों से आश्वासन लिया। कहीं हमारे साथ धोखा तो नहीं हो जायेगा। पूर्ण आश्वस्त होने के बाद मैंने मौसाजी को पुलिसथाने की मोटर साइकिल पर बिठा दिया। ऐन वक्त पर फोन की घंटी बजी। पता लगा डाकू राव ने फिरौती लेने के लिये नयी जगह बताई है। अब जगह तो यहां के पुलिस वाले सब जानते ही हैं। इस बार मौसाजी व पुलिसवाला साथ ही वापस आये।

''अरे! दोनों भाई कहां हैं।''

''अभी आते होगे।''

कुछ इंतजार के बाद दो मोटरसाइकिलें आती दिखाई दी। हमारे हर्ष का पारावार नहीं रहा। दोनों भाई पिताजी के गले मिले। मौसाजी की आंखों से पुनः आंसू बहने लगे। आज यह खुशी के आंसू थे। चौकी में ही दोनों भाईयों और हमारे साथ पांच–छः पुलिस वालों ने फोटो खिंचवाये। मैंने पुलिस को पांच हजार रुपये कल की दस हजार वाली गड्डी में से निकाल कर मिठाई के लिये दिये, जो उन्होंने बिना हुज्जत रख लिये।

मुझे मौसाजी ने रोक लिया था। मैं भी रुकना ही चाहता था। सोमवार को बैंक से पैसे आ जायेंगे तो जिसका जिसे चुकारा कर दूंगा। रविवार को सारे अखबारों में फोटो सहित बिल्कुल झूठी खबर छपी थी।

''मयाला के जंगलों में पुलिस की डकैत मंगलराव के गिरोह से मुठभेड़। दो पकड़ छुड़वाई गई। डकैत अंधेरे का लाभ उठाकर भागे। खबर पढ़कर मुझे ताव आ गया। मैं फोन उठाने को उद्दत हुआ तो मौसाजी ने टोक दिया। तू तो वकील है। तू तो सब जानता है। कानून के सामने इसके अलावा हम भी क्या कहेंगे? अपराधी तो हम भी हैं न?

ज्यादती तो मेरे साथ हुई है।

मां कसम मैं बहुत सीधासादा लड़का था। पढ़ने में तेज। मेरे पिताजी कारीगर थे। टी. बी. होने के बाद उन्होंने पुताई का काम करके ही परिवार को पालना शुरु कर दिया था। मैं ग्याहरवीं में दूसरी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। सब कहते थे,

'भोला का पढ़ाई में ध्यान है। अपने बच्चों को तो आरक्षण मिलता है। इसे तो सरकारी नौकरी लग जायेगी।'

कभी ज्यादा काम होता या पापा ठेका ले लेते तो मुझे भी काम पर ले जाते। मैं सोलह साल का जवान पापाजी से भी ज्यादा काम करता पर पापा मुझे सदैव पढ़ने का अवसर देते। पापा के गुजर जाने के बाद परिवार को पालने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गई। मेरी मां भी काम पर जाती थी पर मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैं जवान बेटा मां की कमाई खाऊं और स्वयं कुछ न करूं। मैंने पढ़ाई छोड़ दी और पूरी लगन से पुताई का काम करने लगा। पहले मैं किसी के अधीन काम करता था बाद में मेरी स्वयं की पहचान भोला पेन्टर के नाम से बन गई।

मेरे साथ पहली ज्यादती तब हुई थी जब मैं अपने उस्ताद अली के साथ एक अफसर के मकान पर डिस्टम्बर का काम करवा रहा था। मालिक बस सुबह ही दर्शन देते थे। वे दस बजे अपनी नौकरी पर निकल जाते थे फिर हमारे वहां रहने तक नहीं लौट पाते थे। हम मजदूर नौ बजे से पांच बजे तक काम करते थे। घर पर अकेली मालकिन रहती थी। मालिक के दोनों बच्चे शहर में बाहर पढ़ते थे। वे दीवाली की छुट्टियों में भी दो तीन दिन के लिये ही घर आयेंगे। मालकिन का व्यवहार सब तरह से अच्छा था बस वो छुआछूत करती थी तो मुझे बहुत बुरा लगता था। एक दिन मालकिन ने मेरे से कहा कि मैं काम के बाद कुछ देर और रुक जाऊं। अतिरिक्त काम करने का वो मुझे अलग से उचित पारिश्रमिक दे देंगी। मैं उस शाम रुक गया। कुछ देर फर्श की धुलाई करवाने के बाद मालकिन ने मुझे उनके कमरे में बुलवा लिया। दो दिन पहले ही हम इस कमरे की पुताई करके निबटे थे। अहा! कितना अच्छा सजाया गया है इस कमरे को। रंगो का संयोजन, तस्वीरें और कैलेन्डर सबसे बढ़कर सलीके से रखा सामान। भीनी भीनी खुशबू और मादक संगीत। मालकिन बिस्तर पर पसरी थी और मेरे से बोली,

'मेरे पैर दबा दे, आज तो बहुत थक गई हूं।'

मैंने कहा 'मेरे हाथ पैर बहुत गंदे हो रहे हैं।'

'जग में पानी भरा है धो ले।'

'पर यह तो आपका पानी है, मेरे से छू जायेगा तो?'

'नहीं रे! तेरे से छूआछूत वाली कोई बात नहीं है।'

मैंने जग के पानी से हाथ पैर धोये और डरते–डरते पलंग के पास पहुंचा। मालकिन को तो दूर की बात मेरी तो पलंग को भी छूने की हिम्मत नहीं हो रही थी। पर मालकिन का आदेश–मैं पैर दबाने लगा। मालकिन कपड़ों को ऊंचा करती गई और मेरे हाथ आगे बढ़ते गये। अचानक मालकिन ने मुझे बांहों में भर छाती से लगा लिया। फिर वो हुआ जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं अपने आपको रोक न सका। चालीस साल की मोटी काली भैंस जैसी महिला के पंजो से छूटा तो मैंने जान छुड़ा कर भागने की कोशिश की पर मालकिन के आदेश पर रुकना पड़ा। मुझे इस घटना को पूर्ण रूप से भूल जाने की हिदायत के साथ दो दिन की मजदूरी के बराबर अतिरिक्त पैसे भी दिये गये। दबे स्वर से यह धमकी भी दी गई कि यह बहुत बड़ा अपराध हो गया है उजागर हो गया तो जेल की चक्की पीसनी पड़ेगी। बस पहली ज्यादती तो मेरे साथ उस दिन हुई थी। मैं कुछ कह भी नहीं सकता था। इस घटना के प्रभाव से मैंने मां को मेरे विवाह की मूक स्वीकृति दे दी जिसे मैं कई महिनों से टालता आ रहा था।

उसके बाद मैं बीमारी का बहाना कर काम पर नहीं गया। दूसरा काम शुरु किया। पर समाज में ऐसी प्यासी आत्माओं की कोई कमी तो थी ही नहीं। साल दो साल में मेरे साथ ऐसी घटना घट ही जाती। पहली बार जितना भय बाद में नहीं रहा और अब तो डर बिल्कुल ही खत्म हो गया। तभी तो यह घटना घटी जिसके कारण आज मैं यहां जेल में बंद हूं और समाज परिवार तथा मेरे बच्चों को मुंह दिखाने के लायक नहीं रहा।

मैं नहीं जानता वो अधिकारी किसमें काम करते थे पर उनका ऑफिस घर से ज्यादा दूर नहीं था। अधिकारी को न जाने क्यूं दोपहर में घर आना पड़ा और हम रंगे हाथों पकड़े गये। मैं तो मुंह छुपाकर भागने लगा था पर उस बेवफा ने शोर मचा कर मुझे फंसा दिया। कहने लगी चाकू दिखा कर मेरे से ज्यादती कर रहा था। अब मैं क्या करता? पूरा मोहल्ला इकठ्ठा हो गया और सबने मेरे पर जमकर हाथ साफ किये। फिर पुलिस आई और मुझे अंदर करवा दिया गया। अधिकारी भी रसूखदार थे। जमानत के लिये हजारों रुपये खर्च हो गये पर हाई कोर्ट तक ने भी मुझे कोई राहत नहीं दी। मैं मालकिन से मिलना चाहता हूं पर वो मुझ से नहीं मिलना चाहती। आज वो तो समाज में बहुत बड़ी वीरांगना महिला हो गई है जिसने अत्याचारी पुरुष के जुल्मों का विरोध कर उसे सींखचों के पीछे पहुंचाया। बस मेरी यही कहानी है ज्यादती तो मेरे साथ हुई है। सोलह साल की उमर में मुझे पढ़ाई छोड़ कमाने के लिये भागना पड़ा था आज मेरा बेटा पढ़ाई छोड़ परिवार का पेट भरने की जुगत में लग गया है।

मां की ममता

बचपन में पिताजी एक बोध कथा सुनाते थे। पत्नी के बहकावे में आकर एक पुत्र अपनी मां का कलेजा निकालकर ले जा रहा था। रास्ते में बेटे को ठोकर लगी। मां के कलेजे में से कराह निकली, 'मेरे प्यारे बेटे! कहीं तुम्हें चोट तो नहीं लगी।' यह सुन बेटे की आंखें खुल गई। उसे बहुत पश्चाताप हुआ। बेटा कुपुत्र हो सकता है पर माता कभी कुमाता नहीं होती। जीवन में ऐसी कई घटनायें देखने को मिली। सिर्फ इंसानों में ही; पक्षियों और जानवरों में भी। उन्हीं में से कुछ प्रस्तुत हैं जिन्होंने मेरे दिल को बहुत प्रभावित किया।

कबूतरी की परवरिश

मेरे कमरे के हवा बाहर फेंकने वाले पंखे की दीपावली पर सफाई की तो उसमें से दो पूर्ण व्यस्क कबूतर निकले। कबूतर पंखे और दीवार के बाहर लगी लोहे की ग्रिल के बीच जो करीब डेढ फुट लंबी, एक फुट चौड़ी और एक फुट ऊंची जगह थी में न जाने कब से पल रहे थे। उन्हें बाहर निकालने के लिये पंखा उतारना पड़ा था। हमारे सबके जेहन में सवाल आया कि ये कबूतर यहां घुसे कैसे? और घुस गये तो बिना दाना पानी के ये पले कैसे? इनके बाहर निकलने का तो कोई रास्ता है ही नहीं। एक्जास्ट फैन के उस खांचे में एक चिड़िया तो घुस सकती है पर बड़ा पक्षी नहीं। ग्रिल के बाहर तीन इंची जगह में कबूतर ने घोंसला बना रखा है वहां अभी भी दो अंडे रखे हुये हैं।

हमने अनुमान लगाया कि कबूतरी के बच्चे पैदा होते ही ग्रिल से अंदर घुस गये होंगें। उनकी मां उन्हें बाहर से ही चुग्गा और पानी देती रही। कबूतर के बच्चे खांचे के अंदर ही बड़े हो गये और वहीं फंस कर रह गये। हम कह नहीं सकते कितने महिनों तक उस कबूतर कबूतरी के जोड़े ने अपने बच्चों को इस तरह पाल कर जवान बना दिया। शायद छः महिने या ज्यादा। ज्यों ही मेरे छोटे भाई ने खांचे में से उन्हें बाहर निकाला, वे खुले आकाश में उड़ गये।

आश्चर्यजनक है मां की ममता व कुदरत का खेल।

चिड़िया के बच्चे

पास के मकान की दरज में चिड़िया ने घोंसला बना रखा है। प्रातः मंजन करते हुये मैंने एक चिड़िया के बच्चे को गली में पटान पर पड़े देखा। वह बच्चा तथा उसके मां बाप चीं–चीं का शोर मचाये हुये थे। गनीमत है अभी कुत्ता बिल्ली या सुअर की नजर नहीं पड़ी।'

मैंने झट से बच्चे को उठाया और प्रयास कर वापस उसके घोंसले में रख दिया। 'चलो सुबह–सुबह एक अच्छा काम तो हुआ।' आध घंटे बाद पुनः वही बच्चा वहीं गली में गिरा पड़ा था। मैंने पुनः उसे घोंसले में रखा। मैं स्नान कर निबटा तो तीसरी बार पुनः वह बच्चा गिरा पड़ा था। 'कोई स्थाई समाधान निकालना पड़ेगा। ऐसे कहां तक कोई इसे वापस घोंसले में रखता रहूंगा।' मैंने प्लास्टिक की जालीदार डलिया के ऊपर पुठ्ठा बांध कर उसमें एक छोटा छेद कर दिया। अब बच्चा सिर्फ अपनी गरदन बाहर निकाल पायेगा, गिरेगा नहीं। सुतली व कील की मदद से डलिया घोंसले के पास ही टांग दी। थोड़ी देर बाद ही बच्चे ने चां–चां कर अपनी गरदन गत्ते के छेद में से बाहर निकाल ली। उसके मां बाप पास ही उड़ रहे थे। वे उड़ते–उड़ते न जाने कहां से चोंच में कोई कीड़ा पकड़ते और डलिया के ढक्कन पर बैठ अपने बच्चे को खिला देते। कुछ देर मैं यह तमाशा देख दुकान चला गया। रात में डलिया में से बच्चे को बाहर निकाल वापस घोंसले में रख दिया। बहुत देर तक नहीं गिरा था शायद बच गया होगा। पक्षियों की अपने बच्चों का पेट भरने की यह कला देख मेरी समझ में आया कि कबूतर परिवार ने भी अपने बच्चे ऐसे ही पाले होंगें।

टिटहरी का प्रशिक्षण

मेरी दुकान के सामने बह रही पक्की नाली में टिटहरी पक्षी का बच्चा गिरा हुआ था। बच्चा डूबा नहीं बल्कि लगातार तैर रहा था। बच्चा तथा बच्चे की किनारे खड़ी मां दोनों बहुत जोर जोर से चीख रहे थे। मुझे लगा मदद मांग रहे हैं। मैंने एक लकड़ी का पटिया ले बच्चे को निकाल कर किनारे रख दिया। मेरे हटते ही बच्चे की मां आई और उसे अपने पेट के नीचे छुपा कर उसे गर्मी देने लगी। मैं संतोषपूर्वक अपना काम करने लगा। आध पौन घंटे बाद फिर वही मां व बच्चे की चीख। मैंने उसे फिर निकाला व मां ने उसे सेका। तीसरी बार भी बच्चा जब पानी में गिर गया तो मैंने समस्या का स्थाई समाधान सोचा। बच्चे को नाली में से निकाल साफ पानी से धो, टाट के टुकड़े में लपेट एक पुठ्ठे के खुले डिब्बे में रखा तथा नाली से थोड़ा दूर कुछ ऊँचाई पर डिब्बे को टांग दिया ताकि कुत्ते बिल्ली वहां तक न पहुंच सकें। बच्चे की मां तो उड़ने वाला पक्षी है वहां पहुंच ही जायेगी। न जाने क्यों बच्चे को डिब्बे में रखते ही टिटहरी वहां से चली गई। बच्चा थोड़ी थोड़ी देर में कींव कींव कर आवाज लगाता रहा। रात होने पर हम घर आ गये। अगले दिन सुबह नौ बजे दुकान गया। डिब्बे को देखा तो उसमें बच्चा मरा पड़ा था। क्या मेरे छूने से मां बच्चे का त्याग कर चली गई? बिना ममता के तो बच्चे को बचना ही नहीं था। प्रकृति के काम हस्तक्षेप कर कहीं मैंने गल्ती तो नहीं की। हो सकता है टिटहरी अपने बच्चे को तैरना सिखा रही हो।

बिल्ली मां का बिछोह

हमारे घर में चार पांच दिन से बिल्ली व उसके दो बच्चों ने धमाचौकड़ी मचा रखी थी। उनके मल–मुत्र तथा गिलहरी, चूहे या कबूतरों के शवों के हमारे कमरों व बिस्तरों में पड़े अवशेष हम शाकाहारियों से देखे नहीं गये। योजना बना कर दोनों बच्चों को पकड़ा और दूर गोदाम में छोड़ आये। बिल्ली को पकड़ना संभव नहीं हो सका। अब बिल्ली सारे घर में क्रंदन करती अपने बच्चों को ढूंढती फिरती है। उसके आंसू देख हमें बड़ा पश्चाताप हो रहा है। अब बच्चे गोदाम से भी गायब हो चुके हैं। बच्चों के बिछोह में बिल्ली का रुदन एक इंसानी मां के रुदन से कम नहीं है। मां कोई भी हो उसकी ममता निराली होती है।

बोली

बादरी कस्बे में माली समाज की संख्या सबसे ज्यादा है और सब समाज वाले उन्हीं का अनुसरण कर तीज त्यौहार मनाते हैं। गत दो सालों से समाज में दो पटेलों की मूंछों की लड़ाई के कारण दो पट्टियां बन गई। दोनों दलों के लोग गाहे बगाहे एक दूसरे को नीचा दिखने की फिराक में रहते। इसी प्रतिद्वंद्विता में समाज को कई जगह फायदा भी हो रहा था और कई जगह मनमुटाव भी बढ़ रहा था। सामुहिक विवाहों का दौर चल रहा था। कहां तो साल में एक सम्मेलन होना ही मुश्किल हो रहा था और कहां अब दो–दो सम्मेलन हो रहे हैं। इस साल देवउठनी एकादशी का सामूहिक विवाह सम्मेलन करने की घोषणा जगदीशजी की पट्टीवालों ने कर दी है। इस पट्टी के साथ समाज के साठ घर हैं जबकि लालारामजी के साथ समाज के मात्र पेंतीस घर ही हैं। जगदीशजी की ओर से सबसे मुखर व सक्रिय कार्यकर्ता रामाजी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले विचार दिया कि हमारे मंदिर में भगवान राधाकृष्ण की मूर्ति तो है पर बलरामजी की प्रतिमा नहीं है। क्यों न सामूहिक विवाह सम्मेलन के साथ ही डोरा करके भगवान बलरामजी को भी प्रतिष्ठित कर दिया जाये। किसी सयाने आदमी ने बात रखी कि मंदिर तो दोनों पट्टियों का है। मंदिर में कोई काम कराने से पहले लालाजी को भी विश्वास में ले लिया जावे पर कुछ अतिविश्वासी लोगों ने कहा कि बहुमत हमारे साथ है उन्हें सूचना देने की क्या जरूरत है? काम होगा तो अपने आप पता चल ही जायेगा।

देवउठनी एकादशी को स्कूल के बड़े मैदान में जगदीशजी की पट्टी की ओर से माली समाज का विशाल सामूहिक विवाह सम्मेलन एवं देव प्रतिमा प्राणप्रतिष्ठा समारोह हो रहा है। देव प्रतिमा के साथ रथ पर बैठ कर मंदिर तक जाने के लिये यजमान चुनने के लिये बोली लगाई जा रही है ताकि कुछ राशि इसी बहाने इकठ्ठी हो जाऐ। रामाजी माइक पर जोर–जोर से भाषण दे लोगों को ज्यादा से ज्यादा बोली लगाने के लिये प्रेरित कर रहें हैं। वे इस प्रक्रिया के माहिर खिलाड़ी हैं। उन्होंने झूठी सच्ची बोलियां लगवा कर बोली की रकम को साढ़े पांच हजार तक पहुंचा दिया है। उन्हें उम्मीद थी कि अभी और पैसा बढ सकता है, उन्होंने बिना किसी के कहें बोली 5600 रु. कर दी। बाद में बहुत जोर देने के बाद भी कोई बोली लगाने वाला सामने नहीं आया। विलम्ब भी हो रहा था। पंच पटेलों ने कहा कि चलो बोली छोड़ो और काम आगे बढ़ाओ। पर रामाजी बोली किसके छोड़ें। उन्होंने एक दो तीन तो कर दिया पर उनकी जान सांसत में आ गई। स्वयं की माली हालत तो इतना खर्च करने की थी नहीं। किसी के गले यह भार पटकने की गरज से उन्होंने अपने एक सक्षम मित्र को ढूंढा और कहा, 'जगन्नाथ जी! मैं आपकी ओर से ही बोली लगा रहा था, आप रथ पर भगवान के साथ बैठिये।'

मित्र को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी, 'मैं ऐसी दिखावे वाली बातों विश्वास नहीं करता। आपको एक बार पूछना तो चाहिये था।'

मित्र ने मना कर दिया। अब रामाजी संकट में फंस गये। अरे! यह तो हवन करते हाथ जलाने वाली बात हो गई। कई लोगों के सामने मान मनुहार करने पर भी वे किसी को नहीं पटा पाये। उन्हें समाज के सामने अपनी नाक कटती नजर आ रही थी। ऐसे में उन्हें एक उक्ति सूझी।

कुछ देर बाद माइक पर रामाजी घोषणा कर रहे थे, 'दूसरी पट्टीवालों द्वारा फोटो आदि खींचकर कानूनी कार्यवाही करने की ध मकी से डर कर बोली लगाने वाले पीछे हट गये हैं अतः बलरामजी के साथ रथ पर बैठकर जाने वाले जजमान के लिये दुबारा बोली लगाई जायेगी।'

यह घोषणा सुनते ही पूरे पांडाल में सनसनी फैल गई। जवानों को तो उबाल आ गया। लालाजी की इतनी हिम्मत। झट से लाठियां और तलवारें निकल आई। बीस पच्चीस जवानों का झुंड लालाजी के खिलाफ नारे लगाता हुआ स्कुल मैदान से मंदिर तक होकर वापस आ गया। उन्हें कहीं लालाजी का कोई समर्थक नजर नहीं आया अन्यथा कुछ भी हो सकता था। अंत में जवानों का झुंड लालाजी के मकान के सामने जा पहुंचा। लालाजी निर्दोष थे। वे विनम्रता पूर्वक बाहर आये और उन्होंने जवानों के मन में फैली भ्रांति का पुरजोर खंडन किया। 'यह तो भगवान का काम है हमें बुलाते तो हम भी आते। अच्छे काम में रोडा डाल हम क्यों पाप के भागीदार बनेंगें।'

जवानों का गुस्सा शांत हुआ और जब वे दुबारा सम्मेलन स्थल पहुंचे तो पता लगा कि 1121 रु. में समाज के हीरालालजी रथ पर सवार हो चुके हैं तथा जुलुस मंदिर की ओर बढ़ रहा है। पक्के नेता रामाजी एक चाल खेलकर अपनी इज्जत और पैसे दोनों बचाकर उसी जोशोखरोश से नारे लगवाने में मशगूल हो चुके थे। देश के बड़े नेता भी तो इसी तरह आवाम को लड़ा कर अपना राज चला रहे हैं।

अफवाह

मैं नाराज सा घर में दाखिल हुआ और पत्नि ने पूछ ही लिया, 'क्या हुआ?'

''कुछ नहीं हुआ। आज के जमाने की ये लड़कियां भी पता नहीं क्या चाहती है? किसी के साथ लफड़ा हो तो वैसे बोल दे न। मां बाप को परेशान क्यों करती रहती है।''

मैं गुस्से में मुंह में आया जो ही कह गया। बाद में मुझे विचार हुआ और मैंने पत्नि को समझाया कि यह बात किसी से न कहे, मैं तो वैसे ही गुस्से में बक गया हूं। मैं जिस संबंध को कराने के लिये दिन भर से प्रयासरत था वह अंजाम तक नहीं पहुंच सका। लड़की के पिताजी ने अंत में मेरे कान में यही कहा कि वे बेटी को मनाने का प्रयास कर रहे हैं।

हमारी शादी के समय बेटे को मनाया जाता था। जमाने ने इस तेजी से करवट बदली है अब लड़कियां लड़कों को ना कहने लगी है। बहरहाल रात मुझे अच्छी नींद नहीं आई। सुबह उठा तो घर की बहुयें उसी मामले में बढ़ा–चढ़ा कर, चटकारे ले लेकर बातें कर रही थी। पत्नी के पेट में बात पच नहीं पाई। दूसरे दिन लड़की की मां जो दूर के रिश्ते में मेरी बहन होती है, मंदिर गई तो एक मुंहफट हमवय महिला ने उससे सवाल–जवाब कर ही लिये। ''इतना अच्छा संबंध, सुना है बिटिया ने मना कर दिया। उससे ही पूछ लेते वह कहां शादी करना चाहती है। आजकल तो जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। सब आप देखा ही वरण करना चाहती है।''

सुनते ही दीदी का चेहरा फक्क पढ़ गया। 'आपने ऐसा कैसे सोच लिया। वो तो .।'

'मैंने क्या सोचा पूरा जमाना कह रहा है। फिर अब बुराई भी क्या है। पर मां बाप को पहले बता दें तो कम से कम ऐसी बदनामियां तो न हों।'

दीदी ज्यादा न सुन सकी। घर पहुंच रोने लगी। बेटी से बोली,''देखा उन लोगों ने तेरे बारे में क्या उड़ा दिया है। हम तो कहीं मुंह दिखाने लायक न रहेंगें। बात ज्यादा फैल गई तो आगे विवाह में कितनी मुश्किल आयेगी। तू पढ़ी लिखी है, समझदार है, अब तुझे तुरंत ही निर्णय लेना है। यह रिश्ता हाथ से निकल गया तो?''

बेटी मजबूर सी हो गई। बात में सच्चाई तो कुछ नहीं है और वह जानती है कि वे लोग ऐसा नहीं कर सकते पर यहां समाज में किसका मुंह पकड़े। उसने पिताजी को तुरंत ही दस्तूर करने के लिये बात करने की स्वीकृति दे दी।

अच्छी बात यह हुई कि लड़केवालों के कान तक तब तक कोई अफवाह नहीं पहुंची थी और सगाई तथा विवाह सामाजिक परंपराओं के अनुसार निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। मैं आत्मग्लानी के कारण उस विवाह के किसी कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हुआ। कई दिनों बाद भानजी मुझे समाज के कार्यक्रम में मिली। मैं नजरें चुराकर निकलना चाहता था पर उसने मामाजी–मामाजी आवाज लगाकर मुझे रोक ही लिया। शादी में कहीं दिखाई न देने की बहुत बड़ी शिकायत की। फिर स्वयं ने ही कहा, 'शायद आप उस दिन नाराज हो गये थे इसलिये नहीं आये।'

''नहीं बेटी मैं तेरे से नहीं, मैं तो अपने आप से नाराज होकर नहीं आया था। पर यह तो बता तूने उस दिन तो सबको निराश कर दिया और दो दिन बाद ही तेरे पिताजी सब काम तय कर आये। क्या गलतफहमी हो गई थी।''

'कुछ नहीं मैं तो दो–चार दिन उनको चिढ़ाना चाहती थी। वे लोग बहुत ही जल्दबाजी कर रहे थे न इसलिये।'

''फिर दो–चार दिन तो चिढ़ाती।''

''नहीं मामाजी, समाज में न जाने कैसे मेरे खिलाफ अफवाह फैल गई और मुझे लगा कहीं 'हांसी में खांसी' न हो जाये।''

''हां री बेटी! यह अफवाह भी बस मेरे चिढ़चिढे स्वभाव और औरतजात की चलती जुबान के कारण ही फैली थी। पर अफवाह शुभ ही रही जिससे तूने जल्द ब्याह कर लिया।''

मैं उसे आश्चर्यचकित छोड़ भीड़ में गुम गया।

मुकद्दर

सेठ किशनजी का पाली मंडी में जाना माना नाम था। फुटकर व्यापार के अलावा वे भारी मात्रा में स्टॉक कर मोटा मुनाफा कमाने के लिये जाने जाते थे। व्यापार में उनकी गजब की हिम्मत थी। इसीलिये कई लोग उन्हें शेर किशनसिंह के नाम से संबोधित करते थे। उन्होंने इसी हिम्मत के बल पर अपने परिवार को फर्श से अर्श पर पहुंचाया है। मात्र तेरह साल की उम्र में सभी बड़ों का साया सर से उठ जाने के बाद कैसे भी मेहनत–मजदूरी करके परिवार को पालने वाला बालक पंद्रह साल में ही सेठ कहलाने लगा। पड़ोस के गांव जालुरा के पंडित मोतीलाल जी का आशीर्वाद सेठजी पर बचपन से ही था। साधारण कर्मकांडों के अलावा व्यापार में भी पंडित जी की सलाह बहुत अहमियत रखती थी। व्यापार के इतने उत्थान में पंडित जी का योगदान सेठजी भी खुले दिल से स्वीकार करते थे। सभी कुछ सही होने के बावजूद भी क्या किस्मत में लिखा टाला जा सकता है?

एक दिन पंडितजी घर पधारे थे। प्रातःकालीन कर्मो से निवृत्ति के बाद उन्होंने अपना नियमित यज्ञ सम्पन्न किया और फिर भोजन से पूर्व सेठजी से बतियाने लगे। पंडितजी ने कहा, 'किशन देख अब तक तो सब ठीक था पर अब समय खराब आने वाला है। तीन चार साल बहुत संभल कर व्यापार करना। बल्कि मैं तो कहता हं कि यह स्टॉक आदि का बड़ा व्यापार तो बिल्कुल ही बंद कर देना। शनि की साढ़े साती तो लग ही रही है और ग्रह भी विपरीत हैं।'

'हां, पंडित जी आप कहते हैं तो संभलकर चलूंगा ही। पर अब यह ग्रह गौत्र भी कितना ले जायेगे? आपका आशीर्वाद रहा तो यह समय भी गुजर ही जायेगा। व्यापार करने की आदत पड़ गई है, एकाएक तो छूटेगी नहीं।' सेठ जी ने बेफिक्री से जवाब दिया।

'मेरा काम तुम्हें चेताना था सो मैने कर दिया, अब तेरी तू जाने।'

बात आई–गई हो गई। पंडितजी के जाने के बाद रात सेठानीजी ने भी पंडितजी के ऊपर पूर्ण विश्वास जताते हुये ज्यादा व्यापार न करने का आग्रह किया।

'अब भगवान ने खूब दे दिया है, साल–दो–साल बैठ कर चैन से खा लें। दुकान चल रही है, खर्चे में तो कोई कमी है ही नही।'

'हां भागवान! ध्यान तो रखूंगा पर होनहार कहीं टलती है?'

पाली में जीरे का मोटा व्यापार होता है। इस वर्ष जीरे की बहुत अच्छी फसल है। भाव अस्सी रु. किलो से घटकर पचास रु. किलो पर आ गये हैं। कई व्यापारी इन भावों में अब और क्या घटेंगें सोचकर अपने गोदाम भरने लगे हैं। सेठ किशन चुप बैठा है। जिन लोगों ने सेठ को शेर बना दिया वे ही लोग सेठजी को उकसाने के लिये रोज आ जाते हैं। ''सेठां नामर्द बण र कियां बैठ्या हो। अब तो कूद पड़ो मैदान में। आपके मंडी में उतरते ही भाव घटना अपने आप बंद हो जायेंगे।''

दो चार दिन बाद भाव और घट कर पेंतालीस रु. किलो पर आ गये तो सेठजी ने अपने खास मुनीम से सलाह की। मुनीमजी भी कई दिनों से निठल्ले बैठे थे, झट से माल खरीदने की राय दे दी। कुछ करेंगें तब ही तो उन्हें भी कहीं से कुछ कमाने का मौका मिलेगा। नहीं तो चलते रहो सूखी तनख्वाह पर ही। तय हो गया बुधवार से मंडी में उतरना है और जीरे की खरीद शुरु करनी है। भाव बढ़ने के लिये तो आसमान तक जगह है और घटने के लिये धरती तक। अब तो भाव धरती पर ही आ गये हैं जमीन के अंदर तो घुसेंगे नहीं।

सात दिनों की खरीद में गोदाम भर गया। बियांलीस रु से खरीद शुरु की थी। दो तीन दिन तो भाव रुके पर माल ही इतना आ रहा था कोई कहां तक संभालता। दिशावर में से भी लगातार मंदी की खबरें आ रही है। भाव घटकर पेंतीस रु. पर आ गया। खरीदे हुये माल में घाटा दिखने लगा। पड़तल तो मिलाना पड़ेगा न। तेजी में खरीदा है तो मंदी में भी खरीदेंगे। दिशावर व्यापारियों से संपर्क साधा गया। दिशावर मे स्टॉक हो जायेगा। वहां से अस्सी टका राशि अग्रिम भी आ जायेगी। ब्याज भाड़ा तो भाव बढ़ते हैं, उसके आगे कहीं नहीं लगता। अगले एक महिने की खरीद का जीरा बंबई व अहमदाबाद के व्यापारियों को भेज दिया गया। बैंको में अच्छी साख थी ही। गोदामों के माल को गिरवी रख कर ऋण मिल गया और किसी तरह भुगतान होता रहा। अब मंडी में माल की आवक भी बहुत कम हो गई है। भाव गिरने पर किसानों ने भी माल रोक लिया है पर भावों का गिरना लगातार जारी है। तीन महिने पहले अस्सी रु. किलो बिकने वाला जीरा आज मंडी में चौबीस रु. किलो पर आ गया है। जीरा व्यापारियों में हाहाकार मचा हुआ है। ऐसी मंदी तो कभी नहीं आई। कई व्यापारी भुगतान करने में असमर्थ हो गये हैं और कईयों के दिवालिया होने की अफवाहें बाजार में उड़ने लगी हैं। सेठ किशनलालजी भी बुरी तरह फंस गये है। अपनी पुरानी साख के बलबूते ब्याज से रकम उठा–उठा कर किसी तरह अपनी इज्जत बचाये हुये हैं।

जुआरी जुआ खेलना नहीं छोड़ सकता। योद्धा चुनौती मिलने पर जान की परवाह न करके भी भिड़ जाता है, वैसी ही चुनौती व्यापार की है। एक बार मैदान में कूद गये तो कदम वापस खींचने का मतलब है मौत। सेठजी की स्टॉक करने की क्षमता चुक गई तो उन्होंने 'जितना खरीदो उतना बेचो' की नीति अपनाई पर इसमें भी कुछ मिल नहीं रहा था। ब्याज भाड़ा ऐसा खर्चा है जो रात के बारह बजे भी होता रहता है। सेठजी की जमा पूंजी तो जानें कहां गई और कर्ज का बोझ माथे पर लगातार बढने लगा। फुटकर दुकान से कितनी सी कमाई हो पाती। दुकान की पूंजी भी जीरे की भेंट चढने लगी। पूंजी तो व्यापार के रक्त के समान होती है। ज्यों ज्यों रक्त सूखता गया दुकान की हालत भी कमजोर होती चली गई। आठ माह निकल गये। बीज के लिये जब जीरे की आवश्यकता थी तब भी जीरे के भाव नहीं बढ़े। किसानों ने इस वर्ष भाव कम होने के कारण जीरे की बुवाई कम की है। व्यापारियों को उम्मीद बंधी है कि अगले पाक में फसल कम आने पर भाव अपने आप बढेंगें। साल–छः महिने और इंतजार करना पड़ेगा। इस समय में जो मजबूत होगा वही बच पायेगा। किशनजी ने भी तय कर लिया है कुछ भी हो जाये अब अगले वर्ष ही माल बेचेंगें।

एक साल में क्या–क्या हो सकता है? किशनजी ने अपने दो प्लाट बेच दिये हैं। मकान को गिरवी रख कर बैकों से ऋण ले लिया। माल और फुटकर दुकान पर तो पहले से ही बैंक लिमिट बनी हुई थी। सारे रिश्तेदारों व मित्रों के भी वे कर्जदार बन गये। बीमा पॉलिसी बंद हो गई और उससे आई समर्पण राशि भी ब्याज भाड़े की भेंट चढ़ गई। अंत में एक दिन सेठ किशनजी शहर में जाकर अपनी पत्नी के जेवर भी गिरवी रख आये। सेठानी कई बार कह चुकी थी, 'एक दिन पंडितजी से जाकर मिल आओ। आपने पहले तो उनकी बात मानी ही नहीं थी शायद अब कोई रास्ता बता दें।'

सेठजी आखिर पंडितजी के पास पहुंच ही गये। सारी खबर पंडितजी को पहले से ही थी। उन्होंने कुछ गणना करने के बाद

कहा, 'किशन, तू बहुत गलत फंस गया है। परार साल के पहले जीरा कभी 42 रु. किलो से ऊपर नहीं बिका। तुम व्यापारियों ने कैसे सोच लिया कि जीरा 80 रु. किलो की चीज हो गई है। नुकसान से तो कोई नहीं बच सकता। पर हां, अगर 8 जुलाई जो दो महिने बाद आ रही है तक तुम इस व्यापार से निकल जाओ तो ठीक रहेगा।'' सेठजी पंडितजी को धन्यवाद दे कर आ गये। सेठानी जी ने आते ही पूछा, 'क्या कहा पंडितजी ने।'

'8 जुलाई तक माल बेचने के लिये कहा है।'

'ठीक ही है फिर एक दो महिना और दुःख पा लेंगे। अबकि बार चूक मत करना।'

अब सेठ किशनजी ने सोच लिया कि दो माह किसी तरह से निकालने हैं। उन्होंने पंडितजी की बात का यह मतलब निकाला कि आठ जुलाई को जीरे का भाव तेज हो जायेगा। तो अपने को तो जीरा आठ जुलाई को ही बेचना है। वो तो सेठजी के पास रकम की व्यवस्था नहीं हुई अन्यथा मुनाफे के चक्कर में इस अवधी में वे और माल खरीद लेते। जुलाई आते ही सेठानी जी ने भी चेताना शुरु कर दिया। भाव भी ठीक ठीक हो गये थे। 36 रु. के पैसे तो आ ही सकते हैं। नुकसान जाने के बाद भी हाथ में बहुत कुछ बच जायेगा। सेठजी को अब नई ही धुन लग गई थी। पंडितजी की बात सच निकल रही है। सवा साल इंतजार किया है तो आठ दिन और सही। शायद तब तक भाव इतने बढ़ जावें कि नुकसान ही न रहे। सेठानी जी एक दिन मुनीमजी के आने पर हिसाब पूछा।

'कितना जीरा भरा हुआ है अपने पास?'

'यही कोई तीन हजार बोरी। एक बोरी में अस्सी किलो आता है। सारे माल का 34 रु. का दड़ा बैठता है। अस्सी लाख से ऊपर का माल तो है ही। इस पर कोई साठ पेंसठ लाख का कर्ज ले रखा है। हर महिने सवा लाख रु. करीब ब्याज भाड़े का जाता है। आज भी माल बेचना शुरु करेंगें तो पूरा निकालने में आठ तारीख तो आ ही जायेगी।'

'सेठजी तो कह रहे हैं आठ तारीख को ही माल बेचूंगा।'

'मैं क्या बताऊं, मालिक के ऊपर तो कोई मालिक है नहीं। आप भी कह रही हैं और मैं भी समझा रहा हूं।'

आठ जुलाई आ ही गई। सेठानी ने कह दिया था कि यदि आपने आज माल नहीं बेचा तो मैं खाना नहीं खाऊंगी। भाव भी चालीस रु. किलो हो गये हैं। बाजार में जीरे की बहुत मांग है। इस वर्ष फसल बहुत कम हुई है। इसलिये भावों में भारी तेजी आ सकती है। व्यापारियों को तेजी में तेजी और मंदी में हमेशा मंदी ही नजर आती है। सेठजी की कदापि इच्छा नहीं है कि माल बेचें। पर सेठानी की धमकी। उन्होंने दलाल को बुलाया और कहा, 'सौ बोरी जीरा बेचना है, यह नमूना ले जाओ।'

दलाल ने कहा, 'बिक जायेगा चालीस रु. किलो में।'

'नहीं और थोड़ा जोर लगाओ। तेजी आ रही है। साढ़े चालीस तो करवाओ।'

'दस पांच पैसे की बात हो तो जोर लगाऊं। इतना फर्क थोड़े ही पड़ता है।'

दलाल नमूना लेकर चला गया। बंबई दिशावर से आढ़तिये का फोन आया। मुनीमजी ने कहा, 'प्रेमजी 43–43.50 का भाव बता रहे हैं, कितना बेचने के लिये कहूं।'

सेठजी बोले, 'यहां चालीस तो वहां पेंतालीस होना चाहिये न। पांच रु. किलो का तो खर्चा आता ही है। कह दो 45 से कम में नहीं बेचें।'

'लो आप ही बात कर लो।'

उधर से आवाज आई, ' सेठां! यह तेजड़ियों ने निर्यात की अफवाह उड़ाकर फर्जी भाव बढ़ाये हैं। समझदारी इसी में है कि निकल जाओ। तेजी का यह गुब्बारा कभी भी फूट जायेगा।'

'निकलने का तो मेरा विचार है पर आप जानते हो ऐसे भाव काटकर माल बेचना मेरी फितरत में नहीं है। 45 नहीं दो चार आना कमती चल जाये। इस तरह दो दो रु. किलो कम बेचने जैसे गर्जी तो हम नहीं हैं।'

फोन बंद हो गया। और जगहों से भी ऐसे ही समाचार आये। अंत में सेठजी ने सोचा इससे तो अच्छा है चलो बारां का ही माल बेचते हैं। उन्होंने दलाल को फोन लगाया तो दलाल ने टका सा जवाब दे दिया, 'सुबह तो लेवाल थे अभी कोई लेवाल नहीं बोल रहे। कोई आयेगा तो मैं बताऊंगा।'

आठ जुलाई भी निकल गयी पर सेठजी बच कर नहीं निकल सके। वापस भाव घटने का दौर शुरु हुआ तो दिशावर के व स्थानीय सभी व्यापारियों ने ब्याज भाड़े व मार्जिन के पैसे भेजने के लिये समाचार दिये। अब सेठजी के लिये कहीं से इंतजाम करना संभव नहीं था। कानूनी नोटिस के तार आने के बाद बिक्री के तार आते गये और हिसाब के साथ पंजीरी प्रसाद जैसे पैसे वहां से वापस मिलते गये। बिना सेठजी की इच्छा के सारा माल 34–35 रु. किलो के आसपास बिक गया। उनके खुद के गोदाम में रखा माल भी बैंको के दबाव में बेचना पड़ा। एक निजी आवास को छोड़ सारी संपत्तियां पहले ही बिक गई। साख नाम की चिड़िया भी उनके हाथ से उड़ गई। सारा हिसाब–किताब होने के बाद रिश्तेदारों और मित्रों का कर्जा बाकी बच गया।

'समय से पहले भाग्य से ज्यादा कुछ नहीं मिलता।'

'पैसा जैसे आता है वैसे जाता है।' 'समय खराब है तो कितना भी लेकर जा सकता है।'

'जो चीज ज्यादा उत्पादित हुई हो उसका स्टॉक किसी भी भाव में नहीं करना चाहिये।'

'कोई किसी का नसीब नहीं बदल सकता।' 'मुकद्दर में लिखा होता है वह हो कर रहता है।'

बस यह सब नसीहतें सेठजी के पास दुनियां को देने के लिये रह गई।

बद्दुआ

शाहबाद के शिवलालजी के परिवार में विवाह की धूमधाम थी। दुल्हे की बहिन व तीन वर्षिय भानजा गुना से आये हुये हैं। कल बारात बारां जानी है। महिलायें बासन लेकर आई है। घर के बाहर बनी दुकान पर कई बच्चों के साथ भानजा रवि भी खेल रहा था। मां को देखते ही वह दुकान के नीचे उतरा। अचानक ही कहीं से काला नाग आया और रवि की पिंडली में दांत गड़ाकर अन्तर्ध्यान हो गया। हाहाकर मच गया। तुरंत ही प्राथमिक उपचार कर जीप में डालकर बालक को शिवपुरी जिला चिकित्सालय में पहुंचाया। आध घंटा बाद ही बालक ही दम तोड़ दिया। विवाह की सारी खुशियां मातम में बदल गई। रवि की लाश के साथ ही उसकी मां को भी गुना पहुंचाया गया। इधर गुना में बालक का अंतिम संस्कार हुआ और उधर गम के साये में विवाह भी हुआ ही। विवाह के तुरंत बाद ही शिवलालजी बेटी के घर रोते हुये शोक प्रकट करने पहुंच गये।

'मेरे माथे कलंक बंधना था रे। आज तक हमें तो कभी वहां सांप दिखा तक नहीं। दुकान के थड़े के नीचे आसपास कोई ऐसी जगह भी नहीं है जहां से सांप आ जा सके। अरे ये तो मौत ही चुपके से आई थी, जो मेरे लाल को ले गई। हम अग्रवालों के तो सांप मामा होते हैं, मैंने तो कभी नहीं सुना कि किसी अग्रवाल को सांप ने काटा हो। हमारे साथ ही यह अनहोनी कैसे हो गई?'

गुना के सेठ पन्नालालजी नामी गिरामी आदमी हैं। उनके दो पुत्र हैं। पन्नालालजी के छोटे पुत्र सुधाकर के साथ छः साल पहले शिवलालजी ने अपनी पुत्री श्यामा का विवाह किया था। पन्नालालजी के बड़े पुत्र रत्नाकर के भी अभी तक कोई संतान नहीं हुई है। रवि को पाने के लिये भी परिवार को कई मन्नतें मांगनी पड़ी थी। भगवान ने परिवार का एक मात्र चिराग भी छीन लिया। सारे परिवार में मातम छाया हुआ है। सेठ पन्नालालजी की रुलाई रुक नहीं रही है।

'अरे ये सब मेरे कर्मों का ही फल है रे। मैंने यह पैसा जोड़ने के लिये न जाने कितने लोगों की बद्दुआयें मोल ली है।' सेठ पन्नालालजी को याद आने लगा उस मासूम बेवा का चेहरा जिसे उसने उसके तीन छोटे बच्चों के साथ अपना कर्ज वसूल करने के लिये घर से बेदखल करवाया था। हां यहां से तीन कोस दूर कसार गांव का किसान था कजोड़। उसकी फसल पर ओलों की ऐसी मार पड़ी कि पिछला कर्जा नहीं चुका पाया। दुबारा पैसे चाहिये थे तो उससे मैंने स्टाम्प पर उससे उसकी जमीन और मकान मेरे नाम करवाकर उसे कर्ज दिया था। अरे उसे तो टी.बी. निगल गई और वह तो सुखी हो गया। जीवित रहता तो भी कहां से मेरा कर्जा चुका देता? उसके जाने के बाद तो कचहरी पुलिस की मदद से उसके जमीन जायदाद पर कब्जा करना कितना आसान हो गया था। उस बेवा को घर से निकाला था तो कैसी छटपटा रही थी। तीनों बच्चों को मेरे सामने खड़ा कर कहने लगी, 'सेठजी आपके बच्चे कहां जायेंगें? इन पर दया करो।'

'अरे हम ऐसे दया करने लगे तो हो गया हमारा साहूकारी का धंधा।'

घोड़ा घास से यारी करेगा तो खायेगा क्या? तब मैंने उसे दुत्कार के कहा था, 'दुनियां का ठेका थोड़े ही ले रखा है मैने। मेरी तरफ से भाड़ में जायें तेरे मोडा–मोड़ी।'

तब उस बेवा ने बड़बड़ाते हुये कहा था, 'आज सेठजी आपने बच्चों का अपमान किया है, ऐसा न हो आपको बच्चों का मुंह देखने के लिये तरसना पड़े।'

मुझे तो लगता है वह औरत मुझे शाप दे गई। किसी का क्या कसूर है? लगता है मेरे ही कर्मों का फल हम सभी को भुगतना पड़ रहा है।''

शिवलालजी अपने ब्याईजी सेठ पन्नालालजी को बड़बड़ाते देख अवाक रह गये।

सांड

'सेठजी आपके सांड ने मेरों बैलों को मारा, देखो मेरी गाड़ी उलट गई। मेरा बहुत नुकसान हो गया है।'

सेठ जी क्या करें? नौकर को भेजते, किसान का माल वापस गाड़ी में भरवाते। उसे तवा, सूंपड़ा, झाड़ू आदि उपलब्ध करवाते और माफी मांग कर संतुष्ट करके भेजते। कोई उस सांड के डंडा मारे यह वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। गजब की कद काठी वाला काला चमक. ीला, ऊंचे कंधे वाला। उसे उन्होंने अपने बेटे की तरह पाला था। पर उद्दंडता की भी कोई सीमा होती है। कभी फल सब्जी बेचने वाले, कभी खोमचेवाले कभी फुटपाथी दुकानदार; रोज शिकायतें। एक दिन सेठजी ने सांड को गांव के एक मालदार किसान को दे ही दिया। यहां से दस किमी दूर गांव में रहेगा तो कोई शिकायत लेकर नहीं आयेगा। शर्त भी लगा दी कि सांड को कभी नाथया नहीं किया जायेगा। किसान ने पूरे विश्वास के साथ कहा, 'जब तक यह सांड रहेगा मेरी गायों के बीच में चरेगा। इसे कभी गाड़ी में नहीं जोतूंगा।' सेठजी व उनके परिवार ने सांड को अश्रुपूरित नैत्रों से विदा किया।

सेठजी के सौ बरस पूरे हो गये और उधर उस किसान को भी भगवान ने अपने पास बुला लिया। सेठजी का लड़का बिल्लू एक दिन दुकान पर बैठा ग्राहकों की राह देख रहा था। एक बैलगाड़ी दुकान के सामने आकर रुकी। उस गाड़ी में जुता एक बैल बैठ गया। गाड़ीवान ने रस्सी खोलकर बैल को खड़ा किया तो वह तो रस्सी तुड़ा कर भागा और सीधा दुकान पर जा बिल्लू सेठ के पांवों में पसर गया। बिल्लू ने ध्यान से देखा, 'अरे यह तो अपना कालू ही है।'

कालू बैल की आंखों से अविराम अश्रुधारा बह रही थी जैसे वह बिल्लू दादा से शिकायत कर रहा हो, 'ऐसा कौन सा बड़ा अपराध हो गया था दादा! जो आपने हमें त्याग दिया।'

बिल्लू सेठ प्यार से बैल के गले व सिर पर हाथ फेरने लगा। काला ऊंचा गठीला सांड पर इसका नूर कहां चला गया। शायद अब बूढ़ा हो गया है। बिल्लू को याद आने लगा, 'इस कल्लू का पूरे घर की तल मंजिल पर राज था। मर्जी जब और मर्जी जहां उठना बैठना और खाना। छोटे छोटे बच्चे इसकी पूंछ पकड़े घूमते रहते थे पर कभी किसी को इसने चोट नहीं पहुंचाई। हम इसे हमारे भाई से भी बढ़कर मानते थे। हां पर बाजार में यह बहुत मस्ती करता था। इसकी शिकायतों से तंग आकर ही बाबूजी ने इसे गांव में भेज दिया था। पर बाबूजी तो कहते थे कि इसकी नाक में कभी नकेल नहीं डाली जायेगी। यह तो बैलगाड़ी में जुता है। अरे इस पर तो बहुत अत्याचार हुआ है। बाबूजी ने इसे बेचा थोड़े ही था मुफ्त दिया था। उस पटेल से यह भी कहा था कि खल चारा मेरे से ले जाना पर इस सांड से काम मत करवाना।'

गाड़ीवान दुकान के सामने आ खड़ा हुआ। दोनों भाईयों का प्रेमालाप समाप्त हो तो वह बैल को गाड़ी में जोते और मंडी पहुंचे। बिल्लू सेठ ने गाड़ीवान को हड़का,

'पटेल जी कहां हैं।'

'कौन रामलालजी'?'

'हां वे ही।'

'वे तो दो बरस हुये, गुजर गये।'

'तो तू कौन है?'

'मैं तो उनका हाळी हूं। कुंवर सा. सुरेशजी ही अब खेती बाड़ी देखते हैं।'

'तेरे को पता नहीं था क्या यह सांड गाड़ी में जोतने के लिये नहीं दिया था?'

'मैं क्या जानूं साहब, एक साल से तो यह कालू गाड़ी, हल, कुली सब में अच्छा काम कर रहा है। हां, यहां शहर में पहली बार आया है।'

'अब यह नहीं जायेगा।'

'पर गाड़ी मंडी छोड़नी है और वापस गांव भी जाना है। फिर मेरे मालिक सुरेशजी से मैं आपकी बात कह दूंगा।'

बिल्लू सेठ को लगा कि हाळी से तो कुछ कहना बेकार है, अब गांव में जाकर ही इसे मुक्त कराना पड़ेगा। उन्होंने कालू को पुचकार कर कहा, 'जा अभी तो जा। मैं कल तेरी मुक्ति करा दूंगा।'

कालू सांड ने गरदन हिलाई जैसे मना कर रहा हो और उसकी आंखों से और तेजी से आंसू गिरने लगे। आसपास भीड़ जुट गई। सबने बैल को उठाने का प्रयास किया पर वह नहीं उठा। उसने आंसू बहाते हुये अपने दादा के पैरों में ही दम तोड़ दिया।

लगता है अब उसे दादा पर भी विश्वास नहीं रहा था।

प्रतिकार

हमारी कक्षा में एक नया छात्र पवन आया था। वह जिले में नई नियुक्ति पर आये अधिकारी का बेटा था। यहां कोई निजी विद्यालय नहीं था इसलिये मजबूरी में उसे गरीबों के साथ सरकारी स्कूल में पढ़ना पड़ रहा था। उसकी हर अदा निराली थी। बोलचाल, हावभाव, व्यवहार, उठना बैठना, चलना, बात करना और अंग्रेजी में गालियां निकालना। गोरा गठीला शरीर और गोल चेहरा, लाल–लाल गाल। कुलीनता का दर्प उसकी नस–नस से टपकता था। उसकी हर चीज अलग थी। कपड़े, जूते, मौजे, बस्ता, पेन पेंसिल, पानी की बोतल, सलीके से जिल्द चढ़ी पुस्तकें और कापियां। सर्दी में उसका टोपा और जर्सी या कोट पेन्ट सूट। बरसात में उसके हाथ में टंगा रंगीन छाता। अक्सर उसके साथ आया विदेशी नस्ल का झबरा कुत्ता और उसके गले में पट्टा डाल कर बांधी गई कीमती चेन; हम बच्चे अभिजात्य वर्ग के दंभ को बड़े गौर से देखा करते। सब उससे दोस्ती करना चाहते थे पर वह किसी–किसी से ही बात करता था। अधिकतर बच्चे उसके रोबदाब से खौफ खाते थे।

उन अधिकारी के मातहत का बेटा था जगदीश। जगदीश के कारण ही पवन को विशेष प्रयास कर हमारे सेक्शन में ही भर्ती करवाया गया। जगदीश गत वर्ष भी हमारे साथ पढ़ा था तथा मेरी उससे दोस्ती थी। इसी वजह से पवन से भी मेरी पटरी बैठने लगी। एक दिन पवन अपने कुत्ते को लेकर स्कूल आया। बहस छिड़ गई। हम लोग कहने लगे कि विदेशी कुत्ते तो दिखावटी होते हैं। इनमें लड़ने की ताकत नहीं

होती। पवन अपने कुत्ते की प्रशंसा करने लगा। मैंने भी पवन के विरोध में तर्क किये तो वह बोला, 'जरा सा इशारा कर दूंगा तो उधेड़ कर रख देगा।'

मैं भी हार मानने वाला नहीं था, 'यह पिद्दी क्या उधेड़ेगा।'

पवन को बात चुभ गई उसने कुत्ते को मेरी ओर लपकाया। कुत्ता मेरे ऊपर झपटा। मेरे हाथ में देशी छतरी थी। मैंने छतरी अपने बचाव में कुत्ते की ओर कर दी। छतरी की डंडी कुत्ते के मुंह में लग गई। कुत्ता रोता हुआ अपने बड़े भाई के बगल में जा छुपा। सारे बच्चे हंसने लगे। कुत्ते ने तो हार मान ली पर पवन का गुस्सा फूट पड़ा। मेरे से उलझ पड़ा, 'टॉमी को छतरी से मार दिया, तुम्हें शरम नहीं आई?'

'और टॉमी मुझे काट लेता तो तुम्हें शरम आती क्या?'

'कैसे काट लेता जंजीर तो मेरे हाथ में थी?'

'मैंने मारा कहां है छतरी तो खुद उसने मुंह में ली है?'

'नहीं, तुमने जान बूझकर मारा है तुम्हें इसकी सजा भुगतनी पड़ेगी।'

'अच्छा वह मुझे काट लेता तो कौन सजा भुगतता?'

बहुत देर तक मौखिक विवाद चला। पवन हाथ उठा ले ऐसी ताकत उसमें नहीं थी। अंत में मैंने कह दिया, 'मार दिया तो मार दिया अब तेरे से हो सके वो कर ले।'

मेरी सख्ती देख पवन कुछ ठंडा हुआ फिर बोला, 'तेरे को माफी तो मांगनी ही पड़ेगी।'

मैंने व्यंग्य से कहा, 'माफी और वह भी कुत्ते से।'

मैं उसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ने लगा तो उसने मेरा रास्ता रोक लिया। मित्रों की भीड़ इकठ्ठी हो गई और दोनों को समझा बुझा कर मामला शांत कर दिया गया। पवन मेरे से थोड़ा भयभीत रहने लगा।

मुझे बड़ा अचंभा था। कुत्ते के मुंह में जरा सी छतरी क्या लग गई ऐसा उबल रहा था जैसे मैंने पवन के मुंह पर ही तमाचा जड़ दिया हो। बाल्यावस्था में तो नहीं, बाद में समझ में आया। वह प्रतिकार केवल पवन के मुंह पर ही नहीं वरन पूरे सामंती गरूर पर एक तमाचा था।

बचपन से पचपन

'माताजी आप चाहें तो मेरी इस नीचे की सीट पर सो जाना।' मैंने रेलगाड़ी के आरक्षित डिब्बे में मेरे साथ यात्रा कर रहे प्रौढ़ युगल से कहा।

'ओह थैंक्यू। यह ठीक भी रहेगा, हम दोनों महिलायें नीचे और आप दोनों पुरुष ऊपर।'

बातचीत का सिलसिला यहीं से शुरु हुआ।

'आप कोटा से ही बैठे हैं।'

'हां इस डिब्बे में सारे यात्री कोटा से बैठते हैं।'

'लहजे से लगता है तुम यहीं के हो।'

'हां मैं पास ही के अंता कस्बे से ही हूं।'

'अरे मेरा पीहर भी वहीं है। वह जो चौधरी जी की हवेली है न। वही मेरा मायका है।'

'अरे ताजुब्ब है, मेरा बचपन उस हवेली बगल के मकान में गुजरा था। जब मैं नौ–दस साल का था तो हमने वह मोहल्ला छोड़ दिया था।'

'अच्छा तो आप लोग सड़क के पार छाजू तेली के मकान में किराये से रहते थे। शायद तुम्हारे पिताजी का नाम सोहनलालजी था। वे कोई परचूनी दुकान लगाते थे। मुझे बचपन की कुछ बातें याद आ रही है।'

'कुछ नहीं आपको तो सब कुछ याद है पर मैं कुछ भी याद नहीं कर पा रहा हूं।'

'हां अब इतनी पुरानी बातें याद भी किस को रहती है। पर एक बात मैं कभी नहीं भूल पाऊंगी।'

'क्या?'

'वह तुम्हारा बड़ा भाई बहुत बदमाश था।'

'क्या कह रही हो दीदी मेरे तो कोई बड़ा भाई है ही नहीं।' मुझे लगा माताजी कहना कुछ ज्यादा हो जायेगा।

'तो फिर वह कौन था?'

'क्यों? क्या हुआ था? ऐसी क्या बात हो गई थी?'

'उसने एक बार मुझे छेड़ा था।'

'असंभव ऐसा कैसे हो सकता है, कहां गंगू तेली और कहां आप राजा भोज। आपके महल की ओर झांकते हुये भी हमारे को डर लगता था।'

'हां, यह बात तो ठीक है पर एक दिन किसी छोकरे ने ऐसी गुस्ताखी कर ही दी थी। मैं रोंस पर खड़ी थी। वह मेरी ओर बहुत देर से देख रहा था। मैंने उसे चिढ़ाने के लिये मुंह बनाया, जीभ निकाली, और दोनों हाथों से सींग बनाये। कुछ देर तो वह देखता रहा फिर उसने मेरी ओर आंख मार दी।'

मेरे शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गई। यह घटना तो मेरे साथ हुई हैं। पर अब यह बहुत पुरानी बात हो चुकी हैं। मेरे से रहा नहीं गया।

'फिर आप अपने भाई को बुला लाई। आपने कहा कि उस छोकरे ने मुझे आंख मारी। आपके भाई साहब ने लड़के को देखा तो वह आंख मसलने का नाटक कर रहा था जैसे आंख में कुछ कचरा चला गया हो। यही हुआ था न।'

'हां तुम्हें कैसे मालूम? कौन था वह?'

'कोई नहीं, बस मैं ही था।'

'तुम! तुम नहीं हो सकते। वह तो मेरे से बड़ा था। तुम तो बहुत छोटे लगते हो।'

'हां, इतना ज्यादा छोटा भी नहीं कि आपको माताजी कह सकूं। आपने बात को बहुत याद रखा।'

'हां उम्र ही ऐसी ही थी। मेरे मन में कई दिनों तक कुछ–कुछ होता रहा। मैं ऐसे हिम्मत वाले छोकरे को देखना चाहती थी पर पकड़ नहीं पाई कि वह कौन था?

'यदि आप उसे ढूंढ लेती तो क्या फिल्मों और किताबों की सी प्रेम कथा बन जाती।'

'नहीं, उस जमाने में बहुत पाबंदियां थी। तुम ही थे तो तुम बहुत छोटे हो ऐसा नहीं कर सकते, यह सोच कर मैंने ध्यान नहीं दिया।'

'हां और मुझे भी इसलिये याद आया कि कई दिनों तक मैं डरता रहा था। अब मेरा क्या होगा? कई दिनों तक तो मैं आपके मकान के सामने से ही नहीं निकला।'

'पर तुमने ऐसी गुस्ताखी क्यों की थी।'

'बस तुम्हें चिड़ाने के लिये। मैने सोचा लड़कियां ऐसे चिड़ाती है और लड़के ऐसे चिड़ाते होंगें। वैसे ही जैसे कालीदास ने एक अंगुली के बदले दो अंगुलियां उठा दी और पांचों अंगुलियों के बदले मुक्का बता दिया था।'

'हां इस घटना का जिक्र मैडम ने एक बार मेरे से किया था। तो अब क्या विचार है।' हमारी बातों का मजा ले रहे उनके रिटायर्ड मिलेट्री अफसर पति बोल उठे।

'अब मैं कोई अबोध बच्चा तो रहा नहीं। मेरे साथ तो पहले ही भारी वाली मुसीबत है।'

'हां मुझे उम्मीद बंधी थी कि चलो अब तो छुटकारा मिलेगा पर तुम तो भागने लगे।'

डिब्बे में एक सम्मिलित ठहाका गूंज उठा।

शरम

'बहू मैं बूंदीं जा रहा हूं,, संजू ने फोन करके बुलाया है, उसकी तबियत खराब है।'

जेठ मोहनलाल जी यह कह कर तुरंत ही हवा हो गये। अंजना का कलेजा किसी अनहोनी की आशंका से एकदम धक्क सा रह गया। वे कोई दो घंटे पहले ही अकेले मोटर साइकिल से गहरे अवसाद में घर छोड़कर निकले थे।

'हाय मैं उनकी व्यथा को क्यों नही समझ पाई। हे देवी मां! मेरे सुहाग की रक्षा करना।'

शाम की दीया बत्ती करती अंजना ने कातर स्वर में भगवान से प्रार्थना की। ज्यों ही दीपक लगाकर निबटी, झट से उसने पति के मोबाइल पर फोन किया। एक बार नहीं अनेकों बार। घंटी जा रही है पर वे फोन नहीं उठाया जा रहा। जान बूझकर या कोई मजबूरीवश, अंजना नहीं जान पाई। अंजना ने फिर अपने जेठजी से बात की। उन्होंने बताया, 'संजू मेरे संपर्क में है और ज्यों ही मैं उसके पास पहुंचूंगा तुम्हें तुरंत समाचार दूंगा।'

यह चेतावनी भी दी कि बहू दुबारा फोन न करे। फोन सुनने से उन्हें विलम्ब होता है। जिससे संजू की जान को खतरा हो सकता है।

अब अंजना क्या करे। चुप बैठकर इंतजार करना संभव नहीं है। अपने पीहर खबर करने के बाद उसने बूंदी ही स्थित अपनी बहन को सूचना दी। वहां से पता लगा कि कुंवर सा. उन्हें ढूंढने गये हुये हैं। बहन ने आश्वस्त किया और चिंता न करने के लिये कहा। पर उसका मन नहीं मान रहा। जाने के पहले पति से हुई बार्ता उसके मन में पचासों संदेह पैदा कर रही थी। चाय पीते हुये पति ने एकांत पाकर उससे कहा था,

'अंजू मैं मुसीबत में हूं। पांच लाख रु. का इंतजाम करना पड़ेगा।'

'क्यों क्या काम आ गया?'

'क्या कहूं? बस इज्जत का सवाल है।'

'कुछ बताओगे भी, या समझूं कि फिर डिब्बे में हार गये।'

'यही समझ ले।'

अंजना सदमे में आ गई। पति ने दो महिना पहले ही उसकी व बच्चों की कसम खा कर डिब्बे का व्यापार करने से तौबा की थी। तो उन्होंने कसम तोड़ दी।

'आपने तो मेरी कसम खाई थी न?'

'गल्ती हो गई।'

'तो अब आप ही जानो, मुझे भाई साहब से कहना पड़ेगा।'

'हूं'।

बस इतना ही कह कर वे घर से निकल गये थे। अंजना दो घंटे से उहापोह में थी। पहले भी परिवार ने उनके बीस लाख रु. चुकाये हैं। कोई बच्चे तो हैं नही। शादी लायक बेटे बेटी हैं। बच्चों को शिक्षा देते है। सरकारी स्कूल में अध्यापक हैं। समाज में अच्छा दबदबा है। परिवार की राजनैतिक पहुंच भी है। इस तरह परिवार की साख को कहां तक बट्टा लगायेंगें। माना हमारे लिये इतनी सी रकम का इंतजाम करना मामूली बात है पर गल्ती की है तो कुछ सजा तो मिलनी ही चाहिये न। और मेरा क्या है सब कुछ उन्हीं का है। वो तो पिछली बार हुये नुकसान से परिवार ने उनके हाथ बांध दिये हैं वरना उन्हें मेरे से कुछ कहने की जरूरत ही क्या थी? खुद ही उड़ा देते परिवार की जमा पूंजी को। बच्चे बच्ची जायें भाड़ में। शराबी और जुआरी का क्या भरोसा?

आध घंटे बाद बूंदी से जेठ जी का फोन आया,

'उसको प्राइवेट अस्पताल के आई. सी. यू. वार्ड में भर्ती करा दिया है। भला हो अपने मित्र किशोरजी का जो उसको घने जंगल के

कीचड़ भरे रास्तों से ढूंढकर अस्पताल तक लाये। हमारे तो बस की बात भी नहीं थी। पर बहू यह तो बताओ जब वो घर से निकला था तब कोई बात हुई थी क्या?'

'क्यों? उन्हें क्या हुआ है?'

'लगता है उसने कुछ खा लिया है।'

अंजना आगे नहीं सुन सकी। फोन उसके हाथ से गिर गया और वह कुर्सी पर ही बेहोश हो गई। बेटा दौड़कर आया और उसने मां को पलंग पर लेटा कर चिल्लाना शुरु कर दिया। थोड़ी ही देर में घर में पचासों लोगों की भीड़ आ जुटी। अंजना को होश आ गया तब भी वह कुछ नहीं बोली। बस पति के हाल पूछती रही। बेटा कहता रहा, 'अब ताऊजी सबसे बढ़िया अस्पताल में इलाज करा रहे हैं न? अभी उनको होश नहीं आया है। अस्पताल पहुंच गये तो ठीक हो ही जायेंगें।'

खुशफहमी ज्यादा देर कायम नहीं रह सकी। एक फोन आया और घर में कुहराम मच गया। पूरे गांव में एक मिनट में ही खबर पहुंच गई कि संजयजी मास्टर सा. की हार्टअटैक से मौत हो गई है। मोहनलालजी गांव के प्रतिष्ठित व रसूख वाले नेता थे। बूंदी में भी उनका सम्पर्क बड़े बड़े लोगों से था। मौत का कारण हार्ट अटैक लिखवाने में उन्हें ज्यादा परेशानी नहीं आई। सही कारण लिखवाने के बाद होने वाली परेशानियों से वे वाकिफ थे। उन्होंने दुनिया देखी है और इस तरह की न जाने कितनी घटनाओं के वे चश्मदीद रहे हैं। छोटे भाई के शव को वे रात दस बजे से पहले ही घर ले आये। विषाद अपनी जगह था पर वे बार–बार एक ही बात सोच रहे थे, 'भाई ने ऐसा क्यों किया?'

कुछ मेरे से कहता तो सही अभी तो मैं जिंदा हूं। वे रात इसी सोच विचार में सो न सके। भाई संजू के मोबाइल को उन्होंने छान मारा है। किस किस के फोन आये और भैया ने किस किस को फोन किये। पर आगे पूछताछ तो इस दुःख की घड़ी में नहीं हो सकती न?

अगले दिन दाह संस्कार में पूरा गांव उमड़ पड़ा। न जाने कहां से अफवाह भी फैल गई। लोग कानाफूसी कर रहे थे, 'मास्टर जी ने आत्महत्या की है।'

किसी ने खंडन मंडन भी नहीं किया। दुनियादारी सब जानते हैं, कानून पुलिस के झंझट, नौकरी व बीमा कम्पनी से आने वाला पैसा, कुदरती मौत बताना ही ठीक है। मोहनलालजी ने रिश्तेदारों के जाने के बाद फुर्सत सी देख बहू से पूछा ही, 'क्या हुआ था?'

बहू अंजना ने रोते रोते पूरी बात बताई और चीखी, 'मैं ही हूं उनकी मौत की जिम्मेदार। भगवान मुझे भी उनके पास बुला ले।'

मोहनलालजी को शक तो था ही अब पुष्टि भी हो रही थी। किशोरजी ने अस्पताल जाते समय संजू से बहुत पूछा था, 'क्या हुआ, कुछ तो बताओ।'

पर संजू ने तो बार–बार एक ही बात कही, 'मुझे बस मेरे भाई साहब से मिलवा दो।'

संयोग ऐसा हुआ कि भाई सा. से मिलने के पहले ही संजू आई. सी. यू में चला गया। वहां से वापस आया तो वह भाई साहब से कुछ कहने लायक नहीं रहा। मोहनलालजी दिन भर बैठे–बैठे संजू के मोबाइल में मिले नम्बर घुमाते रहे। एक नम्बर गांव के ही कम्प्यूटर व्यापार करने वाले का था जिससे वे दो माह पूर्व ही संजू का कोई काम न करने की कह चुके थे। उसने बात छिपाकर कह दिया कि वे तो कभी–कभी भाव पूछ लेते थे। एक नम्बर बूंदी के कमोडिटी सेन्टर का था। उसने बताया, 'हां, संजयजी मेरे यहां व्यापार करते थे और उन्होंने पहले भी नुकसान की रकम जमा कराई थी तथा उन्हें आज पुनः हिसाब करने आना था।'

मोहनलालजी के एक परम मित्र जानकीलालजी ने बताया,

'संजय मेरे से आठ दिन पूर्व दो लाख रु. आपका नाम लेकर ले गया था। दो तीन दिन में वापस देने की बात कही थी। क्या आपने नहीं मंगाये थे?'

ठीक है कुछ नुकसान आ गया था पर उसकी करोड़ों की सम्पदा के सामने यह कुछ मायने नहीं रखता। व्यापार में नफा नुकसान होता ही रहता है। इसके लिये कौन अपनी जान देता है। परिवार के तीन भाइयों में सबसे ज्यादा कमाई उसी ने की थी। राजनीतिक पहुंच से विवादग्रस्त सम्पतियां खरीद बेच कर,, लोगों के उलझे मामले सुलझा कर और सबसे ज्यादा अपनी पत्नि को सरपंच बना कर। उसमें डिब्बे का व्यापार करने के सिवा कोई ऐब नहीं था। उसकी जेब से उसकी हिसाब की डायरी और पांच हजार रु. सही सलामत मिले हैं। वह पहली बार गांव से अकेला बूंदी गया था। गांव से बूंदी का रास्ता मात्र आध घंटे का। वह एक घंटा बूंदी में और कहां रहा?

अगले दिन ही तीसरा कर लिया गया। मोहनलालजी ने बूंदी से आने वाले सारे मित्रों से व रिश्तेदारों से पूछा पर संजय उस दिन किसी के यहां नहीं गया था। तो क्या वह गांव से ही यह सोचकर गया था। एकदम निर्जन स्थान में जाकर उसने जहर खाया। जहर के असर से तड़पते हुये उसे अपनी गलती का अहसास हुआ और उसने भाई साहब को फोन किया। भाई सा. ने अपने प्रयासों से उसे अस्पताल भी पहुंचा दिया पर वे मृत्यु के मुख से उसे नहीं बचा पाये।

'काश मेरे से कहा तो होता, ऐसी भी क्या शरम की तूने कि अपनी जान ही दे दी रे संजू।' अस्थियों से भरी लाल थैली उठाये, दबंग लौहपुरुष मोहनलालजी के गालों पर हादसे के बाद पहली बार आंसू ढुलक पड़े।

गिरफ्तारी

उन्नीसवीं सदी तक देश में हिन्दु मुस्लिम एकता कायम थी। दोनों समुदायों ने इकठ्ठे मिलकर अंग्रेजों से आजादी की लड़ाई लड़ी थी। बाद में अंग्रेजों का 'फूट डालो राज करो' नीति का ऐसा जादू चला कि गांव–गांव में वैमनस्य पैदा हो गया। यहां अस्तबल में सारे लोग आकर पहलवानी करते थे अब उनमें भी साम्प्रदायिकता की भावना भर गई। अस्तबल दरअसल अरबी व्यापारियों के घोड़े बांधने की जगह थी जो धीरे–धीरे अखाड़े में तब्दील हो गई। देवा पहलवान में अपने चेलों की मदद से इस अस्तबल पर कब्जा कर लिया तथा इसका नाम वीर हनुमान व्यायाम शाला रख दिया। बस तभी से भाई की तरह रहने वाले उनके मुसलमान साथी उनके दुश्मन बन गये। उन्होंने अपने समाज से सहयोग ले मस्जिद के पास की जमीन में अलग अखाड़ा चालू कर दिया। दोनों अखाड़ों के पहलवानों में कई बार मारपीट हो चुकी थी। देवा पहलवान की ऐसी धाक थी कि पुलिस उसके साथियों तक पर हाथ डालने से कतराती थी।

एक बार थाने में नया जाट दरोगा आया। लंबा चौड़ा और रौबदाब वाला। उसने पुराने वारंट देख कर अपने मातहतों से कहा,

'ये गिरफ्तारीं अभी तक क्यों नहीं हो पाई?'

एक पुराना सिपाही बोला, 'हुजुर इस फाइल को भूल जाओ तो ही ठीक रहेगा।'

'भूल जाऊं? कैसी नामर्दों वाली बात करते हो? कल इस मुल्जिम को गिरफ्तार करने चलना है। मैं भी जाट हूं। देखता हूं कैसा दादा है वो?'

अगले दिन दरोगा साहब के जासूस ने पता लगाया कि वांछित मुल्जिम बल्लू–देवा उस्ताद के अखाड़े अस्तबल में पहुंच गया है। दरोगा ने चार सिपाही साथ लिये और अस्तबल के दरवाजे को खटखटाया। शागिर्दों ने देवा गुरु को खबर की। देवा को तुरंत ही बात समझ में आ गई। नया नया आया है। लगता है कुछ ज्यादा ही जोश में है। तुरंत ही योजना बन गई। देवा गुरु अत्यन्त नम्र बन कर बाहर आये और बोले, 'ओह हुजूर, हाकम साहब, आप! कैसे कष्ट किया? मुझे ही बुलवा लिया होता आपकी सेवा में। हुकुम फरमायें।'

'मैं यहां का थानेदार के. सी. जाट हूं। मुझे खबर मिली है कि बल्लू यहां पर आया हुआ है। उसके खिलाफ छः महिने से वारंट निकला हुआ है। मैं उसे गिरफ्तार करने आया हूं।'

'इतनी सी बात हुजुर। आप हुक्म फरमाते तो मैं खुद बल्लू को आपके पास ले आता। धन्य भाग हमारे जो आप हमारे अस्तबल में पधारे। आओ अंदर पधारो साहब। कुछ इलाइची सुपारी ग्रहण करो फिर बल्लू को अपने साथ ले जाओ।'

दरोगाजी गुरु का व्यवहार देख आश्चर्यचकित रह गये। सिपाही लोगों ने बेकार ही इनको बदनाम कर रखा है। मुझे भी किस तरह डराने का प्रयास कर रहे थे। वे बेझिझक अंदर प्रवेश करने लगे। उनके साथ चारों सिपाही भी अंदर जाने लगे तो गुरु ने दरोगा जी के कान में कहा, 'आपके साथी हिन्दू ही हैं न हुजूर। बजरंगबली का दरबार है। हिन्दु न हों तो इनका अंदर जाना उचित नहीं रहेगा। फिर हुजूर की आज्ञा।'

दरोगा जानबूझ चारों सिपाही गैर हिन्दु लाया था ताकि वे बल्लू को किसी प्रकार से मदद की कोशिश न करें। उसने सिपाहियों से कहा, 'तुम यहीं रुक कर हमारा इंतजार करो, हम अभी आते हैं।'

बरामदा पार करने के बाद देवा ने कहा, 'हुजुर आगे मंदिर है। हम सब हमारे जूते चप्पल यहीं खोलते हैं। हुजुर को कष्ट तो होगा पर बजरंगबली का मान रह जायेगा।'

दरोगाजी अपने जूते मौजे उतार दिये। अंदर पचासेक पहलवान व्यायामरत थे। मंदिर के सामने के आंगन में जाकर देवा ने आवाज लगाई, 'अरे बल्लू! देख साहब तुझे गिरफ्तार करने आये हैं।' 'और हुजूर ! यह है बल्लू आपका मुल्जिम। इसे आप साथ ले जाना।'

दरोगाजी मन ही मन बड़े प्रसन्न हुये। यह काम तो बहुत आसानी से बन गया।

गुरु देवा ने आवाज लगा लगाकर अपने चेलों को इकठ्ठा कर लिया। 'अरे कुंजी, सावन! जाओ साहब के लिये कुर्सी ले कर आओ। अरे बसंत! जा, साहब के लिये कुये के पानी के ताजा जल का लोटा भर ला। मोहन तुम शाल लेकर आओ। आज साहब को शाल उढायेंगें। धन्ना तू खड़ा खड़ा क्या कर रहा है। अभी तक रोली चावल नहीं लाया। साहब पहली बार अपने घर आये हैं। देखो इनके स्वागत सत्कार में कोई कमी न रह जावे। गोपाल तू जा नारियल ले आ। श्याम कमरे में से इलाइचीदान ले कर आ।'

गुरु देवा ने साहब को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं नम्रता पूर्वक साहब के पैरों के पास जमीन पर बैठ गये। एक चेले ने आकर दरागाजी को कंबल से ढक दिया और बाकी चेले लगे धमाधम दरोगाजी को बजाने। बहुत देर तक लात घूंसे चलते रहे और गुरुजी जोर जोर से बोलते रहे,

'अरे ये क्या कर रहे हो नासपीटों? दरोगा जी हमारे मेहमान हैं। मेहमानों के साथ कोई ऐसा व्यवहार किया जाता है। अरे मान जाओ रे नासपीटों। तुम्हें दरोगाजी की कसम।'

जब सब थक गये और दरोगाजी जमीन पर गिर गये तो गुरु देवा उन पर लेट गये और चिल्लाये, 'लो मारो पहले मेरे को मारो।'

चेलों को अपने हाथ रोकने ही पड़े। गुरु ने दरोगाजी को उठाया और अंदर कमरे में ले गया। दरोगाजी को पानी पिलाया। दरोगाजी ने अवसर देख अपने कपड़े और चेहरा मोहरा ठीक किया और बाहर निकलने को उद्वत हुये। गुरु हाथ जोड़े उनके साथ।

'माफ करना दरोगाजी ये बावले जवानी के जोश में समझते ही नहीं इन्होंने क्या कर दिया और देखो मेरी बात भी नहीं सुनी। आप बल्लू को तो ले ही जायें। दरोगाजी ने नजरें भी नहीं उठाई और बाहर का रास्ता पकड़ा। जब जूते पहन रहे थे तो उन्होंने देवा से कहा, 'गुरु मुझ से भूल हुई पर आपसे हाथ जोड़ एक निवेदन करता हूं। हो गया सो हो गया पर यह बात किसी से न कहना।'

'जैसा हुजूर का हुकुम।'

दरोगाजी ने बाहर आ अपने सिपाहियों से कहा, 'कहां तक बचेगा साला आज तो भाग गया बाद में देख लूंगा।'

कहावत बनी हुई भी है 'पिटा हुआ जाट किसी से नहीं कहता।'

तीन महिने में घटना को लगभग सभी भूल चुके थे। एक दिन थाने से सिपाही आया। अस्तबल में आकर देवा गुरु से मिला। थानेदार ने बल्लू तथा देवा को शाम को पांच बजे थाने में बुलवाया है। सिपाही तो चला गया पर पूरे अस्तबल में सन्नाटा छा गया। पता लगा आज कोई बहुत बड़ा पुलिस का अफसर यहां आया हुआ है। लगता है अब बल्लू और देवा गुरु की खैर नहीं है। थानेदार ने मौका देखकर वार किया है। सलाह सूत हुआ। गुरु ने कहा, 'बुलाया है तो जाना तो पड़ेगा ही। कुछ हो जावे तो फिर आप लोग देख ही लेना।'

पांच बजे शाम को बल्लू और देवा अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहन कर थाने में हाजिर हुये। दोनों गुरु चेले ने खूब मालिश कर अपने बदन को चमकवाया था। दोनों को हाथों में तेल पिले लठ्ठ शोभायमान थे। देवा गुरु तो था ही नम्रता की मूर्ती। वो तो जाकर नीचे फर्श पर बैठ गया और बल्लू था जवान उद्दंड। वो तो सीधा जा पास पड़ी कुर्सी पर जम गया। अब गिरफ्तार ही तो करेंगें और क्या? थोड़ी देर में दरोगाजी व बड़े साहब बाहर आये। गुरु ने दंडवत् किया और बल्लू ने दोनों को देखकर मुंह फेर लिया। दरोगाजी ने दोनों का परिचय दिया। बड़े साहब ने आगे बढ़कर गुरु को हाथ से पकड़ कुर्सी पर बिठाया। 'ओह तो तुम दोनों हो यहां के शेर। तुम्हारे ऊपर हमें बहुत नाज है। दरोगाजी ने बताया है कि तुम्हारे डर के कारण यहां चोरी चकारी और दंगे नहीं होते। तुम दोनों गुरु चेलों का नाम तो मैंने राजधानी में भी सुन लिया था। आज तुम्हारे से मिलने की इच्छा भी पूरी हो गई। हम तुम्हारे गांव की ओर से निश्चिंत रहते हैं। अच्छा है हमें इधर कम ध्यान देना पड़ता है। तुम अपने काम में लगे रहो। कोई मदद की जरूरत हो तो दरोगा जी हैं ही।'

'बस हुजुर दरोगाजी की तो हमारे पर बहुत मेहरबानी है। हम तो बस आपके आदेश के ताबेदार हैं।' देवा ने दोहरा हो झुक कर कहा। बड़े साहब ने जलपान व चाय पिलाकर उन्हें विदा किया। थाने के आसपास के मकानों में हथियार लिये बैठे उनके चेले आश्चर्य से सारा खेल देखते रह गये। उन्हें कुछ करने का अवसर ही नहीं मिला।

बहस

पाटन में 1940–50 के दशक में श्याम उस्ताद का अखाड़ा अस्तबल में चलता था। उनका खास चेला सुक्खा और वे दोनों को पाटन का शेर कहा जाता था। देशव्यापी साम्प्रदायिक झगड़ों का असर यहां भी हुआ। यहां मुस्लिम संप्रदाय के अखाड़ों की तूती बोलती थी तथा पूरी जनता उनसे खौफ खाती थी। श्याम–सुक्खा ने उनके खिलाफ शक्तिशाली संगठन खड़ा किया। इस दौरान हुये आपसी झगड़ों में कुछ मौतें भी हुई। मुकदमेंबाजी में दो चर्चित घटनायें सुनने में आती है।

दंगाइयों ने एक हत्या कर दी। दूसरे सम्प्रदाय के एक पहलवान पर मुकदमा चला। गवाह सबूत होने के बाद लगा कि सजा होगी ही। आखरी हथियार के रूप में दिल्ली से नामी फौजदारी वकील गवाह से जिरह के लिये बुलवाया गया। जिरह करने से पहले वकील ने अपने पक्षकार मुल्जिमों को गालियां दी। 'मुझे कहां ला फंसाया? ये तो शकल से ही बदमाश लगता है इसे तो फांसी होनी चाहिये।' फिर गवाह से जिरह की।

'हां तो भाई, मृतक जिस मकान के अंदर घुसा उसकी छत कितनी ऊंची थी?'

'यही कोई सात फीट पर टीनशेड था।'

'तो इसने धारिया यों आडा मारा ना?'

'नहीं, ऊपर से सिर पर मारा।'

'अच्छा धारिया कितना बड़ा था?'

'यही कोई छः फुट का।'

'और साढ़े पांच फुट का आदमी। तो धारिया चद्दरों से टकरायेगा या मरने वाले के सिर पर लगेगा। अरे तुम्हें तो ढंग से गवाही देना भी नहीं आता। अब बता कैसे इसे फांसी दिलवाऊं?'

केस में मुल्जिम को संदेह का लाभ देते हुये बरी किया गया।

एक हत्या के मुकदमें में गुरु–चेले को आजीवन कारावास बामुशक्कत की सजा निचली कोर्ट से हो गई थी। दोनों को पुलिस ने खून से सने कपड़ों के साथ गिरफ्तार किया था। अपील में दिल्ली से वकील किया गया। मेल गाड़ी का आने जाने का आरक्षित टिकट तथा एक दिन की पांच हजार रु. फीस दी गई। 'मैं सुबह की गाड़ी से उतरूंगा और शाम की गाड़ी में वापस बैठ जाऊंगा। अदालत तक ले जाने तथा वापस लाने की व्यवस्था तैयार रखना। मेरे पास समय बिल्कुल नहीं है।'

सारी शर्तें मानी गई। निर्धारित पेशी पर बहस शुरु हुई।

'हुजूर ये खून तो सुक्खा के साले का है। ये दोनों तो लड़ाई झगड़े से डरकर सुक्खा के ससुराल चले गये थे। दंगाईयों ने वहां भी इनका पीछा किया तो ये दोनों जंगल की ओर भागे। सुक्खा का साला भी जीजाजी जीजाजी कहता हुआ इनके पीछे भागा। रेल की पटरी के पास गिट्टी में सुक्खा का साला गिर गया। उसके शरीर में कई जगह चोटें आई तथा खून निकलने लगा। सुक्खा ने रुक का साले को गोद में उठाया और फिर दोनों भागे। थोड़ा आगे जाने पर श्यामा ने साले को गोद में लिया और भागे। इस तरह हुजूर दोनों के कपड़े खून से तरबतर हो गये। यह मृतक का खून नहीं है। दोनों अस्पताल जाना चाहते थे। लोग बाग क्या कहेंगें इस डर से उन्होंने अपने कुर्ते उतार कर पोटली में बांध लिये थे कि चलो घर जाकर धो लेगें। इसी बीच रास्ते में पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया और हत्या का मुकदमा चला दिया। हुजूर ये तो दोनों बहुत शरीफ लोग हैं। इनका कसूर तो बस इतना ही है कि भगवान ने इनको कसरती बदन दिया है। इसीलिये दूसरे मजहब वाले इनके दुश्मन हो गये हैं। आप जरा बाहर तो देखिये इनको मारने के लिये कितने लोग तैयार खड़े हैं। इन्हें सुरक्षा उपलब्ध करवाइयेगा अन्यथा ये लोग बाहर निकलते ही इन्हें मार डालेंगे।

सजा केवल खून से सने कपड़े साथ मिलने के सबूत पर ही दी गई थी। इसलिये अपील में दोनों बरी हुये।

अपशकुन

आज दीवाली की पूजा है। कुंवर तेजराज ने नये सिलवाये कपड़े पहने और बनठन के पूजा के लिये दुकान जाने को तैयार हो गया। बींदणी ने नये कपड़े देखते ही टोका, 'ये कपड़े आपने कब सिलवा लिये। यह पेंट तो नीले रंग की है। आपको पता नहीं हमारे यहां नीले कपड़े नहीं पहने जाते। माताजी की आंट है।'

'तुम्हें भी टोकने के लिये यही समय मिला था क्या? यह पेंट तो जीन्स की है जो रेडीमेड ही ली है। यह नीला नहीं आसमानी रंग है और जीन्स में सबसे ज्यादा यही रंग आता है।'

इतना कह कुंवर तेजा दुकान चला गया पर उसके मन के किसी कोने में शंका का बादल छुप कर बैठ गया।

दुकान जाते ही मुनीम ने बताया कि हमारे ग्राहक भीमराजजी को पुलिस ने थाने में बिठा रखा है। भीमराजजी ने आपको बुलाया है। यह सुनते ही कुंवरजी के तो पसीने छूट गये। वो क्या उनके बाप दादे भी कभी थाने में नहीं गये थे। उन्होंने मुनीमजी को ही भेज दिया।

'पूछना क्या काम है? उन्हें समझा देना कि अभी पूजा का समय हो रहा है इसलिये मैं नहीं आ पाऊंगा।'

इधर कुंवरजी बहुत अनमने मन से पूजा की तैयारी करते रहे। दस मिनट बाद ही मुनीमजी समाचार लेकर लौटे।

'हमारी दुकान से सुबह भीमजी की दुकान पर मावा गया था। भीमजी ने उसमें से कुछ माल मोहल्ले के एक ग्राहक को बेचा। ग्राहक को उसमें बदबू आई तो वह मिठाई का थाल ही भीमजी की दुकान पर ले आया। वह मावा शक्कर व मेहनत के पैसे मांग रहा था तथा आरोप लगा रहा था कि आपकी दुकान से खराब माल जाने के कारण मेरी सारी मिठाई खराब हो गई है। भीमजी को पूरा विश्वास था कि हमारी दुकान का माल खराब हो ही नहीं सकता इसलिये वे भी अड़ गये। उन्होंने ग्राहक को लड़–झगड़ कर भगा दिया। ग्राहक मोहल्ले का नेता है, वह सीधा पुलिस स्टेशन चला गया और वहां उसने भीमजी के खिलाफ रिपोर्ट लिखा दी। पुलिस तो ताक में रहती ही है। पुलिस जीप लेकर आई और भीमजी का माल तथा भीमजी को थाने में ले गई। पुलिस वालों को भी माल खराब लग रहा है। वे केस बना रहे हैं।'

'भीमजी ने क्या माल हमारी दुकान का होना बता दिया है।'

'नहीं भीमजी हमारे पुराने ग्राहक हैं, उन्होंने कह दिया कि सुबह कोई गांव का दूधवाला उन्हें यह माल बेचकर गया था। उनका एक मिलने वाला पुलिस में सिपाही है। उसने भीम जी को समझा दिया था कि किसी का नाम लोगे तो मामला और उलझ जायेगा।'

'तो भीमजी अब क्या चाहते हैं।'

'वे चाहते हैं कि हम किसी तरह उनकी दीवाली तो घर की करवा दें। बाद में केस चले उससे निबटें।'

कुंवरजी के चेहरे पर चिंता की लकीरें बहुत गहरी हो गई। कहीं ऐसा न हो जाये पुलिस वाले थर्ड डिग्री का इस्तेमाल कर उनसे अपना नाम खुलवा लें। कहीं माल अपने यहां से ही तो खराब नहीं गया था।

'मुनीमजी जरा पता तो लगाओ यह खराब मावा कहां से आ गया। कहीं उसमें का और माल तो हमारे पास नहीं रह गया। यदि खराब हो गया होगा तो और जगह से भी शिकायतें आयेंगी।'

मुनीमजी ने आकर बताया कि हमारा बनाया हुआ माल तो सब सही है पर ये जो डलिया सुखरामजी की दुकान से हमने मंगवाई थी यह माल खराब है। यह माल हमने दीवाली के चक्कर में देखा नहीं और इसी में से भीमजी की दुकान पर माल गया है। सुखरामजी का माल हम सदैव खरीदते हैं उनके माल में कभी इस तरह की शिकायत तो नहीं आई। कुंवर जी ने तुरंत सुखरामजी को फोन पर तलब किया। सुखरामजी ने बताया कि उन्होंने तो वह माल राठौर जी से लिया था और विश्वास पर ही बिना देखे आपको भेज दिया।

'तो अब आप भी हवालात में दीवाली मनाने के लिये तैयार हो जाईये।' कुंवरजी ने धमकी भरे स्वर में कहा।

'क्यों ऐसा क्या हो गया।'

कुंवरजी ने पूरा वाकया सुनाया और तुरंत ही राठौर साहब को साथ लेकर दुकान आने के लिये कह दिया। राठौरजी दूसरे स्तर के व्यापारी थे। पुलिस–कचहरी से उनका काम पड़ता रहता था। थोड़ी देर बाद ही राठौरजी का फोन कुंवरजी के पास आ गया। 'क्या छोटी–मोटी बातों से घबरा जाते हो? बताओ क्या करना है?'

'भीमजी को पुलिस से छुड़ाना है।'

'हो जायेगा और जो भी खर्चा लगेगा मैं करूंगा। और बताओ।'

'यह आपका खराब माल पड़ा है इसका क्या होगा?'

'सब मेरी दुकान पर भेज दो, बस।' फोन बंद हो गया। कुंवर ने मुनीमों और हम्मालों को बुलाकर पता लगाया कि इस लॉट का माल किस–किस को गया है। कर्मचारी भेजकर वहां से बचा हुआ माल वापस मंगवाया गया। सभी ग्राहकों से कहा गया कि कोई भी शिकायत आये तो मान लेना और ले दे कर मामले को सुलटा लेना। नुकसान की पूर्ती कर दी जायेगी। सभी ग्राहकों और अपने पास बचा खराब माल इकठ्टा कर राठौरजी को भेज दिया गया।

इधर पंडितजी पूजा कराने के लिये आये और उधर कुंवरजी ने थाने में मुनीमजी को भीमजी को आश्वस्त करने और किसी भी परि. स्थिति में न टूटने के लिये मजबूत करने के लिये भेज दिया।

कुंवरजी की उम्र ज्यादा नहीं है पर सेठ बनवारीजी के बीमार रहने के कारण व्यापार का पूरा भार उन पर अपेक्षाकृत जल्दी ही आ गया। उन्होंने मनोयोग से काम संभाल लिया और मेहनत कर उसे आकाश की ऊंचाईयों तक बढ़ाया। अपने पिता की तरह ही उन्होंने व्यापार में ईमानदारी बरत ग्राहकों का विश्वास जीता। उन्होंने पूरा कारोबार बनियापंथी से ही किया। कभी किसी से लड़ाई–झगड़ा नहीं। कभी कोई थाना–कचहरी नहीं। हमारे पास किसी का पैसा नहीं रहे, चाहे दुनिया हमारा कितना ही खा जावे। हमेशा प्रयास करते नगद में माल खरीदें ताकि दो पैसे का फायदा हो। उधार देने की क्षमता और दुकान की साख इतनी कि सैंकड़ों किमी दूर गांवों के लोग भाग –भाग कर आते। माल खरीदने और बेचने में पूरी होशियारी। आज यह चूक कैसे हो गई? शायद दीवाली की आपाधापी में और सुखरामजी के ऊपर अत्यधिक विश्वास होने से। हे ईश्वर! आज तो इज्जत रख ले आगे से अपनी आंखों के अलावा किसी पर भरोसा नहीं करुंगा। कहीं बात खुल गई कि भीमजी के यहां खराब माल हमारी दुकान से गया था तो हमारी तो पचास बरस की साख ही मिट्टी में मिल जायेगी। और पुलिस ने थाने में बुलवा लिया तो। पिताजी को तो मैं मुंह दिखाने लायक ही नहीं रहूंगा। इस व्यापार में ऐसी लापरवाही कदापि क्षम्य नहीं है। फूड प्वाइजनिंग

होता है तो पांच मिनट में अस्पताल भर जाता है। पूरे शहर मे हाहाकार मच जाता है। सोचते–सोचते कुंवरजी को चक्कर से आने लगे।

चिंता और चिंता। डर इतना कि दुकान के सामने से कोई अनजान आदमी या पुलिस वाला भी निकले तो चौंक जायें। इसी बीच पंडितजी ने आकर किसी तरह से पूजा सम्पन्न करवा दी। ध्यान भगवान के बजाय बस भीमजी पर ही लगा रहा। कहीं वे मेरी दुकान का नाम न बता दें। सात के ग्यारह बजे तक सबके मन में दीवाली का उल्लास था और कुंवरजी का कलेजा मुंह को आ रहा था। आखिर वे दुकान बढ़ाकर घर आ गये। बस अब सोने की ही तैयारी है। हालांकि नींद तो आना असंभव था। उन्होंने नये कपड़े उतार कर रात के कपड़े पहने और बिस्तर पर पसर गये। पत्नि के बहुत पूछने के बाद भी उन्होनें कुछ नहीं बताया। थोड़ी देर बाद फोन की घंटी बजी। कांपते हाथों से फोन उठाया। मुनीमजी का ही फोन था। 'भीमजी की जमानत करवा दी है। केस तो चलेगा पर हमारे ऊपर कोई आंच नहीं आई है। मैं दुकान के सामने से बोल रहा हूं। कोई काम न हो तो घर चला जाऊं।'

'हां ठीक है।'

कुंवरजी की छाती पर रखा भारी बोझ उतर गया। वह नीली जीन्स की पेन्ट अपशकुनी घोषित हो गई। उन्होंने तय किया कि सुबह उस पेंन्ट को किसी को भी दे देगें। घर में भी नहीं रखेंगें।

गेहूं की व्यथा

मैं भारत देश के पंजाब प्रांत के एक गरीब किसान के खेत में पैदा हुआ था। किसान के बेटे बेटी और पत्नी मुझे खेत में लहलहाते देख बहुत प्रसन्न होते थे और मैं उन्हें देख–देख कर मुस्कराता मुटियाता रहा। किसान को अपना गेंहूं कम भाव में आढ़तिये को कर्जा तथा ब्याज चुकाने के लिये बेचना पड़ा। आढ़तिये ने और बहुत सारा गेहूं इकठ्ठा कर उसके साथ मेरे को भी भारतीय खाद्य निगम के कांटे पर तुलवा दिया और मोटा मुनाफा कमाया। किसान के बच्चों का पेट भरने की मेरी साध अधूरी रह गई। किसी न किसी दिन तो मेरे जीवन की सार्थकता होगी ही। मैं किसी भूखे का पेट भरने के काम में आऊंगा ही। मेरा दुर्भाग्य, मुझे बोरियों में भरकर बहुत बड़े गोदाम में रख दिया गया। वहां विभिन्न बदबुओं के साये में मैं चार साल तक पड़ा तड़पता रहा। यहां तक कि मेरा रंग भी काला पड़ने लगा। फिर दिन फिरे ही। मुझे मालगाड़ी के डिब्बों में लादकर राजस्थान प्रांत के बारां नगर में भेज दिया गया। सुनने में आया कि राजस्थान बहुत गरीब प्रांत है तथा यहां अकाल पड़ता ही रहता है। मैं यहां के गरीबों की भूख मिटा सकूंगा यह सोच कर ही मुझे बहुत खुशी हुई।

मालगाड़ी से उतारकर मजदूरों द्वारा मुझे ट्रकों में भरकर पुनः खाद्य निगम के बदबूदार गोदाम में डाल दिया गया। हे प्रभो! अभी मेरी कितनी दुर्दशा और होनी बाकी है। मैं दो महिने और वहां पड़ा रहा। अंत में एक दिन मुझे ट्रक में डालकर जंगल के एक गांव डूंगरी ले जाया गया। वहां के राशन डीलर को आदेश किया गया कि वह मुझे गरीब सहरियों को दो रु. किलो में बेचे। राशन डीलर ने आधा माल तो सीधा ही समरानिया गांव के एक व्यापारी को बेच दिया। 'अरे यह तो मेरा ब्लैक हो गया। राशन डीलर को तो बहुत मोटी कमाई हो गई। यह इंसानों की दुनिया में क्या हो रहा है।' मैं कुछ समझ नहीं पाया। हां, मुझे डीलर ने बोरी खोलकर दुकान पर फैला दिया। एक गरीब सहरिया राशनकार्ड लेकर आया। डीलर ने पूछा,

'गेंहूं ही लोगे या पचास रु. दे दूं। बस राशनकार्ड पर लिखवा कर ले जा।'

सहरिया थोड़ा समझदार था। उसने सोच कर कहा, 'नहीं आप तो बीस किलो गेंहूं ही दे दो ये लो चालीस रु.।'

''अरे तुम गेहूं कब से खाने लगे। तुम्हें तो दारु की थैली ही चाहिये न?''

'नहीं गेंहूं ही चाहिये।'

अब मैं एक गरीब आदिवासी सहरिये की झोली में आ पड़ा। मुझे खुशी हुई चलो अब तो मेरा जीवन सफल हो ही जायेगा। सहरिया मुझे लेकर एक परचूनी की दुकान पर चला गया।

'सेठजी बीस किलो गेंहूं हैं। क्या भाव लोगे?'

'पांच रु. किलो ले रहे हैं। राशन की दुकान से ही लाया होगा न?'

'हां, लाओ दे दो एक सौ रु.।'

परचूनी दूकानदार ने मेरे को तोला तो अठारह किलो ही निकला।

'भैया यह तो अठारह किलो ही है, लो नब्बे रु.। हमारे तो यह रोज का ही काम है।'

सहरिया ने डीलर को एक भद्दी सी गाली दी और रु. लेकर चला गया। मुझे फिर बाजार में आना पड़ा। मैं पुनः बोरियों में बंद हो गया और चार दिन बाद मुझे ट्रक में लाद कर बारां की मंडी में बेचने के लिये भेज दिया गया। अभी मेरी बोली लगने का नम्बर आ ही रहा था कि हंगामा सा हो गया। कुछ लोग कह रहे थे,

'अरे यह तो कंट्रोल का गेंहूं है।'

तुरंत ही वहां कुछ हाकिम से दिखने वाले लोग आ गये। उन्होंने कुछ कागज पत्र बनाये और पता लगा कि मेरे को जब्त कर लिया है। मुझे जब्त कर एक व्यापारी के गोदाम में सड़ने के लिये डाल दिया गया। मैं रोज नई नई बातें सुनता। पता लगा मेरा कोई मालिक ही नहीं बना है। सुना है मुझे बेचने पर जेल जाना पड़ जाता है और जुर्माना भी भुगतना पड़ता है। यह भी पता लगा कि पुलिस वाले इस मामले को दबाने में बहुत खा गये। मै सब सुन–सुन बहुत दुखी होता पर मैं कर ही क्या सकता था सिवा भगवान से दुआ मांगने के।

एक दिन प्रसन्नता का समाचार मिला। सरकार ने मुझे नीलाम करके पैसे सरकारी खजाने में जमा करने के आदेश दे दिये हैं। मेरी नीलामी की गई और अचरज की बात यह थी कि मैं बहुत कम भाव में बिका। खुसर फुसर हो रही थी कि सांठगांठ हो गई है, कागज का पेट भरना है। मैं अभी तक इंसान का पेट भरने के लिये तरस रहा हूं और ये मेरे से कागज का पेट भर रहे हैं। खैर मुझे एक भले से व्यापारी ने 'अब मैं इंसानों के खाने के काम का नहीं रहा' कह कर खरीदा और सीधा मालगाड़ी में भरवाकर मद्रास के मैदा मिल वाले को बेच दिया। वहां मेरी बहुत सारी मशीनों से सफाई और धुलाई की गई तथा मुझे वापस इंसानों के उपयोग के लायक बनाया गया। मुझे मशीनों में डाल मेरी मैदा बनाई गई। मुझे संतुष्टि मिली आखिर मेरा उपयोग बिस्कुट बना किसी गरीब को पेट भरने में हो सकेगा। लेकिन मेरे कर्मों में कोई दोष था। मेरे बिस्कुट भी बने पर वे अमीर घर के बेटे की प्लेट में रख दिये गये। बेटे को बिस्कुट अच्छे नहीं लगे और उसने उन्हें कुत्ते को खिला दिया। मेरे जीवन का अंत तो हुआ पर किसी गरीब इंसान का पेट न भर पाने का मुझे अफसोस रह गया।

चोर कौन ?

'भाई साहब! पांच बोरी धनिया भेज रहा हूं, तुलवा लेना।'

'धनिया! अभी धनिया कहां से आ गया। अभी तो धनिये का काम भी बंद है। मैं लेकर क्या करूंगा?'

'आपके यहां पड़ा रहेगा, बहुत जगह है। भाव आपकी मर्जी जो लगा लेना। अब कोई ले ही आया तो मैं मना भी कैसे करता।'

रात को सात बजे मामू धनिये का भुगतान लेकर चला गया। भाव पचासेक रु. कम लगाया तो भी उसने कुछ नहीं कहा। अब यह माल दो तीन महिने बाद ही काम आयेगा न। अब मील चलाने के लिये सौ बोरी माल तो कम से कम चाहिये ही न।

दूसरे दिन अखबार में बड़ी खबर छपी थी। मंडी के एक बड़े व्यापारी ने कल दोपहर पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाई है। उसके धनिये के थप्पे से पांच बोरी धनिया रात में गायब हो गया है। खबर पढ़कर हीरा सेठ का कलेजा धक्क रह गया। मामू रात दिन उसके यहां माल बेचता है, क्या वह इस प्रकार से चोरी कर सकता है? हीरा सेठ को चैन नहीं पड़ा। अपनी दुकान जाने के पहले वह मामू की थड़ी पर पहुंचा। मामू नहीं मिल पाया तो वहां बैठे उसके हम्माल से कह कर आया कि आते ही मामू को उसके पास भेजे। दोपहर में खबर मिली कि व्यापारियों के दबाव में पुलिस ने तुरंत कार्यवाही कर पांच चोर जाति के लोगों को धर दबोचा है और उनसे पूछताछ चल रही है।

मामू का दोपहर में फोन आया। समस्या सुनकर उसने कहा,

'हां कुछ लफड़ा हो गया है। मैनें किसान समझ कर उनका माल ले लिया था पर वे तो चोर निकले। आप बिल्कुल चिंता न करें। आप की कोई गल्ती नहीं है। इस मामले को मैं ही निबटाऊंगा।'

सेठ की एक गलतफहमी तो दूर हुई पर डर पूरी तरह से दूर नहीं हो सका। चोरों से पुलिस मामू तक पहुंचेगी और मामू से अगर उसने मेरा नाम उगलवा लिया तो बेकार ही बदनामी होगी और माल तो जायेगा ही। माल को बरामद होने से बचाने के लिये सेठ ने माल को बिना आवश्यकता के पिसवा लिया। कम से कम एक झगड़ा तो निपटेगा।

मामू ने शाम को अपना माल वापस मांगा तो सेठ को लगा यह तो और भी गलत काम हो गया। मामू क्षैत्र के एक बड़े नेताजी के साथ जाकर पुलिस से मिल लिया था। पुलिस भी उसे ढूंढ ही रही थी। अब कार्यवाही तो करनी ही पड़ेगी। व्यापारियों का दबाव भी बहुत है। नेताजी ने बीच में पड़कर समझौता करवा दिया। सारा दोष चोरों के माथे मंढना है। चोरों ने चोरी कर माल मामू को बेचने की बात कही थी। अब मामू को बचाने के लिये रास्ता निकाला गया कि माल चोरों के घरों से ही बरामद होना बताया जाये। इस काम के लिये मामू को धनिया वापस चाहिये। हीरा सेठ ने धनिये को पीस दिया तो अब दूसरी समस्या खड़ी हो गई। धनिया मिलेगा कहां? खैर मामू उसका भी कहीं से इंतजाम करेगा ही। चिंता दो दिन बनी रही। काम निबटाने के बाद मामू सेठ हीरा की दुकान पर पहुंचा।

'जरा सी गलती में तीन दिन और आठ हजार रु. बर्बाद हो गये। बहुत सारे लोगों के अहसान अलग से लेने पड़े। अब जाकर काम निबटा है।'

हीरा सेठ की भी चिंता दूर हुई।

व्यापारिक समाज की गोठ में हीरा सेठ की मंडी व्यापारी धन्ना सेठ से मुलाकात हुई। बातचीत के दौरान हीरा सेठ ने कहा,

'आप तो दमदार नेता हो जो चोरों से चोरी का माल निकलवा लाये। छोटे मोटे आदमी के यहां चोरी होती है तो पुलिस रिपोर्ट भी दर्ज नहीं करती।'

अपनी तारीफ सुनकर भी धन्ना सेठ फट पड़े,

''क्या खाक माल आया है। पांच बोरियों में कचरा भरकर डाल गये और कह दिया कि हमने माल बरामद कर लिया। असली चोर तो वह मामू है जो इनका माल लेता रहता है। उससे बड़े चोर वे नेता लोग हैं जो इनको बचाने के लिये आ खड़े होते हैं। बस अखबार में खबर छपवा दी। दो दिन में चोर अदालत से जमानत करवा कर बाहर आ गये। आगे जाकर छूट जायेंगे।'' 'पर मामू तो सभी किसानों का माल लेता है उसे क्या पता ये चोरी का माल हैं?'

'दुनिया को पता है मामू क्या करता है। रात के तीन बजे साहूकार आयेंगें उसके यहां माल बेचने?'

सेठ हीरा अवाक देखता रह गया। इस दुनिया में किस पर विश्वास करे और किस पर नहीं।

खबरीलाल जी

खबरीलालजी जी शाम के समय मेरी दुकान पर आये। कुछ उत्तेजित होते हुये बोले,

सुना आपने अभी दिनदहाड़े, सरे बाजार लूट हो गई।'

'कहां?' मैने भी उतनी ही उत्सुकता से पूछा। मंडी में। अभी छः बजे ही पांच सात लुटेरे आये और सेठ मुरारी की तिजोरी ले भागे।'

'हां, तभी इधर से पुलिस की गाड़ियां दनदनाती हुई जा रही थी।'

'हां, अब तो जायेगी ही पुलिस। उन्हें पता लग गया ना कि लुटेरे भाग चुके हैं। अब तो पुलिस को पहुंचना ही है। और वह सेठ! एकदम कायर निकला। चार आदमी क्या देख लिये तिजोरी उनके हवाले कर भाग छूटा।'

'नहीं भागता तो मरता क्या? कभी–कभी परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि भागना ही पड़ता हैं। अन्यथा ज्यादा नुकसान हो सकता है।' 'फिर भी कुछ तो मुकाबला करना ही चाहिये। ऐसे मैदान खाली मिल जायेगा तो रोज ही लूट होने लग जायेगी। देखना लुटेरे फिर आयेंगें। ऐसे भीरू लोग उन्हें और कहां मिलेंगें?'

मैं खबरीलालजी की बातों पर चिंतन करता हुआ घर आ गया। वे खबर तो सच्ची सुनाते हैं पर अकसर उनकी टिप्पणियों या प्रतिक्रियाओं से मैं सहमत नहीं हो पाता।

आठ दिन बाद ही खबरीलालजी की बात सत्य हो गई। लुटेरों ने एक सर्राफ की दुकान पर धावा बोल दिया। समय वही शाम के छः बजे। इस बार मुझे खबरीलालजी के आने के पहले ही खबर मिल चुकी थी। सेठ पन्नालालजी का एक बेटा मर चुका है और दूसरा मौत से जूझ रहा है उसे अस्पताल पहुचाया गया है। पन्नालालजी मेरे मित्र हैं। उन्होंने अखाड़े में बहुत पट्टेबाजी की थी और उनके बेटे भी जिम में जाते हैं। मैं उनके यहां हुई इस घटना से बहुत परेशान था। खबरीलालजी को आना ही था। आते ही बोले,

'मैंने कहा था न आ गये न वो ही डकैत दुबारा। बिल्कुल वही स्टाइल, वही समय और वैसे ही लुटेरे। वही भरे बाजार लूट।'

'हां, मैंने सब सुन लिया है। मेरे स्कूल के जमाने के मित्र हैं वो। उनका एक बेटा तो शहीद हो गया है और दूसरा अस्पताल में जिंदगी मौत के बीच संघर्ष कर रहा है। मैं अभी वहीं जाने की तैयारी कर रहा हूं। जो हुआ बहुत बुरा हुआ।'

'हां यह अच्छा नहीं हुआ। देखने वाले बता रहे थे कि दोनों भाई निहत्थे ही डकैतों से भिड़ गये। डकैत बहुत सारे थे, दोनों कहां तक लड़ते। बाजार में तो डकैतो ने इतनी दहशत फैला दी कि लोग दुकानों के अंदर ही दुबक गये। कुछ भी हो आदमी को समय देखकर ही चलना चाहिये। जब इतने डकैत थे तो दे देते तिजोरी की चाबी। ले जाते दो पांच लाख। अभी जान तो बच जाती। जान है तो जहान है। जिन्दा रहेंगें तो फिर कमा लेंगें पैसे। पैसे से इतना मोह भी किस काम कि जान ही चली जाये।'

'इसकी जिम्मेदारी खबरीलालजी आप पर ही है। आपने अभी आठ दिन पहले ही तो मुरारी सेठ को कायर, भीरू और न जाने क्या क्या कहा था? अब जवान लड़के अपने ऊपर यह तोहमत थोड़े ही लगाते। आपको तो बस बुराई करनी है।'

'मैं अपनी ओर से कुछ थोड़े ही कहता हं। मैं तो वह ही कहता हूं जो जमाना कहता है। अब जमाने का स्वभाव ही बुराई करना है तो मैं भी क्या करुं।'

खबरीलालजी आज पहली बार बिना चाय पीये ही मेरी दुकान से चले गये।

भैरवबाबा के वरदान

मैं आयकर विभाग की पेशी पर कोटा गया। मैंने बस से उतर कर एक ऑटो रिक्शा पकड़ा। ऑटो चालक आम लोगों से हटकर विशेष लगा। ज्यादा पैसे दादागिरी की स्टाइल में वसूलनेवाला, बड़बोला, मुझे नीचा दिखाने की कोशिश करने वाला। उसकी शक्ल खूंखार सी लगती थी और बातें दहशत पैदा करने वाली। मैं उससे पूरे रास्ते बात करने से बचने की कोशिश करता रहा और वह मुझे बातों में उलझाता रहा। शोषण के खिलाफ, मेरे जैसे आयकर देनेवाले सेठों के खिलाफ उसका धाराप्रवाह भाषण पूरे रास्ते जारी रहा। उसे देख मुझे बार–बार हमारे ही गांव की एक शख्सियत की याद आती रही। हो न हो यह उसी का भाई या अन्य रिश्तेदार होगा। मैंने पूछा,

'क्या आप अंता के रहने वाले हैं?'

'नहीं तो।'

'तो तुम्हारा परिवार वहां रहता हो।'

'नहीं मेरा कोई रिश्तेदार अंता में नहीं रहता है।'

'मैं एक आदमी को जानता हूं जो व्यवहार में बोलचाल में हावभाव में बिल्कुल तुम्हारे ही जैसा है।'

'कौन है वह?'

'भैरुलाल माली। तुम्हारी शक्ल तो उससे नहीं मिलती पर मुझे लगता है कि तुम उसके जुड़वां भाई हो।'

'मेरे कोई भाईवाई नहीं है। हां मेरा नाम भी भैरुलाल ही है।'

मैं आश्चर्यचकित अपना काम कर घर आ गया। रात को मैंने मेरी मां को यह वाकया सुनाया। उसने बताया कि किसी के बच्चे बच्ची नहीं होते तो वह भैरवबाबा की मान्यता रख लेता है। उनकी कृपा से लड़का होने पर उसका नाम भैरु ही रखते हैं। भैरुजी के वरदान से हुये बच्चे भैरव बाबा की तरह ही नटखट होते हैं। दोनों भैरव बाबा के वरदान से हुये होंगें इसलिये उनमें सगे भाई के से गुण आ गये।
हमारे समाज में यह मान्यता प्रचलित होगी पर मै तो अभी भी इस संयोग पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूं।

पराजय

मैं कक्षा सात में मैं फेल हो गया था। मेरे पांच साथी और थे जो गत वर्ष भी इसी कक्षा में पढ़ रहे थे। हम छः बड़े छात्र स्वाभाविकरूप से नये आने वाले छोटे छात्रों पर रोब गांठा करते थे। हमारा ध्यान पढ़ने लिखने में कम और दूसरों को तंग करने में ज्यादा रहता था। अध्यापकगण भी हमें जानते थे व अक्सर हमें टोकने या मारने से कतराते थे। आधी छुट्टी में हम कबड्डी या गेंद से दड़ीमार दूंचड़ा खेला करते थे। अगस्त का महिना था। उस दिन हो रही तेज बरसात से हमारे मैदान में गीला हो गया। थोड़ी देर खेलने में सारे मैदान में कीचड़ हो गया तथा गेंद भी मिट्टी से सन कर खराब हो गई। मुझे मसखरी सूझी और मैं सभी बच्चों पर गीली मिट्टी के लोंदे बना बना कर फेंकने लगा। थोड़ी ही देर में यह हमारा नया खेल बन गया। मैं भेड़ों के बीच शेर जैसा सबको खिला रहा था। मैं चाहे जिस पर वार करूं पर मेरे पर कोई वार करे ऐसी हिम्मत किसी में नहीं थी। और बच्चे मिट्टी इकठ्ठी करते समय भी ध्यान रखते कि कहीं उन पर प्रहार तो नहीं हो रहा पर मुझे इसकी भी जरूरत नहीं थी। मैं निश्चिंतता से मिट्टी खोद कर उसका बड़ा सा लोंदा बनाने में व्यस्त था कि मेरे सिर के ऊपर मिट्टी के लोंदे का भरपूर प्रहार हुआ। मैंने आश्चर्य और क्रोध से गर्दन उठाकर देखा। सारे छोकरों को जैसे सांप सूंघ गया हो। मैंने जोर से ललकारा,

'मेरे ऊपर लोंदा फेंकने की जुर्रत किसने की है।'

सबकी निगाहें जिस ओर उठी वह कक्षा का सबसे छोटा बालक नरेश था। मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैने नरेश की ओर घूरकर देखा तो वह भयभीत चेहरे से मुस्कराया।

'अच्छा तेरी इतनी हिम्मत, अब देख मैं तेरे को मजा चखाता हूं।'

मैं उस टिंगू से छोकरे को भरपूर मजा चखाने के लिये मिट्टी का बड़ा सा गोला बनाने लगा और इतनी ही देर में नरेश डर कर भाग गया। जायेगा कहां मेरे से बचकर। मैं दो किलो करीब मिट्टी के लोंदे को हाथ में लिये उसे ढूंढने व ललकारने लगा। कोई पांचेक मिनट बाद वह मुझे स्कूल की छत पर नजर आया तो मैं छत की ओर भागा। वह वहां से भी नौ दो ग्यारह हो गया। इतनी देर में आधी छुट्टी समाप्ति की घंटी बज गई। मैंने रोशनदान से नीचे देखा तो उम्मीद के मुताबिक वह पढाकू अपनी जगह पर बैठ किताब निकालने लगा था। उसने सोचा होगा बच गया। अभी मास्टर जी नहीं आये थे पर मास्टरजी आ जाते तो भी मैं उसे नहीं छोड़ता। ऐसे उसे छोड़ दूंगा तो मेरी तो सारी धौंस ही खतम हो जायेगी। मैंने निशाना साधकर फेंका और मिट्टी का लोंदा सीधा उसके सिर पर जाकर गिरा। उसने सिर उठाकर देखा। अब हंसने की बारी मेरी थी। मैं तुरंत ही नीचे कक्षाकक्ष में पहुंचा तब तक उस शरीफ छोकरे ने सारी मिट्टी साफ कर बाहर फेंक दी थी ताकि मास्टरजी आयें तो उन्हें कुछ सफाई न देनी पड़े।

आज न जाने क्यों मास्टरजी ने आने में देर कर दी। मैंने उस पिद्दी को चुनौती दी कि इतनी ही हिम्मत है तो आज लड़ ले। उसने आवदेखा न ताव मेरे से भिड़ गया। उसमें न जाने कौन सा जोश था कि मैं बहुत देर बाद उस पर नियंत्रण कर पाया। मैने उसका सीधा हाथ मेरी टांगों की कैंची बनाकर उसमें फंसा लिया। दो चार मिनट के प्रयास के बाद भी वह हाथ नहीं छुड़वा पाया। मैंने कहा,

'बस इतनी ही ताकत है।'

वह बोला, 'हां छोड़ दे, मैं हार मानता हूं।'

'फिर आगे से तो मेरे से नहीं उलझेगा न।'

'इसमें उलझने की क्या बात है? हम लोग तो खेल रहे थे। तुम्हारे साथ कोई नहीं खेल रहा था तो मैं खेलने लगा।'

'और यह कुश्ती?'

'तुमने चैलेंज किया इसलिये। तुम मेरे से कितने बड़े हो? मुझे पता है कि मैं जीत नहीं पाऊंगा। पर हम जीतने के लिये थोड़े ही खेलते हैं।'

ताजुब्ब है यह लड़का हार भी इतनी आसानी से स्वीकार कर रहा है। उसने मेरे अभिमानी स्वभाव को बदल दिया। मैं सभी को समान मानकर खेलने लगा। मेरे और उसके बीच कभी झगड़ा नहीं हुआ। उसकी साफगोई और हिम्मत के कारण छोटे होते हुये भी वह हमारे साथ खेलने में सदैव आगे रहा। इम्तिहान के बाद रिजल्ट आया तो पता लगा कि नरेश के सारी कक्षा में सबसे ज्यादा नम्बर आये हैं।

रिश्वत

वहां न जाने कब से चारियां हो रही थी। यह बिजली विभाग तो बना ही चोरों के लिये है। नये आये ईमानदार अधिकारी ने एक छोटा सा मामला पकड़ा गया तो साल दो साल का माल का स्टाक मिलाया गया। घपला बहुत बड़ा निकला है। जैसे ईश्वर के आदि अंत को आज तक कोई नहीं पा सका है वेसे ही देश के भ्रष्टाचार के आदि अंत को जान पाना नामुमकिन है। अब अधिकारी ने रिपोर्ट दर्ज करवाई है तो चोर तो पकड़ना ही पड़ेगा। चोर पकड़ने में आयेगा तो ही पुलिस वालों को कुछ मिल पायेगा न। अब यह चोरी तो अथाह है, न जाने कब से हो रही है। न जाने कितना माल न जाने कितने सालों से बाजार में बिक रहा है। जांच एक अनुभवी व समझदार अधिकारी को सौपी गई है। उन्होंने एक मामूली चोर को गिरफ्तार कर लिया तथा पूछताछ शुरु कर दी।

'तुम्हारा नाम?'

'जी, नाम तो मोडूलाल है पर सब मुझे मोड्या ही कहते हैं।'

'जाति?'

'मेघवाल।'

'कहां रहते हो?'

'जी पहले रामपुरा गांव में रहता था। आजकल गोदाम के पीछे ही टापरी बनाकर रहता हूं।'

'कितने दिनों से?'

'यही कोई साल भर से।'

'क्या काम करते हो?'

'मेहनत मजूरी कर पेट भर लेता हूं साहब।'

'पर तुम्हारे पास सरकारी तार, लोहा, पीतल आदि सामान मिला है। जो तुमने गोदाम से चोरी किया है।'

'नहीं हुजुर मैं तो कभी गोदाम के भीतर गया ही नहीं। उधर से मालिक लोग कुछ सामान फेंक देते हैं तो मैं उन्हें कबाड़े में बेच आता हूं और ईमानदारी से आधा पैसा उन्हें दे देता हूं।'

'मालिक लोग कौन?'

'यहां गोदाम में काम करने वाले।'

'अच्छा तुम सामान किसे बेचते थे।'

'कहीं भी जो ज्यादा दाम दे उसी की दुकान पर। '

'तुम सामान किसमें भरकर ले जाते थे?'

'अमूमन हाथ में। थैले या प्लास्टिक के कट्टे में रख कर।'

'पर यहां तो टनों से सामान गायब है।'

'इतनी तो हमारी औकात नहीं है हुजूर।'

उनको पकड़ने की तो मेरी भी औकात नहीं है। अनुसंधान अधिकारी ने मन ही मन सोचा।

'तुमने जहां जहां सामान बेचा है उन सब दुकानों को पहचान लोगे?'

'हां साहब।'

पुलिस ने अदालत से चोर का पांच दिन का रिमांड ले लिया। शाम को पुलिस ने चोर को जीप में बिठाया और वे पूरे बाजार में घूम गये। कबाड़े का लोहा, तांबा, पीतल, बिजली के सामान आदि की सारी दुकानों की एक लंबी लिस्ट बन गई। चोर इशारा करता जाता और पुलिस की फेहरिश्त लंबी होती जाती। अधिकारी होशियार था। ऐसे सुनहरे मौके बार–बार थोड़े ही आते हैं।

रात को पुलिस अधिकारी ने अपने एक खास आदमी को बुलवाया।

'अन्नू दा! जरा यह सूची देखना।'

'हां इसमें तो गांव के सभी लोहा लक्खड़ लेने बेचने वाले कबाड़ियों, सारे बर्तन बाजार के व्यापारियों और कई बिजली के सामान बेचने वालों के नाम हैं। क्या कोई मीटिंग बुलवानी है?'

'अरे नहीं, यह बताओ इनमें से किस–किस को आसानी से दुह सकते हैं।'

'मतलब?'

'ये सब चोरी का माल खरीदने वाले हैं। अब सब को अंदर करेंगें तो हंगामा मच जायेगा न। किसी को अदालत सजा देगी और किसी पर हम जुर्माना करेंगें।'

'अच्छा तो यह बात है। सोने का अंडा देने वाली मुर्गी मिल गई है आपको तो।'

'अब समझे। अब अंडे निकालने में तुम्हारा सहयोग चाहिये।'

'हां, पहले डर बैठाना पड़ेगा। उसके बाद तो मैं सबसे माल निकलवा लूंगा।'

योजना के मुताबिक अगले दिन एक सबसे गरीब व्यापारी हुसैन को दोपहर में पुलिस ने भारी लवाजमें के साथ पहुंच कर पकड़ लिया। पुलिस जानबूझ कर उसे पूरे बाजार में घुमाती हुई थाने ले गई। अगले दिन अखबार में खबर छपी।

'बिजली विभाग का चोरी का माल खरीदने के मामले में एक व्यापारी गिरफ्तार। कई और व्यापारियों की पुलिस को तलाश।'

दोपहर में ही अन्नू दा ने अपना काम शुरु कर दिया।

'आपकी दुकान का नाम भी उस लिस्ट में है। कल में एक जमानत करवाने थाने गया था तो वहां मुझे लिस्ट दिखाई पड़ गई थी।'

'अच्छा। अब क्या होगा?' चिन्तित व्यापारी बोलता।

'अफसर है तो खुर्राट। आप कहो तो देखूं कोई सोर्स। आप तो जानते ही हो पुलिस वाले अपने सगे बाप का काम भी बिना लिये दिये नहीं करते। कुछ नेतागिरी भी लगानी पड़गी। आपके लिये तो मेरे से जो भी हो सकेगा मैं करूंगा।'

कहते हैं धोती के अंदर सब नंगे होते हैं। अन्नू दा को उम्मीद से भी ज्यादा सफलता मिल गई। एक चोर और एक चोरी का माल खरीदने वाला अदालत में पहुंचा दिया बाकी सभी से पुलिस ने ही जुर्माना वसूल कर अपना फर्ज पूरा कर दिया। अन्नू दा के चेहरे पर भी इन दिनों विशेष चमक आ गई।

'हैलो। हां बेटी। सब ठीक है ना? मैं बोल रहा हूं तुम्हारा पापा।'

'बाबूजी प्रणाम्। सब ठीक ही है बाबूजी। आप सब भी राजी खुशी हो नां?'

'हां बेटे सब मजे में हैं। तेरे भतीजे का जन्म दिन मना रहे हैं। रविवार को सब आ जाना। कुंवर सा. कहां हैं? उनसे बात करवा दे।'

'पापा वे तो अभी सो रहे हैं। कुछ परेशान से हैं। रात को नींद नहीं आती।'

'अरे ऐसी क्या बात हो गई। मुझे तो बताया होता।'

'कोई पुलिस केस हो गया बताया। उसको निबटाने के लिये कर्जा लेना पड़ा। बस उसी कर्ज को चुकाने की चिंता सता रही है। मेरे से गहने बेचने के लिये कहा था तो मैंने मना कर दिया।'

'पुलिस केस हो गया और मुझे बताया भी नहीं। ये हमारे मंत्रीजी किस दिन काम आयेंगें जिन्हें जिताने के लिये हमने रात दिन एक कर दिया था।'

''मैं तो आपसे कहना चाहती थी पर उन्होंने मना कर दिया। बोले 'सभी व्यापारियों को देना पड़ रहा है हमें भी देना पड़ेगा।' ऐसे में मैं क्या करती।''

'कुंवर सा. को अभी जगाकर मेरी बात करवा।'

ससुरजी ने जवांईजी से बात की। पूरा मामला समझा। पुलिस अधिकारी का नाम पता पूछा तथा उन्हें आश्वस्त किया।

'अरे मंत्रीजी ये आपके राज में क्या हो रहा है।' श्यामलालजी ने मंत्रीजी से फोन पर बात की।

'कौन? श्याम! क्या नाराजी है? दुनिया तो जूते मारती ही है। तू मेरा जिगरी होकर क्यों मंत्रीजी मंत्रीजी कर उपहास उड़ा रहा है।'

'अब क्या कहूं आपके राज में इन पुलिस वालों ने देखो कैसी लूट मचा रखी है?'

श्यामजी ने अपने जंवाईजी के साथ हुई घटना कह सुनाई।

'अच्छा ऐसा किया उसने? अभी खिंचाई करता हूं उसकी। मेरे को पहले किसी ने बताया ही नहीं। पुलिसवालों ने तो मखौल उड़ा रखा है कानून व्यवस्था का।'

'शर्माजी, कैसा चल रहा है?' मंत्रीजी ने उस पुलिस अधिकारी को फोन लगाया।

'बस आपकी कृपा से सब ठीक है।'

'सुना है बिजली विभाग के चोरी के केस में आपने अच्छी चांदी काट ली है।'

'हां हुकुम, सही सुना आपने। उसी की मेहरबानी से तो चुनावी चंदे का मेरा टारगेट पूरा कर पाया हूं। बस सब आपकी ही मेहरबानी है।'

' हां वो तो मुझे मिल गया है। पर एक काम गलत हो गया है। आपने जिन लोगों से पैसा लिया उनमें हमारे मित्र के जंवाईजी भी शामिल हैं। उनके बिजली की दुकान है। उनका तीन हजार रु. तो वापस करना ही पड़ेगा।'

'अच्छा वो हरि इलेक्ट्रिक्स वाले। मेरे पास तो उनका दो हजार आया है। हां अन्नू के मार्फत आया था। अच्छा तो यह अन्नू भी इतना शातिर है। दोनों तरफ से ही मारता है।'

'मैं कुछ नहीं जानता। उसके तीन हजार रु. वापस पहुंच जाने चाहिये नहीं तो..।'

'बस बस आपने आदेश कर दिया ना उसकी तामील होगी।'

'अबे साले अन्नू तैने चोरों के घर में ही सेंधमारी कर डाली।' थोडी देर बाद शर्माजी ने अन्नू को फोन खड़खड़ाया।

अन्नू झट समझ गया, कहीं चोरी पकड़ी गई है; पर अनजान बन कर पूछा, 'क्या खता हो गई सर।'

'जब हम ईमानदारी से तुम्हें कमीशन दे रहे हैं तो बीच में मारामारी करने की क्या जरूरत आ रही है। पेट नहीं भर रहा था तो मेरे से कहा होता। हरि इलेक्ट्रिक्सवाले चोर को पैसे वापस देने पड़ेगें। साले पहले दे देते हैं फिर चिल्लाते है।'

शर्माजी ने पूरा वाकया सुनाया और कहा, 'अब उसका हिसाब तुम्हीं करोगे। मैंने तो मेरे पास जो पैसे आये थे सब का हिसाब ऊपर कर दिया है।'

'अन्नू दा के साथ तुमने यह अच्छा नहीं किया प्रकाश बाबू।' अन्नू दा ने तीन हजार रु. फेंकते हुये हरि इलेक्ट्रिकल्स के मालिक प्रकाश को धमकी देते हुये कहा। इसके परिणाम बुरे होंगे। मंत्रीजी हमेशा थोड़े ही रहेंगे।'

अन्नू दा बिना कुछ सुने रु. फेंक कर चले गये और प्रकाश बाबू हतप्रभ सोचते रहे। बाज के मुँह में से कबूतर जिंदा बच कर कैसे वापस आ गया?

नेम प्लेट

हमारा दस बारह साल के बालकों का एक दल हनुमानजी की बगीची में सुबह शाम खेलने जाता था। दिन में हमारी बैठक थाने के चौक में जमा करती थी। गांव के थानेदार फरीदजी का बेटा भी हमारे दल में शामिल था। इस गांव में और हमारी उम्र के बालकों के मन में साम्प्रदायिकता का जहर अभी नहीं घुला था। थानेदारजी का बेटा रफीक भी आरती गाता, प्रसाद लेता और बजरंग बली में श्रद्धा रखता। मंदिर के अलावा हमारे पास खेलने की जगह पुलिस थाने का परिसर ही था जहां रफीक का आवास भी था। एक दिन बालकों के मन में आया कि मंदिर में पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है, क्यों न यहां एक हेंडपंप लगवा दिया जाये। थानेदारजी बच्चों की टीम के सबसे बड़े सलाहकार थे। तखमीना बन गया। खुदाई के सोलह सौ रु., हेंडपंड के आठ सौ रु. और पाइप के पांच सौ रु.। मजदूरी बचाने के लिये हम बच्चे श्रमदान करने को तैयार थे। पैसे की व्यवस्था के लिये चंदा इकठ्ठा करने की योजना बन गई और सबसे पहले कस्बे से सबसे बड़े सर्राफा व्यापारी धूलीलालजी के पास बच्चों की टीम पहुंचीं। सेठजी बच्चों की शैतानियों से कुछ चिढ़े हुये थे। उन्होंने चंदा तो दिया नहीं उल्टा हमें भलाबुरा कह कर भगा दिया। सिर मुंडाते ही ओले गिरे। हम बच्चों का दिमाग खराब हो गया। हम चंदा उगाही छोड़ कोतवाली परिसर में हमारे सरपरस्त फरीदजी थानेदार से मिले। सेठ जी से सुनी गालियां बढ़ा चढ़ाकर थानेदारजी को सुना दी। उसमें यह बात भी शामिल थी कि 'तुम्हें तो थानेदार जी से गुंडागर्दी करने का लाइसेंस मिला हुआ है।' फरीदजी ने हमारे से कहा, 'तुम लोग तो तुम्हारा काम करो पैसे तो कहीं न कहीं से आ जायेंगें।

दो तीन दिन बाद ही सब्जीमंडी में कोई लुटेरा एक महिला के गले से सोने की चेन तोड़कर भाग गया। पुलिस में बाकायदा उसकी रिपोर्ट दर्ज हुई तथा दो दिन बाद पुलिस ने मुस्तैदी दिखाते हुये नामी चोर भीम कंजर को बाजार में ही धर दबोचा। पुलिस भीमा को बाजार से थाने तक मारती हुई ले गई। थाने में हुई गहन पूछताछ में भीमा ने स्वीकार किया कि वह आजकल चेन तोड़ने का ही धंधा कर रहा है। आज भी वह इसी ताक में था। पूर्व में हुई चेन चोरी की घटना को उसने ही अंजाम दिया था। पुलिस ने भीमा से पूर्व में चुराई गई चेन के बारे में पूछताछ की तो भीमा ने उसे बाजार में किसी सर्राफा की दुकान पर तीन हजार रु. में बेचना स्वीकार किया। अब पुलिस ने पुनः भीमा का बाजार तक जुलुस निकाला। भीमा सीधा धूलीलालजी सेठ की दुकान पर जाकर रुका।

'यहीं मैं अपना चोरी का माल बेचता हूं।'

बाजार में इकठ्ठे हुये पूरे मजमे ने भीमा चोर की बात को सुना। पुलिस वालों ने मार–मार कर कई बार पूछा। हर बार भीमा ने एक ही बात कही 'अब चाहे मुझे जान से मार डालो पर चेन तो मैंने यहीं बेची है।'

गांव का नामी सेठ; सिपाहियों की हिम्मत नहीं हुई उस पर हाथ डालने की। भीमा को थाने में बंद कर दिया गया। मामला फरीदजी थानेदार की जानकारी में लाया गया। उन्होंने मेरे पिताजी सहित गांव के चार पांच प्रतिष्ठित लोगों को बुलवा कर मामले की जानकारी दी। सबको विश्वास में लेकर काम करेंगें तो बाद में लांछन नहीं लगेगा। सब लोगों ने भीमा से बात की, शक की कोई गुंजाईश नहीं है।

'अब पुलिस को अपनी कार्यवाही तो करनी ही पड़ेगी।'

रात में ही सेठ धूलीलालजी को भी बुलवा लिया गया। उन्होंने बहुत सफाई दी, 'यह आदमी मेरी दुकान पर कभी नहीं आया।'

पर पुलिस के लिये ऐसे समय साहूकार से ज्यादा चोर का बयान विश्वसनीय होता है। कानून ही ऐसा ही है। भारतीय दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 514 के तहत सेठजी को दो साल की सजा हो सकती है। जमानत भी शहर की अदालत से मिलेगी। दो चार दिन अंदर भी रहना पड़ेगा।

गांव के सभी लोगों को पता था कि फरीद सा. रिश्वत नहीं लेते हैं। ऐसे भले थानेदार किसी गांव को किस्मत से ही मिलते हैं। फिर भी गांव की इज्जत की खातिर सभी ने मामले को किसी तरह से सुलटाने का अनुरोध किया।

'अब जिस महिला का नुकसान हुआ है उसे चेन या पैसे देकर रिपोर्ट वापस करवानी पड़ेगी। ये भीमा चोर और ये मेरे पुलिसवाले इनको भी समझाना पड़ेगा। कुल मिलाकर उस जमाने में पांच हजार रु. में सौदा तय हुआ जो इस गांव की हैसियत के तथा उस समय के अनुसार बहुत मोटी रकम थी। सेठजी ने पांच हजार भेजकर राहत की सांस ली।

अगले दिन दोपहर में एक बजे हम बच्चे थाने में कबड्डी खेलने पहुंचे तो वहां पुलिस और चोर के बीच नोंक–झोंक चल रही थी। भीमा चोर कह रहा था, 'एक हजार तो दे ही दो साहब। तीन दिन हो गये आपकी सेवा करते और मार खाते–खाते।'

'अरे तो फिर हेंडपंप के लिये क्या बचेगा? उस नगमा को और चारों सिपाहियों को भी तो देना पड़ेगा। आखिर उन्होंने भी तो इतनी मेहनत की है।' फरीदजी समझा रहे थे।

सौदा सात सौ में पटा। हमने सुना भीमा जाते–जाते कह रहा था, 'बुला लिया करो साहब, आपकी सेवा में सदैव हाजिर रहूंगा।' हम को माजरा समझ में आने लगा और हम खूब हंसे।

हमें आवश्यकता से ज्यादा पैसे मिल गये तो हमने हेंडपंप के साथ एक टंकी भी रखवा दी। मैंने पेंटर से टंकी पर 'यह हेंडपंप तथा टंकी थानेदार साहब श्री फरीदजी द्वारा लगवाई गई' लिखने के लिये कह दिया। मंगलवार के दिन हेंडपंप व टंकी के उद्घाटन के लिये छोटा सा समारोह रखा गया। जिसमें गांव के सभी लोगों को बुलवाया गया। सुबह–सुबह फरीदजी मंदिर की ओर गये। उन्होंने देखा कि पेन्टर टंकी पर उनका नाम लिखने की तैयारी कर रहा है। उन्होंने पेन्टर को रोका तथा टंकी पर 'सेठ साहब श्री धूलीलालजी द्वारा प्रदत्त' लिखवा दिया। हमने आकर देखा तो हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। फरीदजी आये तो हमने सवाल किया।

'अरे छोकरों हम पुलिस वाले किसी को चंदा देते हैं क्या? कभी जमात में या मस्जिद के लिये एक पैसा नहीं दिया और यहां हनुमानजी के मंदिर पर मेरी नेम प्लेट लगवा रहे हो। नाम तो उसी का होना चाहिये न जिसका पैसा लगा है? ऐसे तो मेरे यहां लाइन लग जायेगी चंदा लेने आने वालों की।' फरीद जी ने हमें समझाया। हमें बहुत डर लग रहा था। सेठ धूलीलाल जी इसे पढेंगें तो उन पर क्या गुजरेगी?

खैर सादा समारोह हुआ। इधर फरीदजी अपने भाषण में सेठ धूलीलालजी की ऐसे समाज सेवा के कार्यों में योगदान करने के लिये तारीफ कर रहे थे और उधर सेठजी की शक्ल देखने लायक हो रही थी। घर आने के बाद पिताजी ने मुझे डांटा, 'मेरे से ही कह देता। ऐसे नाटक करवाने की क्या जरूरत थी।'

'हमने कुछ नहीं किया पिताजी। यह तो सेठजी की स्वयं की थानेदारजी से की गई बदतमीजी का परिणाम है।'

देशभक्त

मैं अपने मित्र प्रकाश एवं रवि के साथ रेल्वे प्लेटफार्म पर धीरे–धीरे चहलकदमी करते हुये हवाखोरी कर रहा था। अचानक पीछे से एक स्मार्ट से नौजवान ने आकर मेरा कंधा पकड़ा।

'भाई साहब! आपने मुझे नहीं पहचाना मैं आपके छोटे भाई का मित्र अंशु।'

'अरे हॉ, पर आज इस वेश में।'

'भाई साहब! अभी मुझे आप लोगों की मदद की जरूरत है। सीआईए हमारे देश के खिलाफ बहुत बड़ी साजिश कर रही है, और मुझे उसका पता चल गया है। अब आप तो जानते ही हैं कि ये लोग कितने खतरनाक होते हैं, मेरी जान भी ले सकते हैं।' अंशु लगभग हमारी आड़ लेकर मेरे आगे चलता हुआ बोला।

मैं सोच में पड़ गया। कहां कोई दस साल पहले देखा वह सीधा सादा सा लड़का और कहां यह सूटेड–बूटेड बिल्कुल अंग्रेजों जैसा लगने वाला जवान। खुद तो संकट में फंस ही रहा है, अब हमें भी संकट में फंसायेगा। मैं अपने मित्रों को कैसे समझाऊंगा, मैं खुद ही नहीं समझ पा रहा?

'पर तुम इस स्थिति में आये कैसे? मैंने जिज्ञासा प्रकट की।'

'भाई साहब राज की बात यह है कि मैं प्राइवेट जासूस हूं। मैं काफी दिनों से चिरसोद में चल रहे रेल लिंक परियोजना के काम की जासूसी कर रहा हूं। आपको तो पता है ही कि इसका ठेका अमरीकी कम्पनी ड्रेगनपोर्ट के पास है। इस कम्पनी का डायरेक्टर मि. जॉन सी. आईए के लिये भी काम करता है और आज वह यहां नावारा स्टेशन पर आया हुआ है। उसे अभी इसी ट्रेन से चिरसोद जाना है। मैं वेटिंगरुम में सोने का बहाना कर उसके पास वाली सीट पर बैठा था। उसने परियोजना का नक्शा खोला तो मैंने मेरे मोबाइल में उसके फोटो ले लिये। वह अपने सहायक से तथा फोन पर किसी से बात कर रहा था। वह सब बातें भी मैंने सुन ली है। मैं वहां से उठ कर आया तो उसे मेरे ऊपर शक हो गया। अब मुझे लग रहा है कि मेरी जान खतरे में है। कृपया भाई सा. मेरे जीते जी आप यह बातें किसी को न बतायें, अपने इन साथियों को भी नहीं। मुझे आप पर पूरा भरोसा है। यदि मैं मेरे मकसद को पूरा करते–करते शहीद हो जाऊॅ तो भले ही आप जो मर्जी आये सो करें।'

अंशु ने सारी बातें फुसफुसाते हुये एक ही सांस में इस तरह से कही कि मेरे अलावा कोई ओर न सुन सके। अब मैं भी एकदम सजग हो गया।

'हमें 100 नम्बर पर फोन कर पुलिस की मदद लेनी चाहिये।' मैंने सुझाव दिया।

'मैं पहले ही रक्षा मंत्रालय तथा रेल मंत्रालय में लिख चुका हूॅ। इतनी बड़ी ताकत के खिलाफ हमारी कौन सुनेगा? स्थानीय पुलिस प्रशासन की तो इन लोगों के सामने औकात ही क्या है? वैसे भी सारा मामला विदेश व्यापार मंत्रालय के पास है। यह देश भाई साहब इन नेताओं और अफसरों के भरोसे आजाद नहीं है, यह तो कुछ सिरफिरे देशभक्तों की वजह से हम चल रहे हैं। जो कुछ करना है आपको और हमें ही करना है।'

'पर भाई हम क्या कर सकते हैं? मैं तो वैसे भी कानून से बहुत डरता हूॅ।'

'बस आप तो इसी तरह से मुझे हौसला देते रहें, ईश्वर ने चाहा तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।'

बातें करते–करते हम प्लेटफार्म के अंतिम छोर तक पहुंच गये। एक मालगाड़ी अभी–अभी रवाना हुई है। अंशु ने गार्ड को इशारा किया। गाड़ी कुछ धीमी हुई।

'अब हमें इसमें बैठकर चलना है।'

मैं अपने चकित से खड़े दोनों साथियों को खींचता हुआ सा साथ ले गया।

गाड़ी रुकने पर अंशु ने गार्ड से कहा,

'मैं मि. जॉन का सहायक पाल और ये मेरे साथी इंजिनियर्स, हमें जरा साइट तक छोड़ दें। अभी मि. जॉन वहां ट्रेन से पहुंच रहे हैं और हमें पहले जाकर वहां की व्यवस्थायें देखनी हैं। लो मि. जॉन से बात कर लो।'

अंशु ने फोन लगाने का नाटक किया। फोन से बात कराने की नौबत नहीं आई। परियोजना के अफसर जान कर गार्ड ने हमें इज्जत दी और हम मालगाड़ी के गार्ड के डिब्बे में सवार हो गये। दस मिनट के पूरे रास्ते में अंशु गार्ड से अंग्रेजी व हिन्दी में बातें करता रहा और हमें कुछ बोलने की नौबत ही नहीं आई। परियोजना स्थल से कुछ पूर्व ही मालगाड़ी रुकवा कर हम चारों उतर गये। अंशु ने बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाकर गार्ड को विदा दी।

'जल्दी चलो।'

उसने हमें आदेश सा दिया। हम लगभग भागते–भागते उसके साथ चलने लगे। उसने इशारा करके बताया,

'वहां कॉलम नम्बर छः से नौ के बीच तुरंत पहुंच कर मेरा पर्याप्त समय तक इंतजार करें। यदि मैं नहीं आ पाऊं तो आप अपनी इच्छा से निर्णय ले कर घर पहुंचे। याद रहे कॉलम नं. 6 से 9! नहीं तो आपकी भी जान को खतरा हो सकता है।' हमने देखा कि अंशु के चेहरे पर कुछ कर गुजरने का जज्बा है।

यहॉ पहुंचने पर हम आश्चर्यचकित रह गये। यहां इतना बड़ा निर्माण कार्य चल रहा है। इसमें भी अधिकांश भूमि के नीचे। हमारी आंखें फटी की फटी रह गई। हम लगभग भागते से कॉलम ढूॅढने लगे। इतने में ही एक जोरदार विस्फोट की आवाज आई। रेल लाइन पर बना एक पुल विस्फोट के साथ मालगाड़ी के अंतिम डिब्बे पर गिर पड़ा। शायद गार्ड का डिब्बा भी क्षतिग्रस्त हुआ होगा? पर हमें क्या? हमें तो हमारा सुरक्षित ठिकाना ढूंढ वहां छुपना है। जल्द ही हमें कॉलम नंम्बर नौ दिखाई दिया और हम उस विशाल प्लेटफार्म के नीचे पहुंच गये। अभी हम बात करने के लिये मुंह खोलना ही चाहते थे कि एक और बहुत भारी विस्फोट की आवाज आई। हम कुछ देख नहीं सकते थे। पर लगता है पूरा निर्माण ही ध्वस्त हो गया हो। हम बिल्कुल शांत खड़े आगे होने वाली घटनाओं का इंतजार करते रहे। लगभग पांच मिनट बाद एक बावला सा नौजवान धूल–धूसरित हमारे सामने आया। हम डर गये।

'भाई सा. बधाई हो, हम अपने लक्ष्य में कामयाब रहे।'

अरे यह तो अंशु ही है। इसने यह क्या हुलिया बना लिया है। हमारे पास पूछने के लिये ढेरों सवाल थे।

'यहॉ रुकने का समय नहीं है। चलो।'

हम अंशु के पीछे–पीछे तेजी से वापस नावारा की ओर चलने लगे। कोई पंद्रह मिनट चलने के बाद पटरी से हटकर बने एक अर्द्ध निर्मित मकान में घुस कर बैठ गये। यहॉ दूर–दूर तक कोई नहीं है। सबसे अच्छी बात तो यह है कि यहां पीने का पानी है। रात के नौ बज गये होंगे। आसपास बस अंधेरा छाया हुआ है। सबसे पहले हमने पानी पीकर दहशत से सूखे हमारे हलक तर किये। अंशु ने मुंह धोया और फिर उपयुक्त सी जगह देख हम बैठ कर बातें करने लगे। हमारी उत्कंठा मन से बाहर निकलने को आतुर थी।

'यहॉ दो बम कैसे फटे?'

'एक बम उन्होंने फोड़ा हमें मारने के लिये और दूसरा मैंने उनकी योजना ध्वस्त करने के लिये।'

'पर वे हमें पहले भी तो मार सकते थे।'

'नहीं, उनके कैमरों की नजर में आने से पहले ही हम उतर गये थे। आप लोगों को नाराजगी तो रही ही होगी कि छुपने के स्थान से इतने पहले ही हम गाड़ी से क्यों उतरे। पर हमारी सुरक्षा के लिये यह जरूरी था। वे डाल–डाल हैं तो हम भारतीय भी पात–पात हैं।'

'यह कॉलम नम्बर 6 से 9 का क्या चक्कर है?'

'यहां विशेष निर्माण किया गया है जो 10 नम्बर के भूकम्प तथा परमाणु बम की गर्मी को भी झेल सके।'

'और तुमने देश का इतना बड़ा नुकसान क्यों किया?'

'देश का नहीं अमरीकी कम्पनी ड्रेगनपोर्ट का। वे... .'

'हां, वे लोग यहां गोपनीय रूप से अपना अड्डा बना रहे थे। जिससे हमारे देश पर छद्मरूप से शासन कर सकें। अंशु महान् देशभक्त है।' मैं बीच में ही बोल पड़ा।

'जब सारा काम तुमने अकेले ही किया तो हमें यहां किसलिये लाये थे।' रवि ने पूछा।

'अपने आप को आप लोगों की आड़ में छुपाने के लिये।'

'पर अब तो हम भी उसी खतरे में आ गये।'

'काम होने के पहले आ गये थे अब नहीं।'

'इतना बड़ा नुकसान हो गया और कम्पनी कुछ नहीं करेगी। आगे पीछे हम पकड़े ही जायेंगे।'

'नहीं कुछ नहीं होना चाहिये। कम्पनी के अधिकारी तो यही समझेंगे कि उनके विस्फोट से ही सब कुछ उड़ा है। आपने सुना होगा चोर के पांव कच्चे होते हैं। कम्पनी जांच कराना तो दूर की बात इस पूरे हादसे को ही छुपायेगी।'

'और सीआईए का वह अफसर क्या तुम्हें छोड़ देगा।'

'मैं उस हादसे में मर चुका हूं। मेरी टोपी, जूते, टाई आदि सामान कई शवों के साथ मलबे में मिल जायेंगे। और भाई साहब बस अब से मैं आपका छोटा भाई अंशु बनकर रहूंगा। मैने गार्ड को आपका परिचय मेरे सहायक बता कर दिया इसके लिये मैं आप से माफी चाहता हूं। अब से सुरक्षित घर पहुंचने तक मैं आपका कार चालक रहूंगा और आप मेरे मालिक।'

हम मुंह अंधेरे घर पहुंचे। सुबह का अखबार पढ़ने की बहुत उत्सुकता थी। एक छोटी सी खबर छपी थी। भारतीय रेल लिंक परियोजना स्थल पर विस्फोट होने के कारण मालगाड़ी का गार्ड मारा गया तथा बहुत सारा निर्माण ध्वस्त हुआ। ड्रेगनपोर्ट कम्पनी को करोड़ों के नुकसान की संभावना।

अपराधी कौन ?

वर्मा जी की पड़ोसन रोते हुये चिल्लाई। 'हाय देखो रे! मेरे बच्चों को क्या हो गया है? ब्रेड खाते ही ये कैसी काली–काली उल्टियां कर रहे हैं।'

वर्माजी लुंगी में ही घर के बाहर निकले। निकले भी क्यों नहीं वे पुलिस में हैं और पूरा मोहल्ला हर सुख–दुःख में उनकी ओर निह. ारता है। उन्होंने पड़ोस में जाकर पूरी जानकारी ली फिर अनुमान लगा लिया कि ब्रेड में ही कोई गड़बड़ हो सकती है। उन्होंने तुरंत ही पूरे मोहल्ले में ब्रेड न खाने के लिये ऐलान सा करवा दिया। आनन–फानन में बच्चों को मोटर साइकिल पर बिठा कर अस्पताल ले जाया गया और डाक्टरों द्वारा तुरंत इलाज कर देने से आखिर बच्चों की जान बच पाई। पुलिस कार्यवाही तो हुई ही। इधर पूरे मोहल्ले में कुहराम मच गया। सुबह–सुबह एक साइकिल सवार पें–पें करता आता और लगभग सभी लोग उससे ब्रेड लेते। कुछ ने खा ली और कुछ खाने की तैयारी कर रहे थे। बड़ों को कुछ नहीं हुआ पर बच्चों की तबियत बिगड़ी। पुलिस ने तुरंत कार्यवाही कर ब्रेड बेचने वाले को पकड़ लिया और साथ ही गुप्ता बेकरी को सीज कर दिया जहां से वह ब्रेड बन कर आई थी। शाम को एक बच्चे ने दम भी तोड़ दिया। पता नहीं ब्रेड से ही या और किसी कारण से पर ब्रेड के नाम की रिपोर्ट दर्ज हो गई।

शाम को वर्माजी घर आये तो पत्नी ने कहा, 'ऐसे आदमी को तो फांसी पर चढ़वाना। पता नहीं लगता तो न जाने कितने लोग मारे जाते।'

'हां, पुलिस जांच तो कर रही है। साइकिल से ब्रेड बेचनेवाले लड़के का तो बेचारे का क्या कसूर? फैक्टरी को पुलिस ने देखा है पर वहां तो कोई खराब चीज नहीं मिली।'

'तो, किसी न किसी का तो कसूर होगा ही?'

'हां, इसकी जांच सहायक निरीक्षक कमल के पास है। इतनी बात हुई है तो किसी न किसी को तो सजा मिलेगी ही।'

जांच आगे बढ़ी। बेकरी से खाली कट्टे जब्त किये गये, जिनमें मैदा आई थी। नमक चीनी आदि सामग्री की भी जॉच की गई। पुलिस स्थानीय थोक व्यापारी एवं मैदा निर्माता फैक्टरी पर भी जॉच कर आई। उसने जिस ट्रांसपोर्ट के मार्फत् तथा जिस ट्रक से थोक व्यापारी को माल भेजा था उन सबके के भी बयान लिये गये। सबको पुलिस ले दे कर निबटाती रही। सबने अपनी बेगुनाही के सबूत पुलिस को दे दिये। अंत में एक ठेलेवाले को पकड़ा गया। यह ठेलेवाला थोक व्यापारी के गोदाम से अपने ठेले में मैदा भर कर बेकरी तक ले गया था। खाली कट्टों की गहन जांच में पता लगा था कि एक कट्टे पर खेती के कीड़े मारने वाली दवा गिरी हुई थी। ठेलेवाले ने स्वीकार किया, 'मैं मैदा

के कट्टों के ऊपर पेस्टिसाइट का एक कार्टून डालकर ले गया था। शायद उसी में से कुछ दवा कट्टे पर गिर गई हो। पर इसमें मेरा क्या कसूर? जिसने कट्टा खोला उसको भी तो देखना चाहिये था।' ठेलेवाला भोला था और गरीब भी। वो बेचारा पुलिस की रीति नीति को क्या जाने?

वर्माजी की पत्नी रोज ही वर्माजी से केस के बारे में पूछताछ करती। बीसवें दिन आखिर वर्माजी ने दोषी का नाम बता ही दिया। मामला सुन कर वर्माजी की पत्नी बिफर पड़ी। 'उस गरीब ठेलेवाले को सजा दिलवाओगे। जिन्होंने बिना माल देखे जहरीली ब्रेड बना दी उनका कुछ नहीं। कल से अपना ही बेटा मर जाता तो।'

'तब भी यही होता। मुझे तो पहले दिन से ही पता था कि अब उस जांच अधिकारी कमल की बेटी का ब्याह आराम से हो जायेगा। इस देश में वही कसूरवार होता है जो पैसा या सिफारिश नहीं लगा सकता।'

कनक कनक तें सौ गुनी

सतीश मेरे साथ छठी से आठवीं कक्षा तक पढ़ा था। बाद में वह कहॉ गया मुझे पता नहीं। एक दिन बाजार में दिखाई दे गया। मैं तो उसे नहीं पहचान पाया पर उसने मुझे पहचान लिया और नाम से पुकारा। बचपन की बातें करते–करते हम घर आ गये। वह तब से आज तक कापरेन में किराने की दुकान लगाता है। उसके पिताजी का वहां ट्रांसफर हो गया था। वे वहीं स्थाई रूप से बस गये। उसका पढ़ाई–लिखाई में ज्यादा ध्यान था नहीं। उसने घर के बाहर ही एक किराने की दुकान खोल ली थी। बस जिंदगी आराम से गुजर रही है। मैंने उसे अपनी पुस्तक पढ़ने के लिये दी तथा बताया कि मैं अभी एक और कहानी संग्रह लिख रहा हूं। मैंने उससे कहा, 'तुम्हारे पास भी कोई ठीक सी कहानी हो तो बताओ, मैं नये कहानी संग्रह में डाल दूँगा। उसने थोड़ा सोचने के बाद कहा,

'हां कहानी है मेरे जीवन की ही एक घटना। ऐसी घटना जो मैं जिंदगी भर भूल नहीं पाऊंगा। बहुत साल पहले एक दिन सवेरे–सवेरे बाजा बजा कर अनाथ आश्रम के लिये चंदा मांगने वालों की टीम आई। यह टीम साल में दो बार हमारे गांव में आती थी और मैं बिना हुज्जत किये उन्हें कुछ रुपये पैसे दे देता था। उस दिन अपना चंदा ले जाने के बाद उनका लीडर सा दिखने वाला आदमी मेरे पास वापस आया। मेरी दुकान पर मेरे अलावा कोई नहीं था। उसने आते ही मुझ बच्चे के पैर छुये। मुझे बड़ी शरम सी लगी। शायद रुपये दो रुपये का अहसान जताने आया है।

मैने कहा,'यह क्या कर रहे हो बाबा? मैं तो आपके सामने बच्चा ही हूं। मुझे क्यों पाप में डालते हो?'

'नहीं, मुझे आप पर विश्वास है। इसलिये एक बात कहना चाहता हूँ। वचन दो आप वह बात किसी को नहीं बतायेंगे।'

'बोलो! ऐसी भी क्या बात है? मैं आपकी बात को गुप्त रखूंगा।'

'मुझे रास्ते में चूल्हा खोदते–खोदते बहुत सारा सोना चांदी मिला है। मैं अनाथ, मेरी बात पर कौन यकीन करेगा? आप उसे बिकवा दो। आप चाहो जितने पैसे आप रख लेना और कुछ मुझे दे देना। मेरी इच्छा अब कहीं घर बनाकर रहने की होने लगी है।'

'पर मैं भी आपकी बात पर कैसे विश्वास करूं? आपने वह सामान कहां रख रखा है?'

'मैंने जमीन में गड्डा खोद कर जंगल में उसे छिपा रखा है। आप मेरी मदद करें तो मैं सामान निकाल कर ले आऊं।'

उसकी बात सुनकर मैं बहुत चिंता में पड़ गया। किसी से कहना नहीं है। मैंने तो अपनी जिंदगी में सोना चांदी खरीदना बेचना तो दूर उन्हें कभी देखा भी नहीं है। अब पिताजी से कहूं तो कसम टूटती है और न कहूं तो बाजार में जो इज्जत इसकी है वही मेरी होगी। कोई पूछेगा कहां से लाया तो मैं भी क्या जवाब दे पाऊंगा? बहुत विचार कर टालने की गरज से मैंने उससे पूछा,

'क्या क्या सामान है?'

'एक तो सोने का बड़ा कंठा और दो सौ पिच्यांसी चांदी के पुराने सिक्के जिन्हें कलदार भी बोलते हैं।'

'कल कुछ नमूने का माल लाना। एक दो सिक्के और कंठे में से थोड़ा सा टुकड़ा। मैं देखता हूं मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं?'

'मैं तो बाबूजी सारा सामान लाकर आपके पास ही रख देता हूँ। आप जैसा उचित समझें वैसा कर लेना मुझे आप पर पूरा भरोसा है।'

उसका इतना बड़ा प्रस्ताव सुन मेरे मन में लालच जागने लगा। फिर वही समस्या सामने आई। परिवार से छुपा कर मैं इतनी बड़ी सम्पदा को कैसे रख सकता हूं? यहां दुकान में तो मेरे को हजार दो हजार रुपये छोड़ने में ही जोखिम लगती है। मैंने उससे कहा,

'बाबा देखो मेरे पास कोई तिजोरी वगैरह तो है नहीं और न मैं इतना बड़ा आदमी हूँ कि इतनी रकम को घर में रख सकूँ। इसमें कई तरह की जोखिम है। अब मैं जैसा कहता हूं, वैसे ही करें। पहले मैं सामान की जांच करवाऊंगा। असली निकला तो फिर कुछ सोचूंगा।'

स्वाभाविक था रात में मुझे नींद बहुत कम आई। लालच के रूप में पाप मेरे दिमाग पर हावी होने लगा। इतना सोना–चांदी। मैं तो दस साल में भी इतना पैसा नहीं कमा पाऊंगा। दस बीस हजार रु. में बेच जायेगा। फिर पिताजी से कह देंगे। वे इसका जैसा भी होगा, निस्तारण कर देंगे। पर पिताजी नैतिकता के पुजारी और आस्थावान अध्यापक! क्या वे इस तरह से मुफ्त में प्राप्त धन स्वीकार कर लेंगे। और पहले तो उसे देने के लिये पैसे भी कहां जेब में रखे हैं? कर्ज ही तो लेना पड़ेगा। मुझे कर्ज भी कौन देगा? साख तो पिताजी की ही है न? फिर कहीं धोखा हो गया तो? अखबारों में लगातार ऐसे समाचार हम पढ़ते ही रहते हैं।

अगले दिन मेरा अंतर्मन बोल रहा था कि वह नहीं आये तो ज्यादा अच्छा पर मेरा बाह्य पापी मन उसका इंतजार कर रहा था। ठीक समय पर वह आ ही गया। उसके हाथ में फटे सूगले से कपड़ों की एक पोटली थी। वह दुकान पर ही उसे खोलने लगा तो मैं उसे पीछे के हिस्से में आड़ में ले गया। पोटली खोलते ही मेरी आंखें फटी की फटी रह गई। इतना बड़ा छः लड़ा सोने का कंठा। ऐसा तो मेरे बाप दादाओं ने भी शायद कभी नहीं देखा होगा। गले में पहनूं तो शायद जांघों तक पहुंच जाये। मेरी हिम्मत उसे रखने की नहीं हुई। मैंने अपने औजारों के कमरे में जाकर एक प्लायर निकाला तथा धन के मालिक से पूछकर उसमें से एक कड़ी तोड़ ली। ऐसी कीमती, ऐतिहासिक महत्व की चीज को तोड़ते हुये मुझे कुछ दुःख भी हुआ पर इसके अलावा कोई उपाय नहीं था। वह आठ चांदी के सिक्के भी लाया था। चांदी के सिक्के मैंने घर में पहले भी देखे थे। मैंने उन्हें पत्थर पर बजा कर देखा बिल्कुल असली ही हैं। मैंने एक चांदी का सिक्का तथा एक कंठे की तोड़ी हुई कड़ी रख ली व उसे अगले दिन बुलाया। दोपहर में मैं कोई बहाना करके बाजार गया तथा एक सुनार को ले जाकर दोनों चीजें दिखाई।

सुनार ने सिक्का तो देखते ही अच्छा बता दिया और सोने को गर्म करने के बाद बताया कि अस्सी से पिच्यांसी टका खरा है। उसने मुझ से सवाल जवाब भी किये। मैंने बहाना किया कोई ग्राहक कुछ सिक्के और ये सोने की टूटी कड़ियां गिरवी रखकर उधार सामान ले जाना चाहता है। इसलिये आपके पास जांच करवाने आया हूं। सुनार ने बताया,

'हां अब इतने भारी जेवर बनवाता ही कौन है? किसी के पास पड़ा होगा उसके दादा परदादाओं का।'

साथ ही सोनी जी ने मुझे चेताया भी, 'पक्की जान पहचान व विश्वसनीय आदमी हो तभी यह काम करना। आजकल धोखाधड़ी बहुत होती है। गिरवी रखना भी जुर्म है। असली चीज बताकर नकली देना तो रोज का ही काम है। फिर लोग रोते–रोते हमारे पास आते हैं।'

छोटा गांव है सोनी जी मुझे पहचान गये हैं। कहीं बात पिताजी तक न पहुंच जावे। अब एक और चिंता मुझ पर सवार हो गई। ध ाोखा होने की बात मन में थी अतिरिक्त चेतावनी भी मिल गई। आखिर धोखेबाज लोग भी तो इस तरह का अभिनय करके ही तो आदमी को विश्वास में लेते हैं। मेरा एक मन कह रहा है वह आदमी सच्चा है। फिर भी मैं बिना किसी को बताये उसकी समस्या का समाधान नहीं कर सकता। अगले दिन पुनः वह आया। मैंने उससे साफ कह दिया,

'भाई सब कुछ सही है पर मैं तुम्हारा सामान नहीं बेच सकता और न ही मेरे पास इतने पैसे हैं कि मैं तुम्हें इसके बदले दे सकूँ। अब तुम कहो तो मैं मेरे पिताजी की जानकारी में यह बात लाऊं। पर उसमें भी डर है कि कहीं वे तुम्हें सच्चा न मानें और फिर तो बात फैल भी सकती है। न मेरे हाथ में कुछ रहेगा न तुम्हारे हाथ में।'

'बाबूजी आप कितने के माल मानते हो?'

'हां माल तो है ही दो ढाई लाख रुपये का।'

मेरे मन में छुपे चोर के कारण मैंने उसे लगभग आधी ही कीमत बताई।

'आप तो ऐसा करो बाबूजी मुझे एक लाख ही दिलवा दो।'

'पर मैं पैसे की व्यवस्था नहीं कर सकता न। कहीं से उधार भी लें तो पिताजी लें।'

'आप इसे दो पांच दिन में थोड़ा–थोड़ा कर बेच कर दे दें। मैं रुक जाऊंगा।'

'मैं नहीं बेच सकता। तुम्हारी जगह मैं बदनाम हो जाऊँगा।'

कुल मिलाकर मैं बहुत असमंजस में पड़ा रहा और मैंने उससे हजार– दो हजार रु. से ज्यादा की व्यवस्था करने में असमर्थता जता दी। मैंने उसका सारा सामान उसे वापस दे दिया और वह चला गया। रात को दुकान बढ़ाने से कुछ पूर्व वह फिर आया और मुझ से सौदेबाजी करने लगा। अच्छा बाबूजी पचास हजार की ही व्यवस्था करवा दो। अंत में जाते–जाते वह बीस हजार पर ही आ गया। मेरे मन में उस सामान को बीस हजार रुपये में खरीदने की तीव्र इच्छा पैदा हुई पर मैंने अपने आप को इतने रु. का इंतजाम करने में भी असमर्थ पाया। वह चला गया और मेरी रात की नींद उड़ गई। दो दिन से मेरा व्यवहार पूर्व में असामान्य हो रहा था। मेरी मॉ मुझे टोक चुकी थी। बेटा कुछ परेशान से हो? रोटी तो ध्यान से खाओ। मैं किसी को कुछ बता नहीं सकता था। रात भर मुझे भारी अफसोस रहा। 'मैंने इतना बड़ा मुनाफा हाथ से कैसे निकाल दिया? जिंदगी में अवसर बार–बार नहीं आते। जो अवसर को पकड़ लेता है वही आगे बढ़ता है। मैंने अवसर को छोड़ दिया।' फिर दूसरा मन तसल्ली देता। 'अच्छा हुआ जो तूने लालच नहीं किया। नहीं तो पुलिस अभी तुझे पकड़ ले जाती। तेरे सारे परिवार की इज्जत मिट्टी में मिल जाती।'

दूसरे दिन दुकान खोलते ही वह पुनः नजर आया।

''अब बाबूजी आज हम दूसरे शहर में जा रहे हैं। मैं इसे लिये–लिये कहां फिरूंगा। आप ऐसा करें दस हजार रु. ही दे दें। सारा माल आप रख लें बाद में आपकी इच्छा हो जो दे देना, मैं कोई जोर–जबरदस्ती नहीं करुंगा।''

उसे देखते ही मुझे पक्का विश्वास हो गया कि जरूर चोरी का माल है या कोई धोखा हो सकता है। इसमें मैं फंस सकता हूं। मैने उसे साफ कह दिया, 'मैं अभी आपको एक हजार रु. से ज्यादा नहीं दे सकता। आप अपना माल रख जाओ। अगली बार जब भी आप आओगे कुछ करेंगे। जितने पैसे उसके आयेंगे तुम्हें आधे दे दूंगा। इस बीच कोई संकट आ गया तो फिर मैं कुछ नहीं दे पाऊंगा।'

'संकट कैसा बाबूजी?'

'कोई चोरी–चकारी हो जाये या कोई पुलिस का मामला बन जाये।'

मेरी बात सुनने के बाद उसे मेरे मन में छिपा लालच नजर आने लग गया। उसने दस हजार से कम लेने से मना कर दिया। सुबह ग्राहकी का समय था। मैंने उसे विदा कर दिया। दोपहर में वह फिर आ टपका। अबकी बार उसका प्रस्ताव था कि मैं उसे पांच हजार रु. दे दूं और दस हजार रु. के लिये लिख कर दे दूं। मेरे मनमें आये पाप को उसने भांप लिया था और अब जुबान पर भी ले आया। मैंने उससे पुनः मना कर दिया। उसने एक बार मुझे फिर प्रणाम् किया और यह बात किसी को न बताने का मेरा वचन याद दिलाया। वह चला गया। आज तीस साल से मैं अपने वचन को निभा रहा था।

इतनी कहानी सुनने के बाद मैंने मित्र को टोक ही दिया, 'अच्छा हुआ जो तुम बच गये। यह माया महा ठगनी है। फिर किस्मत में हो तो कहीं से भी आ जाती है। मुझे पक्का विश्वास है वह उसके बाद तुम्हें कभी नजर नहीं आया होगा। हमारे यहां भी बिल्कुल इसी तरह से एक मिट्टी के खिलौने बेचनेवाला एक व्यक्ति को सोने के नाम पर पीतल का हार टिका गया था। भोलेरामजी ने सोने की आधी कीमत देकर हार खरीद लिया था। दो तीन साल बाद में जब बेटी के विवाह में उसे तुड़वा कर नये जमाने के गहने बनवाने लगे तो पोल खुली।'

'हां तुम्हारी पहली बात बिल्कुल सही है। मेरी किस्मत में पैसा कमाना था। मैंने वह छोड़ दिया तो क्या भगवान ने मुझे उस साल दुकान में ही उससे ज्यादा दे दिया।'

'कैसे?' मैंने आश्चर्य चकित हो पूछा।'

''बस यों मानो छप्पर फाड़कर दिया। मेरा गांव का एक गुर्जर ग्राहक दूध का व्यापार करता था। इस घटना के कुछ दिन बाद उसने मुझ से पांच हजार रु. जेवर गिरवी रख कर उधार मांगे। मैंने उससे जरूरत का कारण पूछा तो उसने बताया कि वह दूध में से क्रीम निक. ालने की मशीन लाना चाहता है। सुबह का दूध तो बिक जाता है। शाम के दूध का मावा बनाना पड़ता है। कई लोगों ने क्रीम निकालकर मावा बेचना शुरु कर दिया है। उन्हें व मुझे बराबर ही भाव मिलता है। क्रीम मुफ्त बच जाती है। मैंने उसे रुपये देने से मना कर दिया तो उसने

मुझे क्रीम निकालने की मशीन लगाने का ही सुझाव दे दिया। मेरे मकान में जगह थी ही। मैंने क्रीम निकालने का काम शुरु कर दिया। बहुत सारे दूधवाले मेरे पास क्रीम निकलवाने आने लगे। क्रीम वे मेरे को ही बेच जाते और मैं उसका घी निकाल कर उसे बेच मोटा मुनाफा कमाने लगा। मैंने जनता को शुद्ध घी खिलाया तो मेरी दुकान बहुत चल निकली। साल भर तक; जब तक दूसरी मशीन नहीं लगी मेरा बहुत काम चला और हमने मकान की दूसरी मंजिल बनवा ली। पर आपकी दूसरी सोच गलत है। ऐसे कामों में धोखबाजी होना तो आम बात है। यह कहानी ही इसलिये बनी है कि वह आदमी सच्चा था। मुझे भी उम्मीद थी कि वह दुबारा नहीं आयेगा। उसके पास पैसा हो जायेगा तो भीख क्यों मांगेगा ? पकड़ा जायेगा तो जेल जायेगा और आश्रम वाले भी उसे निकाल देंगें।'

''तो क्या वह दुबारा भी कभी तुम्हें मिला।'' मेरी कहानी सुनने की उत्कंठा बहुत ज्यादा बढ़ गई।

'हां वह अगले साल फिर भीख मांगने आया तब मेरे मकान का काम चल रहा था। मैंने पूछा ही, 'बाबा भगवान ने इतना दे दिया था फिर भी?' सतीश पुनः कहानी सुनाने लगा।

'नहीं बाबूजी! अपनी किस्मत तो बस यही है। वो तो कोई पाप हो गया होगा जो भगवान ने एक महीने का दुःख दे दिया था। धन तो जिसके भाग में होगा वहीं चला गया।'

'कहां चला गया?'

'मुझे कोई रास्ता नहीं दिखा तो मैंने ईमानदारी दिखाते हुये सारी रकम हमारे आश्रम की मैनेजर को दे दी। मैंने सोचा था इससे आश्रम में अच्छा काम हो जायेगा और हमें बार–बार मांगने नहीं जाना पड़ेगा। पर.. .।'

'पर क्या?' मुझे भी सुनने की बहुत उतावली थी।

'वह मैनेजर उस माल को लेकर भाग गई। बाद में कभी आश्रम आई ही नहीं।'

'फिर, तुमने किसी से कहा, पुलिस में रिपोर्ट कराई। अभी तक कोई पता लगा या नहीं।' मेरे मन बहुत सारे सवाल आ रहे थे।

'नहीं बाबूजी। मैंने किसी को नहीं बताया। भगवान ने पहले ही मुझे अनाथ बनाया है और यह सजा भी उसको कम लगी होगी तो उसने मुझे माया के चक्कर में उलझा कर पागल बना दिया। मेरे सुनने में आया वो किसी लड़के के साथ भाग गई है। कई दिनों बाद एक लड़की का लावारिश शव पुलिस ने तालाब से बरामद भी किया था। मुझे तो लगा था कि वही है पर मैं अब अपने जीवन में और कोई तूफान नहीं लाना चाहता था इसलिये चुप रहा। और बाबूजी भगवान का लाख लाख धन्यवाद जो उसने आपकी और मेरी नीयत खराब नहीं की। नहीं तो हो सकता है हमारे में से किसी का वही हश्र होता जो उस लड़की का हुआ। मुझे आप पर पूरा भरोसा है आपने जैसे पहले मेरी इज्जत रख ली इस बार भी आप यह किसी को नहीं बतायेंगे। नहीं तो मेरी जिंदगी फिर नर्क बन जायेगी।'

'हां बाबा याद रखूंगा। कवि बिहारी जी बहुत पहले ही कह गये थे, 'कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।' तुम्हें मिला तो तुम पागल हो गये और मैंने तो केवल देखा और सुना; इसी में मैं न जाने कितनी रातें नहीं सो पाया।'

मैंने सतीश को फिर बीच में ही टोका।

'उसके बाद भी वह आ रहा है। तो आखिर तुमने वचन भंग कर ही दिया।'

'हां कई सालों तक तो वह आया। दो तीन साल पहले पता चला कि वह किसी बीमारी से चल बसा। वचन तो जीते जी तक का ही होता है न? मुझे लगता है अब किसी को बताने में कोई हर्ज नहीं है। मेरे मन का बोझ भी उतर गया है।'

मित्र तो कहानी कह कर चुप हो गया पर मैं सोचने लगा ऐसे लोग मेरे पास क्यों नहीं आते हैं?

मौत से चुहल

अस्पताल या श्मशान जाना दुर्भाग्य का ही परिचायक है। यहां कोई स्वागत करे तो अभद्रता ही मानी जायेगी। मेरा भी जब दुर्भाग्य आया तो मुझे अस्पताल का मुंह देखना पड़ा। वह भी भारत के सबसे बड़े कैंसर के अस्पताल–टाटा मेमोरियल का। यदि कैंसर की बीमारी को ही बदकिस्मती का प्रतीक मान लिया जाये तो उसके इलाज के लिये इस सर्वाधिक विश्वसनीय व सुविधायुक्त अस्पताल में पहुंचना सौभाग्य की ही बात है।

जब मैंने अपनी तकलीफ सर्वप्रथम बारां के ही डॉ. श्री पी. सी. जैन सा. को बताई तो उनकी गम्भीरता ने ही मेरे होशोहवास उड़ा दिये थे। बीमारी का नाम बताने में वे आनाकानी कर रहे थे। अनायास मेरे मुंह से ही निकल गया,

''कैंसर भी हो सकता है।''

डॉ. जैन मरीजों के प्रति अपने कर्तव्य से पूरी तरह वाकिफ एवं सावधान थे।

''पचासों बीमारियों में ऐसा हो जाता है, बिना जांच के कुछ भी नहीं कहा जा सकता।''

जांच के लिये उनकी सलाह थी कि मैं कम से कम जयपुर तो जाऊं ही। बाद में वे जब मेरे छोटे भाई को देखने हमारे घर आये तो वे थोड़ा नीचे उतरे तथा बोले,

''ऋषभ अस्पताल कोटा में एक अमेरिका रिटर्न डॉ. हैं पहले आप उनसे मिल लो।''

इतना कुछ होने के बावजूद मैं अपनी बीमारी के प्रति कैंसर जैसा गम्भीर नहीं हुआ।

'अपने गांव में ही इलाज हो जाये तो सर्वश्रेष्ठ है' ऐसी मेरी धारणा थी।

बीमारी की जानकारी के बाद मेरी चिंता शुरु हुई– इलाज करवाने की। घर वालों को कैसे बताऊं? वे नाहक चिंता में घुलेंगें। यह भी कोई जरूरी नहीं कि गम्भीर बीमारी निकले ही। निश्चय किया कि यथ. ासंभव छिपाकर ही इलाज करवाऊंगा। अपने परम मित्रों में से एक पवनजी से मैंने इसका जिक्र किया तथा पूछा कि कोटा कब चल रहे हो? उन्हें भी यह जानकर बहुत दुःख हुआ। उन्हें गोपनीय रूप से इलाज कराने की मेरी योजना भी पसंद आई। यह बात 23 नवम्बर 1981 की है। 26 तारीख को सायं हमने कोटा जाने की तैयारी कर ली। करीब उसी समय पिताजी आये और मुझ से बोले,

''बेटा सुबह कोटा हो आओ, दुकान के लिये सामान लाना है।''

मैं तो तैयार था ही।

''पिताजी आज ही चला जाता हूं, पवनजी भी जा रहे हैं।''

इस तरह आश्चर्यजनक संयोगवश मुझे अनुमति एवं बहाना दोनों एक साथ मिल गये। उधर पवनजी ने भी अपने पिताजी से कहा कि राजूजी दुकान के काम से कोटा जा रहे हैं मुझे ले जाना चाहते हैं। हमारे दोनों मित्रों के परिवारों में पुश्तैनी संबंध हैं। मेरे साथ जाने के लिये उन्हें भी तुरंत अनुमति मिल गई। इस तरह हमारी योजना की गोपनीयता उस दिन ईश्वर ने ही बनाये रखी।

कोटा रात होटल में ठहरे। सुबह ऋषभ अस्पताल तलाश किया। ग्यारह बजे डॉ. साहब से मिले। उतनी ही गम्भीरता पर आत्मविश्वास से डॉ. सा. ने इलाज करने का आश्वासन दिया। साथ ही खून, पेशाब व संडास की जांच तथा एक्सरे लिख दिया। ये सब जांचे दूसरे दिन होनी थी। खाने के लिये एंटिबायोटिक सेप्ट्रान गोली दो–दो सुबह शाम लिखी। सायंकाल हम कुछ माह पूर्व तक बारां राजकीय चिकित्सालय में सेवारत डॉ. पी. पी. किंकर से मिले। किंकर जी से मिलना जरूरी था भी क्योंकि इन्हीं डॉ. सा. ने कोई एक वर्ष पूर्व 16 दिसम्बर 1980 को मेरा ऑपरेशन किया था। मेरी समस्या सुन किंकर जी को मेरे गत आपरेशन के दौरान लिये गये एक गलत निर्णय पर भारी दुःख हुआ। उन्होंने मेरा अंग (जन्मजात विकृति वाला) निकाल कर फेंक दिया था; यह मानते हुये कि शरीर में यह दो होते हैं। नियमानुसार अंग ऑपरेशन द्वारा सही जगह लगाया जाना चाहिये था। यदि उसमें कोई खराबी थी तो उसकी जांच (बायोप्सी) होनी चाहिये थी। डॉ. किंकर ने मुझे सलाह दी कि मैं तुरंत सरकारी अस्पताल कोटा में इलाज के लिये भर्ती हो जाऊं। देर करने से बीमारी बढ़ेगी। जो इलाज इन डॉक्टर्स की राय में मेरे लिये उचित था उसमें ऑपरेशन जरूरी था। ऑपरेशन घरवालों से छुपाकर करवाना संभव नहीं था। ऑपरेशन अभी भी खतरनाक माना जाता है। जीवन की जोखिम निःसंदेह एक मित्र नहीं ले सकता। ऑपरेशन के बाद सेवा भी करवानी पड़ती है। दोनों ने निश्चय किया कि पिताजी को छोटी बीमारी बताकर इसकी सूचना दी जाये। उस दिन तथा अगले दिन तक हमने अपने व्यवसायिक एवं चिकित्सकीय जांच सम्बंधी दोनों कार्य निबटाये। 28 नवम्बर की सायं सात बजे हम दोनों मित्र दिल में विषाद के गहरे घाव तथा चेहरे पर मुस्कान लिये घर लौटे।

योजनानुसार रात नौ बजे पवनजी घर आये। पिताजी के बजाय उनकी मुलाकात छोटे भाई वरुण से हों गई। बातों ही बातों में उसने सारा राज जान लिया। पवनजी के निराश हो पिताजी से मिले बिना ही चले जाने के बाद मैंने वरुण से व्यवसाय सम्बंधी बात करनी चाही। मेरे अधिकांश प्रश्नों के उत्तर उसने 'मालूम नहीं' के रूप में दिये। भिष्म पितामह ने शरशैया पर लेटे–लेटे युधिष्ठिर को जिस भाव से उपदेश दिया होगा शायद उसी भाव से मेरे मुंह से निकला,

''अब तुम्हें धंधे के ऊपर ध्यान देना चाहिये।''

अपने बड़े भाई का स्थान भरने की मजबूरी के से स्वर में उसने जवाब दिया।

''अब तो ध्यान देना ही पड़ेगा।''
मेरे मस्तिष्क को झटका सा लगा पर मैं शांतिपूर्वक स्थान छोड़ गया।

रात्रि साढ़े दस बजे जब सोने की तैयारियां हो रही थी, काफी साहस जुटाकर मैंने पिताजी से बात छेड़ी। धीरे–धीरे सारी बात खुलती रही और तात् के मन रूपी सागर में शोक की लहरें तीव्रतर होती गई। यहां तक कि आंखों ने नीर बहाकर वह दुःख प्रकट भी कर दिया। पिताजी के सामने मैंने गत सप्ताह भर के मन मंथन के बाद लिये गये निर्णय, जो मेरे ख्याल में मेरे जीवन व हमारे परिवार के लिये आवश्यक थे, रख दिये। मेरे निर्णय पिताजी को करेले के समान कडुवे लगे और उन्होंने एक–एक बात पर तीव्र विरोध किया। साथ ही भीष्म–प्रतिज्ञा भी की ''सब काम जैसे हो रहे हैं वैसे ही होंगे। कोई परिवर्तन नहीं होगा। सब कुछ मेरे ऊपर न्यौछावर कर देने की दृढ़ इच्छा पिताजी की बातों से झलक रही थी। एक–एक बात पर हमारी बहस हुई और वे उत्तेजित होते गये। मुझे लगने लगा कि वे मेरे लिये भगवान से भी दो–दो हाथ करने को तैयार हैं। इस शोर शराबे के बीच घर के अधिकांश सदस्यों की निन्द्रा टूट गई तथा वे समझ गये कि कोई अनहोनी बात जरूर है। बहस को किसी तरह समाप्त कर मैं तो बारह बजे करीब निंद्रा देवी के आंचल में चला गया पर जैसा कि सवेरे मालूम हुआ पिताजी को रात भर बैचेनी रही। आखिर ऐसी क्या बातें मैंने कही? बीमारी की सूचना के बाद मैंने कहा था 1. मैं बारां या कोटा ही इलाज करवाऊंगा। 2. मेरे विवाह की बात मेरी बीमारी ठीक न होने तक स्थगित रखी जावे। 3. मेरे छोटे भाई–बहनों का विवाह मेरे से पूर्व करने में संकोच नही किया जावे। अपने तीनों निर्णयों पर मैं दृढ़ था।

अगला दिन 29–11–1981 पूरा इसी उधेड़बुन में बीता। डॉ. जैन सा. के पास मैं दुबारा राय लेने गया तो उन्होंने मुझे कम से कम जयपुर जाकर इलाज कराने की सलाह दी। पिताजी, मेरे मित्र पवनजी तथा मेरे चाचाजी से कई बार मिले। मेरे भारी विरोध के बावजूद उन्होंने इलाज हेतु मुझे बंबई भेजने का निश्चय कर लिया। इसकी तैयारी हेतु रात आठ बजे हमारे घर पर हमारे पूर्व मैनेजर गर्ग सा., मित्र पवनजी, चाचाजी आदि आये। गर्ग सा. से मेरे साथ बंबई जाने का अनुरोध किया गया जो उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया। कुछ वर्ष पूर्व गर्ग सा. ने बंबई के टाटा मेमोरियल अस्पताल में अपनी पत्नी का इलाज करवाया था। दुर्भाग्य से वे बच नहीं सकी थी। अब मुझे भी उसी अस्पताल में जाना है तो उनके अनुभवों का लाभ मिल जायेगा। इन बातों के दौरान ही मेरे दिमाग में टाटा अस्पताल की काल्पनिक छवि घूम गई जो गर्ग सा. नौकरी के दौरान मुझे बताया करते थे। उसमें भी यह बात कि उस अस्पताल में मात्र कैंसर का ही इलाज होता है मेरे दिमाग में खतरे की घंटियां बजा रही थी। निश्चय ही मुझे कैंसर हुआ है और यह बात मेरे से छिपाई जा रही है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद मैंने बंबई जाने में कतई आनाकानी नहीं की। रात्री की यह आपात बैठक समाप्त होते–होते साढ़े नौ बज गये। इस बैठक में लिया गया एकमात्र निर्णय यही था कि कल दिनांक 30–11–1981 को हम पांच व्यक्ति (मैं, छोटा भाई वरुण, वरुण का मित्र रम्मू, गर्ग सा. तथा दुकान के साझीदार पवनजी गुप्ता) बंबई के लिये रवाना हो जायेंगें।

इस दिन हमारे घर में किसी कारणवश मामाजी, मामीजी तथा मौसीजी भी आये हुये थे। मामाजी से कोई बात नहीं छुपाई गई। मामीजी ने चतुराई से सारी बात मालूम कर पूरे महिला वर्ग में फैला दी। इलाज के लिये बंबई जाना अपने आप में दहशत पैदा करने वाली बात थी ही। अगले दिन प्रातः मेरी दादी रो–रो कर मुझ से पूछ रही थी, ''तुझे क्या हो गया रे बेटा। कुछ तो बता रे? भगवान तुझे ठीक कर दे। तेरी बीमारी मुझे दे दे।'' अब मैं दादी को कैसे समझाता कि मेरा जो अंग बीमार हुआ है वह अंग तो महिलाओं में होता ही नहीं है। मैं दादी के सामने हँस–हँस कर, कूद–कूद कर यह साबित करने की नाकाम कोशिश करता रहा कि मैं स्वस्थ हूं। बंबई तो मैं दुकान के काम से जा रहा हूं। ऐसे ही प्रश्नों का सामना मुझे माताजी, मौसीजी एवं मामीजी से भी करना पड़ा। सबको खुश रखने के लिये मैं दिनभर चेहरे पर मोहक मुस्कान बिछाये रहा। उधर दिन भर बंबई जाने की तैयारियाँ भी होती रही। मैं परिवारिक व्यवसाय मील संभालता था। मेरे जाने के बाद यहां की व्यवस्था के लिये मैंने हमारे मौसाजी के लड़के का नाम सुझाया जो अभी पढ़ाई छोड़ने के बाद रोजगार ढूंढ रहा था। सौभाग्य से वह आने को तैयार भी हो गया। ऐन वक्त पर गर्ग सा. ने बंबई जाने में असमर्थता प्रकट की। मुझे तो इससे प्रसन्नता ही हुई क्योंकि मैं इतनी लंबी फौज को ले जाने के सख्त खिलाफ था पर बाबूजी ने न जाने कब का गुस्सा उन पर उतारा। उन्हें मेरी व पवनजी गुप्ता की योग्यता पर भी शायद कोई विश्वास नहीं था। मुझे यह बात कई बार कहनी पड़ी कि मैं बंबई घूम आया हूं तथा वहां के चप्पे–चप्पे से परिचित हूं। बाबूजी को मजबूरी में हम चार व्यक्तियों को ही बंबई जाने की अनुमति देनी पड़ी। हर आदमी यह अनुमान तो लगा ही लेगा कि मातापिता ऐसे अवसर पर अपने पुत्र से कितनी बार सावधान रहने, पूरा व अच्छा इलाज करवाने, रुपये–पैसे की चिंता न करने जैसी बातें कहते होंगे। स्टेशन पर सायंकाल हमें विदा करने आये लोगों में घरवालों के अतिरिक्त पवनजी (मित्र) तथा शिवपुरी से मेरी शादी के निमित्त मुझे देखने आये एक मेहमान भी थे।

मैंने पिताजी को साफ शब्दों में मेरे विवाह की चर्चा करने से मना किया है पर बुजुर्गों की भी मजबूरी होती है। वे क्या कह कर उन्हें रोके?। एक सप्ताह पहले तक सब सही था अब क्या हो गया? जो हुआ है वह भी दिखाई नहीं देता। बीमारी की बात बतायें तो भी कहां तक? कोई मेरे पास आकर पूछे तो मैं तो सीधा यही कहूं कि मैं ऐसी बीमारी से ग्रस्त हूं जिसमें मेरा विवाह करना उचित नहीं है।

पिताजी के दुःख का मूल कारण मेरा विवाह करने की उनकी कामना हैं। इस इच्छा को मैं छोड़ चुका पर पिताजी नहीं छोड़ पा रहे। मेरी बंबई यात्रा को छुपा रहे हैं। किसी को पता है तो उसे गलत कारण बता देते हैं। किसी को बीमारी का पता है तो उसे गलत बीमारी बता देते हैं। क्या करें? एक पिता पुत्र मोह से मजबूर है। ऐसी बातें जितनी दबाई जाती हैं उतनी गेंद की तरह उछलती हैं। यही सोचकर मैंने कभी सच को छिपाने का प्रयास नहीं किया। पिताजी से रात को जो बहस हुई उसमें मैंने ऐसा मंतव्य जाहिर कर दिया था। मेहमान के सामने मैं सच न बोल सकूं इसके लिये उन्होंने मित्र पवन जी को तैनात कर दिया था। पवनजी के आदेश पर मुझे पूरी गंभीरता से चेहरे का बनाव कर मेहमान के सामने पेश होना पड़ा। सच यहीं आकर आभास हुआ 'जिंदगी एक नाटक है'। हमें समयानुसार जग को अच्छा लगने वाला अभिनय करना पड़ता है। अच्छा कलाकार ही सफल जीवन जी सकता है।

बारां स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही सबसे पहले मैने मेरे स्थानापन्न (रिलीवर) अनिल को ढूंढा। उसके मिलते ही मुझे राहत सी महसूस हुई। मैंने उसे मेरा काम समझाया। फिर सभी परिजनों से विदा ले ट्रेन में बैठे। योजनानुसार बारां से हम चार व्यक्ति रेल से जाकर रात कोटा जंक्शन पर एक होटल में सोए। तारीख 1–12–1981 को प्रातः सात बजे देहरादून एक्सप्रेस गाड़ी के सामान्य डिब्बे में बैठे जिसने 2–12 को प्रातः हमें बंबई सेन्ट्रल रेल्वे स्टेशन पर उतारा। एक सस्ते से लॉज में जाकर रुके। प्रातःकालीन क्रियाओं से निबट साढ़े आठ बजे टाटा मेमोरियल होस्पीटल जा पहुंचे। राहगीरों से पूछ कर बेस्ट की बस में बैठे, कंडक्टर से पूछकर सही स्टॉप पर उतरे, और फिर पूछते–पूछते ही अस्पताल आ गये। बंबई नगर के स्वभाव में ही यह बात रच–बस गई है। यहां हर आदमी पूछते हुऐ ही बड़ा हुआ है। इसलिये वह भी बड़े प्रेम से नये आये आदमी को रास्ता बताता है। अस्पताल में आकर तो हमें इस बात का और भी गहन अनुभव हुआ। हम अस्पताल के मुख्य दरवाजे से (जो डॉ. अर्नेस्ट बोरगेज रोड पर खुलता है) अंदर घुसे। अजनबी से इधर–उधर ताक रहे थे कि अपने आप एक स्वयं–सेवक सामने आया। जब हमने उसे बताया कि हम आज ही अस्पताल में आये हैं तो वह देव स्वयं चलकर हमें आउट पेशेन्ट डिपार्टमेंट (बाह्य रोगी विभाग) संक्षेप में ओ.पी.डी. में ले गया। वहां उसने हमें फाइल तैयार करवाने की पूरी प्रक्रिया समझाई।

टाटा मेमोरियल ट्रस्ट होस्पीटल में समाज सेवा के नाम से एक पृथक विभाग है। मरीजों को सुविधा देने सम्बंधी कार्य इसी विभाग के जिम्मे हैं। निचली तल मंजिल (लोवर ग्राउंड फ्लोर) के कमरा नं. दो में इसका कार्यालय हैं। यह अस्पताल के पुराने भवन में है। इसके सामने ही अस्पताल का नया चौदह मंजिला भवन खड़ा है। दोनों भवनों के बीच से सड़क निकल रही है। दोनों भवनों को जोड़ने के लिये पहली मंजिल पर एक पुल बना हुआ है। इस तरह यह आधुनिक तकनीक से बना विशाल अस्पताल है। इसके मुख्य द्वार पर 'टाटा मेमोरियल होस्पीटल एंड रिसर्च सेंटर' लिखा नाम पट्ट लगा हुआ है। यह अस्पताल भारत के प्रमुख उद्योगपति सर जमशेद जी टाटा की स्मृति में स्थापित किया गया था। मुख्य द्व ार पर टाटा एवं लेडी टाटा के खूबसूरत चित्र लगे हुये हैं। कुछ समय पूर्व तक यह एक निजी अस्पताल था। अब इस ट्रस्ट में केन्द्र सरकार की प्रबन्ध व्यवस्था लागू हो गई है। अस्पताल में विस्तारीकरण का कार्य जारी है। फिल्म कलाकार सुनीलदत्त ने नर्गिसदत्त की याद में चालीस लाख रुपये नये कमरे बनाने के लिये दिये हैं।

अनजान मददगार के निर्देशानुसार हम समाजसेवा विभाग के सामने की बैंचों पर लाइन में बैठ गये। नौ बजे अस्पताल में कर्मचारी आ गये। एक–एक कर मरीजों को बुलाया जाने लगा। मेरा नम्बर आने पर मैं अंदर घुसा। वहां उपस्थित एक भद्र महिला ने मेरी बीमारी जानने की कोशिश की। मैं अब तक मेरी बीमारी निःसंकोच बताने लगा था। मेरे जवाबों से उन्हें संतुष्टि मिली तो उन्होंने कहा,

''आपको इधर किसने भेजा। डॉ. का रिफरेंस लेटर बताओ।''

उनकी बात सुन मैं असमंजस में पड़ गया। फिर जेब में निकाल ऋषभ अस्पताल कोटा के डॉ. द्वारा लिखे गये टिकट बता दिये।

''पर इस पर तो कहीं नहीं लिखा कि टाटा मेमोरियल में जाकर इलाज करवाओ।''

उस समाजसेविका की इस बात ने एक बारगी तो मुझे डरा ही दिया। सारे टिकट वापस लेने के बाद मैंने कहा,

''अभी मेरा वहां इलाज शुरु ही नहीं हुआ था इसलिये रिफरेंस लेटर लिखने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हां, डॉ. ने कैंसर की आशंका जताई तो मैं जांच कराने चला आया।''

मेरी बहस सफल रही। मैडम के चेहरे के भाव बदले। उन्होंने ने मुझे एक मैला सा गत्ते का टुकड़ा थमा दिया जिस पर आठ लिखा हुआ था।

''यह कार्ड लो और वहां जाकर बैठो, जब नम्बर पुकारा जाये उधर दिखाने जाना।''

आज के रोगियों में मेरा आठवां नं. है।

बाह्य रोगी विभाग के बाहर बैंचे लगी हुई हैं। मैं अपने तीनों अटैंडेन्ट्स के साथ वहां बैठ इंतजार करने लगा। साढ़े नौ बजे दो महिलायें आई। बाहर की ओर की कुर्सी पर बैठी महिला ने कुछ कागज उलट–पुलट करने के बाद क्रमांक एक को आवाज लगाई। एक रोगी (यहां की भाषा में पेशेन्ट) सामने जा खड़ा हुआ। फिर सवालों का एक लंबा सिलसिला चला। एक रोगी को आगे बढ़ने में करीब 15 मिनट

लग रहे थे। प्रश्नों की भाषा वही होती जो रोगी जानता हो। अमुमन मराठी, हिन्दी या अंग्रेजी। यहां के निवासी अमुमन इन तीनों भाषाओं का प्रयोग करते हैं। मैं इधर बैंच पर बैठा–बैठा उन बहुत सारे सवालों का जवाब देने के लिये अपने आप को तैयार करता रहा। लंबे इंतजार के बाद ग्यारह बजे मेरा नं. आया। मैने झट से काउंटर पर जाकर कार्ड दिखाने के साथ ही गुडमॉर्निंग कहा। कुल मिलाकर वातावरण ऐसा बना कि मैं मजाक के मूड में आ गया। सारे प्रश्नोत्तर इस तरह से हुये जैसे दो मित्र बातें कर रहे हों।

''क्या नाम है ?''

''राजू''।

''पूरा नाम बताओ।''

''है तो पूरा ही, आप चाहें तो राजकुमार गुप्त लिख दें।''

''पिताजी का नाम ?''

''श्यामलाल जी।''

मैडम ने फाइल पर सब लिख दिया। इस तरह अस्पताल में मेरा नाम हो गया, 'राजकुमार श्यामलालजी गुप्त'। इसे कहते हैं नाम का मराठीकरण।

इसके बाद निवास स्थान तथा बीमारी से सम्बंधित सवाल थे।

'परिवार में ऐसी बीमारी कभी किसी को हुई क्या ? मैंने 'नहीं' कहा। चाय, सुपारी, पान, जर्दा, शराब आदि के सेवन के बारे में पूछा गया तो मैंने 'नहीं' कहा। अंत में व्यवसाय व आय की जानकारी चाही गई थी।

''पिताजी का व्यापार है, मैं तो मात्र उसमें सहयोग करता हूं।''

उसने व्यापार नोट किया। फिर पूछा,

''इनकम कितनी है ?''

मेरे लिये उलझन भरा सवाल। एकदम अप्रत्याशित। ज्यादा आय बता दें तो हो सकता है ज्यादा खर्च हो। अभी परिवार में वैसे ही भारी आर्थिक समस्या चल रही है। इतनी कम आय बताने की भी मेरे दिल ने स्वीकृति नहीं दी जिस आय में कोई व्यक्ति राजस्थान से चल कर बंबई इलाज कराने आने में असमर्थ हो। सोचने के लिये समय ढूंढते हुये कहा,

''लिख लीजिये आपकी मर्जी जो।''

''मर्जी क्या ? कुछ तो बताओ। व्यापार तो ऐसी चीज है जिसमें सौ रु. महीना भी आय हो सकती है और दस हजार रु. भी।'' उसने जरा जोर देकर कहा।

''हॉं, यह तो है ही व्यापार में लोग लाखों कमाते भी हैं और दीवाला भी निकाल देते हैं।''

मैंने अपने अनुभवों का निचोड़ रखा।

''हमें तो अपनी ड्यूटी करनी है, आप कहो जो भर दूं।''

''लिख लीजिये हजार, दो हजार प्रतिमाह।''

''दो हजार।'' उसने स्वीकृति चाही।

''हां, ..ठीक है।'' मैंने हामी भरते हुये बात समाप्त की।

''जाओ, पीछे मिलो।''

उसने मुझे निर्देश देते हुये फाइल पीछे की मेज पर रख दी। इतनी देर में पवन जी भी मेरी बगल में आ खड़े हुये थे। हमारे सामने कुर्सी पर बैठी भद्र महिला अपेक्षाकृत अधिक उम्र की थी। जूड़े में अच्छी तरह गुंधे, सजे, अधपके खिचड़ी बने बाल, आंखों पर ऐनक और मोहक मुस्कान। बड़ी भली लगी। जाते ही प्रेम से सामने पड़ी कुर्सियों पर बैठने का अनुरोध किया। हमने कृतज्ञता जताते हुये कुर्सियां ली। फाइल देखने के बाद एक बार पुनः बीमारी के बारे में पूछा। फाइल पर कुछ मोहरें लगाई। एक मोहर मेरे डॉ. एवं विभाग को बताती है। 'डॉ. एम. आर. कामठ, डॉ. जे. एन. कुलकर्णी, फिर नीचे 'गायनिक, यूरोलोजिक आदि' (इन बीमारियों से सम्बंधित उक्त दोनों डॉ. हैं।) दूसरी मोहर मेरे कमरे का नम्बर बताती है। यह आठ का अंक मात्र है। इसी के नीचे 'जनरल' लिखा गया। यहां खर्चे के हिसाब से तीन तरह का इलाज होता है। सेमीप्राइवेट तथा प्राइवेट में इलाज कराना हमारे बस की बात थी भी नहीं। भद्र महिला से हमने पूछ लिया था। इलाज में कोई फर्क नहीं आयेगा। मेरी फाइल के ऊपर मेरा संक्षिप्त नाम मि. गुप्त तथा फाइल क्रमांक ए. एन. 17736 लिखा गया। फाइल बंद करने के बाद वे हमारी ओर मुखातिब होकर बोली,

''आप राजस्थान के हैं, मैं भी उधर की ही हूं।''

स्वाभाविक था, हमने पूछा, ''कहां की ?''

''यही इंदौर, उज्जैन, गुना, शिवपुरी साइड की।''

हमारे में तुरंत आत्मीयता जाग उठी। फिर हमारी जाति के बारे में अनुमान लगाते हुये बोली,

''आप अग्रवाल हैं शायद ? हमें स्वीकृति देते देर नहीं लगी। कुछ देर ओर बातें हुई जों परस्पर परिचय बढ़ाने वाली थी। अंत में उस मां ने इस आश्वासन के साथ कि कोई भी परेशानी हो तो हम उससे मदद मांग लें, हमें फाइल देकर दस नम्बर काउंटर पर जाने का निर्देश दिया।

बारह बजे करीब खोजते हुये हम दस नं. काउंटर पर पहुंचे। वहाँ भी बीमारी के बारे में पूछा गया। फाइल को जांचा गया तथा मेरे द्वारा अब तक कराये गये इलाज का विवरण भी इसमें लिखा गया। फाइल अब पूर्ण हो चुकी है। अब हमें कमरा नं. आठ में भेज दिया गया। यह मूत्रनली, गुदा, यौन आदि से सम्बंधित बीमारियों के डॉक्टर्स का कमरा है। इसी तरह खून का कैंसर, गले एवं सिर, पेट आदि के लिये अलग–अलग विभाग हैं। प्रत्येक विभाग में प्रमुख डॉ. के साथ अनेक कनिष्ठ डॉ. बैठते हैं। हमारा आठ नं. कमरा तो बाह्य रोगियों को देखने के लिये ही है। इन कक्षों में डॉक्टर्स सप्ताह में दो दिन ही देखते है। हमारे कमरे में मंगलवार एवं शुक्रवार का दिन निर्धारित है। यह एक शुभ संयोग ही था कि हम मंगलवार को ही यहां पहुंचे।

कमरा नं. आठ में फाइलों के ढेर में मेरी फाइल भी डाल दी गई। ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। यहां बहुत अच्छी नियमितता दिखाई दी। डॉ. सा. का व्यवहार भी बहुत अच्छा लगा। दो चिकित्सकों ने मेरी बीमारी का निरीक्षण किया। उनकी आपसी बातचीत से मैं कुछ अंदाजा नहीं लगा सका। करीब दस मिनट तक एक डॉ. ने मेरे से बीमारी के बारे में गहन जानकारी प्राप्त कर फाइल पर लिखी। फिर मेरे द्वारा बताये गये कोटा के डॉ. के पर्चे तथा जांच रिपोर्ट्स भी देखी। सब कुछ निरीक्षण करने के बाद डॉ. ने आगे की प्रक्रिया फाइल पर लिखी व हमें पुनः दस नं. जाने का निर्देश दे फाइल थमा दी गई।

दुबारा दस नं. जाने पर काउंटर खाली मिला। लंच का समय हो गया था। कुछ देर बाद वहां एक डॉ. आये। फाइल देखने के बाद उन्होंने छाती के एक्सरे (जो हम कोटा से करवा कर ले गये थे) की विशेषज्ञ रिपोर्ट तैयार करवाने के लिये मुझे 29 नं. के कमरे में भेजा। हमें एक फार्म भर कर दिया गया। फार्म तथा एक्सरे प्लेट 29 नं. में जमा करवाकर हम कमरे से बाहर इंतजार करने लगे। एक्सरे रिपोर्ट बहुत देर तक तैयार नहीं हुई। पहली बार हमें बोरियत महसूस हुई। पूछने पर बताया गया कि रिपोर्ट टाइप होने गई है। घंटे भर बाद भी जब यही जवाब मिला तो पवनजी ने पूछ ही लिया,

''ऐसी टाइप होने कहां गई है?''

वहां मौजूद चपरासी ने झट टाइपिस्ट के कमरे की ओर इशारा कर दिया। वहां जाकर देखा तो टाइपिस्ट नदारद। ज्यादा पूछताछ की तो पता लगा कि आज इस सीट पर कोई टाइपिस्ट बैठा ही नहीं। अस्पताल की इतनी उत्तम व्यवस्था में यह कमी ऐसी खटकी जैसे सुस्वादु भोजन में कंकरी। कई अन्य मरीज भी परेशान हो रहे थे। वहां के प्रशासन के ध्यान में यह बात लाई गई। साढ़े चार बजे रिपोर्ट मिल सकी। सबसे पहले ही मैंने उस पर टाइप किये गये अक्षर पढ़े, 'आउट साइड एक्सरे 27–11–1981 :– लंग्स क्लियर।' 'लंग्स क्लियर' पढ़ कर मन को बड़ी तसल्ली मिली। कैंसर अभी फेंफड़े में नहीं पहुंचा है। इस एक्सरे को देखकर कोटा–बारां के डॉक्टर्स ने भी मेरे से यही कहा था पर उनकी बात पर मैं इतना विश्वास नहीं कर पाया था। मुझे लगता रहा कि वे मेरे से बीमारी छुपा रहे हैं। दूसरा इस अस्पताल में एक्सरे देखने हेतु अलग से डॉ. तथा विशेष प्रकाश व्यवस्था है। हमने रिपोर्ट सीधी टाइपिस्ट से प्राप्त की थी अतः हमने पहले इस पर एक्सरे विभाग के प्रमुख से हस्ताक्षर करवाये फिर हम इसे ले दस नं. काउंटर पर पहुंचे। दस नं. पर पुनः फाइल चेक करने तथा एक्सरे रिपोर्ट फाइल करने के बाद हमें एक गत्ते का कार्ड बना कर दिया गया। इस कार्ड पर पेशेन्ट का नाम, फाइल नं., विभाग तथा डॉक्टर्स के नाम लिखे हुये थे। कार्ड पर तीन भाषाओं में लिखा हुआ था,

''जब भी अस्पताल आवें यह कार्ड अवश्य साथ लावें तथा पत्र व्यवहार में कार्ड का नं. लिखें।''

इसके साथ ही हमें फाइल भी छः नं. में जमा करवाने के लिये दे दी गई।

छः नम्बर काउंटर पर एक लंबी लाइन लगी थी। बंबई के जीवन में बसे अनुशासन की झलक यहां भी साफ दिखाई दे रही थी। फाइल लेने के बाद काउंटर पर बैठे लिपिक महोदय मरीजों को अस्पताल में अगली बार उपस्थित होने की तारीख व समय एक छपे हुये कागज (जिसे यहां अप्वाइंटमेंट स्लीप कहते हैं) में बना–बना कर दे रहे थे। उस पर्चे पर उन्हें मरीज का नाम, फाइल नं. तथा तारीख ही लिखनी पड़ती है। अधिकांश भाग छपा हुआ होने के कारण समय की बहुत बचत हो जाती है। यहां से जारी होने वाली पर्चीयों पर तीन तरह का ही समय छपा हुआ है। पहला खाली पेट जांच के लिये प्रातः नौ बजे का, इन पर्चियों पर 'इन्वेस्टिगेशन' छपा है। दूसरा दोपहर बारह बजे का, इन पर्चियों पर 'फ्यूचर इन्वेल्यूएशन' छपा है तथा तीसरा दोपहर ढाई बजे का, इन पर्चियों पर 'एडमिशन इन्क्वायरी' लिखा गया है। अस्पताल में मरीजों से व्यवहार में आने वाले सभी कागज–पत्रों पर आवश्यक दिशा निर्देश छपे हुये हैं। हमारी फाइल पर 'कृपया इस फाइल को घर नहीं ले जावें', अप्वाइंटमेंट स्लीप पर 'कृपया बाह्य रोगी विभाग में इस पर्ची को दिखावें' निर्देश हिन्दी, अंग्रेजी व मराठी तीनों भाषाओं में छपे हुये हैं। कई जगह गुजराती भाषा का भी प्रयोग किया गया है। पाँच बजे अस्पताल से लौटते समय हमारे पास दो टोकन थे। पहला फाइल नं. का कार्ड, जिसे मैंनें अपना कैदी नं. बताया। दूसरी उपस्थिति पर्ची–जिसके अनुसार मुझे कल प्रातः नौ बजे खाली पेट खून व पेशाब की जांच के लिये आने को निर्दिष्ट किया गया था। आश्चर्य ही था, प्रातः से अभी तक के कार्यकलाप में इलाज के नाम पर हमारा एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ था।

अगले दिन तारीख 3 दिसम्बर, 1981 बुधवार को सुबह साढ़े आठ बजे ही पेशाब की शीशी हाथ में लिये मैं अपने तीन अटैन्डेन्ट्स (परिचारकों) के साथ अस्पताल पहुंच गया। छः नं. काउंटर पर पर्ची

बताई। लिपिक महोदय ने फाइल निकाली एवं एक फार्म भरकर देते हुये नीचे तीन नं. में जाने का निर्देश दिया। फार्म में उन्होंने फाइल देखकर आवश्यक जांचे लिख दी थी। तीन नं. नौ बजे खुलता है अतः मैं भी कतार में पाँचवें नम्बर पर बैठ गया। हम नौ के बजाय साढ़े आठ बजे ही पहुंच गये थे इसलिये ही हमारा जल्दी नं. आ सका। छः नम्बर कार्यालय में कर्मचारी आठ बजे ही आ जाते हैं। इससे जल्दी आने वाले रोगियों को सुविधा हो जाती है। यहां फाइलें निकालने का तरीका अदालतों की तरह से बनाया हुआ है। हजारों फाइलों में से उस दिन की तारीख वाली सभी फाइलें सिलसिलेवार काउंटर पर रखी रहती है। मरीज को बहुत कम समय में फाइल मिल जाती है। हां यदि बिना तारीख फाइल निकलवाई जाये तो उसमें बहुत समय लगता है।

तीन नं. में नौ बजे एक चपरासी आया और उसने सब बैठे मरीजों से फार्म ले अंदर कमरे में रख दिये। मेरा नं. दूसरा ही हो गया क्योंकि आगे ज्यादातर अटैन्डेन्ट ही बैठे हुये थे। यहां काम साढ़े नौ बजे शुरु होगा इसलिये हम थोड़ा घूम फिर आये। ठीक साढ़े नौ बजे इस कमरे में लगे माइक से नाम पुकारे जाने शुरु हो गये। मेरा आठवां नं. आया। शायद प्राइवेट एवं सेमीप्राइवेट वालों को वरीयता दी गई हो। तीन नं. में अंदर जाने पर काउंटर क्लर्क ने मेरा नाम पूछा फिर एक पर्ची बना कर दी। मैंने पेशाब की शीशी, नीचे पर्ची रख वहीं लाइन में रख दी। नर्स ने खून का नमूना लेने के लिये स्ट्रेचर पर लेटने के लिये कहा। मैंने शर्ट की बांह ऊँची करके कहा कि ऐसे ही ले लो लेकिन मेरी नहीं चलने दी गई। दूसरी बार कठोर आवाज में आदेश दे मुझे लेटने को मजबूर किया गया। लेटने के बाद सीरिंज से खून निकाल नली में भरकर मेरे फार्म के साथ रख दिया गया। यह कार्य दो नर्सों द्वारा अतिशीघ्रता पूर्वक किया जा रहा था। खून देने के बाद में काउंटर क्लर्क के पास जा खड़ा हुआ। उसने कहा कि रिपोर्ट कार्यालय में भेज दी जायेगी और अब मैं कुछ भी खा पी सकता हूं। कुल कार्य में बमुश्किल पाँच मिनट लगे। हमने जाकर फाइल छः नं. पर जमा करवाई। मुझे अगली तारीख 5 दिसम्बर शुक्रवार दोपहर बारह बजे की दी गई। हमारा आज का अस्पताल का काम अब समाप्त हो गया है। हमने नाश्ता पानी किया और घूमने निकल गये।

पूरे दो दिन एकदम खाली थे। हमने फुटपाथ से बंबई गाइड खरीद ली थी। स्थान चुनते, फिर बस या लोकल ट्रेन से निकल पड़ते। तारीख 4–12 को हमने प्रातः आठ बजे लॉज छोड़ा एवं थके–हारे रात नौ बजे लौट कर सोते। इस लॉज से हमें तीन दिन में नफरत हो गई। यहाँ के मालिक तथा स्टॉफ रोज बकरा काटते थे। ता. 5–12–1981 को प्रातः हमने पवनजी को भेज दूसरा होटल करवा ही लिया। इस हॉटल में हम साठ रु. तीन बेड के कमरे के दे रहे हैं, जिसमें चारों सो जाते हैं जबकि परेल में हरिओम् लॉज मात्र दस रु. प्रति व्यक्ति प्रतिदिन में हुआ। नौ बजे करीब दस रु. और खर्च कर हम टैक्सी से नये होटल में पहुंचे। इस होटल में हमारे ठहरने की जगह देख सभी को पवनजी पर बहुत गुस्सा आया। हमें टांड पर जगह दी गई जहां नसैनी से चढ़ना पड़ा। बिस्तर केवल रात में ही लगाया जाना था। खैर अब क्या हो? सामान जमा, नहा–धो पैदल ही अस्पताल आ गये।

हमने आज गंभीरता से अस्पताल की आवास व्यवस्था की जानकारी ली।
दरा में ही हमें पता था कि मरीजों के लिये सस्ते में अस्पताल की सिफारिश पर धर्मशाला उपलब्ध करवाई जाती है पर हम विभिन्न भ्रमों में डूबे रहे। समाजसेवा विभाग में इस विषय पर चर्चा की तो हमें तुरंत पर्ची मिल गई। पर्ची सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट के व्यवस्थापकों के नाम एक सूचना मात्र थी। रास्ता जानने के लिहाज से हम पैदल ही गये। स. अ. के मुख्य द्वार पर ही हमें दरा के हमारे गहन परिचित श्री कन्हैयालाल जी गोयल मिल गये। वे एक वर्ष से उनकी पत्नि का खून के कैंसर का इलाज टाटा अस्पताल में ही करा रहे हैं। उनके सहयोग से हमें धर्मशाला में कमरा मिल गया। आज से पांच दिन का किराया अग्रिम जमा करवा दिया गया। कमरे को ताला लगा बारह बजे करीब टैक्सी कर हम अस्पताल पहुंचे।

जांचे और जांचें। टाटा अस्पताल में हुई सारी जांचों में मेरे कोई खराबी नहीं आई। 5 ता. को डा. क्टर्स ने सारी रिपोर्ट देखने के बाद मेरे अटैन्डेन्ट पवनजी को बुलाकर गंभीर हो कर कहा,

''ऑपरेशन करके अंग निकालना पड़ेगा पर इसके पहले यह दो जांचें और होगी। एक जांच जसलोक अस्पताल में होगी जिसमें करीब हजार रु. खर्च होगा। क्या आप लोग खर्च कर सकोगे?''

पवनजी ने कहा,

''यदि जरूरी हो तो करना ही पड़ेगा।''

डॉ. ने फार्म भरकर फाइल के साथ हमें दे दिया। मैंने फाइल पढ़ी, ''एक्सप्लोरेशन'', एफ.पी., बी. एच. सी. जी.। आर. एस. विद रिपोर्ट्स। अर्थात् अब ये दो जांच करवाने के बाद रिपोर्ट लेकर हमें डॉ. से मिलना है। हमें फाइल जमा कराकर अस्पताल छोड़ने तक चार बज गये। जसलोक अस्पताल का पता व जाने के साधनों की जानकारी भी ली। थोड़ा चलने के बाद ही हमें पेडर रोड की बस मिल गई। हालांकि हमें पता था कि जांच हेतु सुबह ही बुलायेंगे पर कहीं न कहीं तो समय गुजारना ही था। सुबह ज्यादा तकलीफ नहीं होगी। शाम 5 बजे करीब हम जसलोक अस्पताल पहुंच गये। अरे! यह तो टाटा अस्पताल से भी शानदार है। काश मैं यहीं इलाज करवाता। गेट पर दरबान ने रोका तो उसे टाटा अस्पताल से लाई हुई पर्ची दिखाई। अंदर बड़े हॉल में अस्पताल बनाने वाले दानी दम्पत्ति की मूर्तियां लगी हुई है। अस्पताल

का नाम दोनों पति–पत्नि के नाम के आगे के अक्षर ले कर रखा गया है।

''हजार रु. तो इसे देखने में ही वसूल हो गये।''

मैंने चुटुकला सुनाया। हमने यहां बहुत सारी पूछताछ की। हमारी जांच कराने की प्रक्रिया के अलावा भी। खास कर इलाज व भर्ती होने के लिये कमरे की दरों के बारे में। इस अस्पताल में स्व. श्री जयप्रकाश नारायण का इलाज भी हुआ था। वे तीसरी मंजिल के कमरे में भर्ती थे। यहां भी आर्थिक आधार पर इलाज की तीन श्रेणियां हैं। इस अस्पताल में मुफ्त इलाज की सुविधा तो है पर उसके लिये बहुत सारी औपचारिकतायें हैं जिन्हें पूरा करना आम आदमी के बस की बात नहीं है।

अस्पताल से निकल घूम–फिर खाना खा रात हरिओम् लॉज की टांड पर ही सोये। अगले दिन ता. 6–12–1981 शनिवार को प्रातः लैटबाथ में भी लाइन लगानी पड़ी। जांचों के लिये खून देने जाते समय मैं सिर्फ पवन जी को ही साथ ले गया। पहले हम टाटा अस्पताल गये जहां बी. एच. सी. जी. नामक जांच के लिये खून दिया। इसके बाद बस से जसलोक होस्पीटल पहुंचे। कैश काउंटर पर सात सौ अड़सठ रु. की रसीद कटवाने के बाद जांच के लिये खून लिया गया। रिपोर्ट लेने आने के लिये 9–12 मंगलवार 11 बजे का समय दिया गया। दिमाग में फिर तनाव पैदा हुआ। हम जल्दी निबटना चाहते हैं और यहां हर जगह देर हो रही है। इतने दिनों में क्या बीमारी नहीं बढ़ेगी? खैर अब किया भी क्या जा सकता है? हम बस से हरिओम् लॉज लौटे। हमारे साथी सामान जमाकर तैयार बैठे थे। टैक्सी करके नये बसेरे सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट भवन पहुंचे। टैक्सी वाला सीधे रास्ते से न आकर घूमकर आया। सोलह रु. मीटर के हिसाब से चार्ज बना, दो रु. सामानों के मांगे गये। हम लड़ने को तैयार हो गये पर उसे बारह रु. से ज्यादा नहीं दिये। बेईमान आदि और कहा। उस दिन तो हमें लग रहा था कि हम सही हैं, टैक्सी वाला गलत है पर कुछ दिनों बंबई में घूमने के बाद लगा कि टैक्सीवाला सही था। यहां अक्सर सड़कें एकतरफा कर दी जाती हैं। सामान का किराया भी टैक्सीवाले लेते हैं।

यहां सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट भवन में हमारा कमरा तीसरी मंजिल पर सबसे आखरी में था। हम कमरा कल ही देख गये थे। कमरे में सामान जमाने से पहले हमने कमरे की बहुत अच्छी तरह सफाई की। पूरे कमरे में जाले लग रहे थे। झाड़ू से उन्हें भी निकाला। पहले दिन हमें पड़ौसी तीमारदारों से आध ा बाल्टी पानी उधार मांगना पड़ा। यहां कमरे बहुत बड़े–बड़े है। पानी बहाने के लिये अंदर चौकी व नाली (मिनी बाथरुम) बनी हुई है। यहीं एक नल लगा हुआ है। नल एक घंटा सुबह आठ बजे से नौ बजे तक पानी बहाता है। हमें पानी भरने हेतु दो बड़ी बाल्टियां खरीदनी पड़ी। अब हम अपना भोजन बनाना शुरु करेंगे। इसके लिये काफी सामान तो हम गांव से ही लेकर आये थे, जो कम रहा यहां खरीद लिया। इस धर्मशाला में सामूहिक (कॉमन) शौचालय हैं जो बहुत गंदे रहते हैं। शौचालयों के नलों में पानी नहीं आता है और यहां रुकने वालों को तो अपने नहाने का पानी ही मुश्किल से मिल पाता है। सामूहिक स्नानघर, पानी का नल, पेशाबघर तथा शौचालय हमारे कमरे से लगे हुये है। इससे हमें काफी सुविधा रही पर कई बार बदबू का भी सामना करना पड़ा।

तारीख 8–12–1981 तक हमने खूब बंबई देखी। मेरी सोच हो गई थी अब मरना तो है ही बंबई ही घूम लें। मुझे याद है रम्मू के लिये एक गरम जरकीन खरीदने वास्ते हमने ज्योतिबा फुले मार्केट की सारी दुकानें छान मारी थी। सौ रु. से डेढ़ हजार रु. तक की जरकीन देखने के बाद भी हमने नहीं खरीदी थी। गेट वे ऑफ इंडिया पर एक झोली में सामान बेचने वाले लड़के से हम उलझ गये थे। उसने एक बनियान का एक सौ बीस रुपया मांगा था, रम्मू ने गलती से उसका पंद्रह रुपया लगा दिया था। वह सेल्समैन बीस मिनट तक हमारे पीछे पड़ा रहा फिर घटते–घटते 15 रु. में देने को तैयार हो गया। अब हमने मना कर दिया। उसने जोर–जोर से बोल उसके साथियों को इकठ्ठा कर लिया। हम भी अखाड़े के पहलवान थे। सबको भगा दिया। वापसी में धर्मशाला आते समय हम खाने–पीने का सामान खरीद लाते थे। एक दुकान से मैं ब्रेड खरीदने लगा तो छोटे भाई वरुण ने टोका,

''आपको भी यही दुकान मिली क्या?''

मैंने कहा, ''क्या हुआ?''

''देखो यहां टोकरी में अंडे लटक रहे हैं।''

मुझे तो वहां से ब्रेड लेने में कोई बुराई नहीं लग रही थी। छोटे भाई की इच्छा का सम्मान करते हुये हमने ऐसी दुकानों से सामान नहीं खरीदा। पर क्या यहां हम इस चतराई को कायम रख पाये? अस्पताल में भर्ती होने के बाद तो कदापि नहीं। गांव फोन से एकाध बार बात हो ही जाती थी। हमारे आढ़तिये देवचंद रामजी की पेढ़ी पर भी हम मिलकर आये तथा अंधेरी स्थित राजस्थान विद्यार्थी गृह में पढ़ रहे मेरे मित्रों एवं रिश्तेदारों के साथ उनके मैस का खाना भी खा आये। मेरे साथ जो हादसा हुआ उसका उन सबको बहुत दुःख हुआ। कैलाश विजय, विष्णु गर्ग, शेखर मंगल आदि सब मित्रों से उनके फोन नं. ले लिये ताकि आवश्यकता पड़ने पर बुला सकूं।

ता. 9–12–1981 मंगलवार को हम जसलोक अस्पताल से रिपोर्ट लेकर टाटा अस्पताल में पहुंचे। औपचारिकतायें पूरी करने के बाद जब डा. के पास मेरी फाइल पहुंची तो पता लगा उसमें बी.एच. सी.जी. की रिपोर्ट ही नहीं है। सातवीं मंजिल पर नई बिल्डिंग में स्थित लेबोरेट्री में भी हम तलाश कर

आये पर यह रिपोर्ट तैयार नहीं हुई थी। डा. ने 11–12–1981 गुरुवार की तारीख दे दी। हम गुरुवार को पुनः टाटा अस्पताल पहुंचे तो सब रिपोर्ट्स आ चुकी थी। एफ.पी. बहुत ज्यादा बढ़ा हुआ था, बाकी सारी जांचों में कोई खराबी नहीं आई। डा. ने मेरे से ऑपरेशन की स्वीकृति ली तथा मुझे भर्ती होने के लिये 15–12–81 की तारीख दे दी। इस तरह बार–बार तारीख बदलना मुझे बहुत बुरा लगा, मैंने डा. सा. से बहस की,

''आज ही भर्ती कर लीजिये ना, इस तरह तो बीमारी बहुत बढ़ जायेगी।''

डा. सा. ने मुझे कुछ नहीं होगा ऐसा आश्वासन देने के साथ यह भी बताया कि अस्पताल में जगह भी देखनी होती है। ता. 15–12–81 को अस्पताल आने पर डॉ. सा. ने कुछ जांचे जो ऑपरेशन से पूर्व जरूरी होती है और लिख दी तथा मुझे कल आकर भर्ती होने के लिये कह दिया।

आश्चर्यजनकरूप से ता. 16–12–81 मंगलवार को प्रातःकाल सात बजे अचानक पिताजी व मेरे छोटे चाचाजी हमें ढूंढ़ते हुये सर्वोदय होस्पीटल में हमारे कमरे में आ गये। उनके साथ गांव से लाये सफर के सामान भी थे। यहां रहने वाला एक बालक उनका मार्गदर्शन कर रहा था। मुझे देखते ही पिताजी ने मुझे बाहों में भर लिया। उनकी आंखों से झर–झर आंसू बह निकले। उन्होंने कहा,

''मैं बारां में तेरे लिये बहुत चिंतित रहता था। मेरे से रहा नहीं गया। आज तुझे इस रूप में देखकर मेरी चिंता दूर हो गई है।''

''हां, बाबूजी अब चिंता करने से भी क्या होगा? मैंने तो चिंता करना बिल्कुल छोड़ दिया है। इलाज तो करवा ही रहे हैं, अब जैसा किस्मत में होगा होकर रहेगा। आप लोग बिना सूचना दिये क्यों आये? आप को तो हमें ढूंढने में बहुत तकलीफ आई होगी।''

मैं बोलता चला गया। मेरे पास बहुत सारे सवाल हैं। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यही है कि उन्होंने हमें ढूंढ लिया। दोनों पूज्य पितृ पुरुषों को कमरे में लाकर बिठाया। चाचाजी ने बताया कि दादर स्टेशन के प्लेटफार्म पर हमें एक कुली मिल गया। उसने तीन रु. लिये एवं हमें सामानों सहित टैक्सी पर छोड़ गया। हमें धर्मशाला का नाम याद नहीं था। हमने टैक्सीवाले से कहा कि टाटा अस्पताल के मरीज जिस धर्मशाला में रुकते हैं वहीं जाना है। उस टैक्सी वाले ने दो–चार लोगों से पूछा फिर सिर्फ पंद्रह रु. में यहां छोड़ गया। यहां के टैक्सी वाले भी कितने अच्छे हैं? हमें स्टेशन से धर्मशाला आने में इतना समय नहीं लगा जितना धर्मशाला में तुम्हें ढूंढने में। इस लड़के के साथ पूरी धर्मशाला की तीनों मंजिलें उतर–चढ़ हमारे पैर ही दुखने लगे हैं।'' ईश्वर की अनुकंपा से हम आपस में मिल सके। पिताजी को मेरे स्वास्थ्य की बहुत चिंता रही और वह अचानक ही चाचाजी के साथ यहां आ पहुंचे। उन्होंने मेरे को पहले से भी ज्यादा मस्त–स्वस्थ देखा तो उनकी सारी चिंता दूर हो गई। हमने दैनिक कार्यों के बाद खाना बनाया व खाया। हम आज 16–12–1981 को पिताजी व चाचाजी को भी साथ लेकर टाटा अस्पताल पहुंचे।

डॉ. सा. ने हमें फाइल दे दी। पवनजी, पिताजी व चाचाजी के साथ अस्पताल के अंदर वाले रास्ते से पुल पार करके नये भवन में पहुंचे। मेरा मकसद दोनों बुजुर्गों को अस्पताल तथा यहां की व्यवस्थाओं से परिचित कराना भी था। वैसे अस्पताल में खुला आवागमन नहीं है पर हमारे पास फाइल थी जिस पर मुझे भर्ती करने की अनुशंसा भी डॉ. द्वारा लिखी गई थी इसलिये वाचमैन ने हमें जाने दिया। अस्पताल का यह पुल पुराने भवन की पहली मंजिल से नये भवन की दूसरी मंजिल को जोड़ता है। नया भवन तेरह मंजिला है। यहां चार लिफ्ट लगी हुई है। पिताजी तो पहली बार ही लिफ्ट में चढ़े। लिफ्टमेन ने भी कर्तव्य पालन करते हुये पूछा,

''कैसे''?

मैंने फाइल दिखाते हुये कहा, ''भर्ती होने के लिये नौवीं मंजिल पर जाना है।''

''पेशेन्ट कौन है?''

चाचाजी ने मेरी ओर इशारा किया। मैं ही चारों में सबसे ज्यादा स्वस्थ लग रहा था। लिफ्ट के सारे लोग मेरी ओर आंखें फाड़–फाड़ कर देखने लगे। मैंने मजाक किया,

''दिखता तो नहीं हूं न।''

हिन्दी समझने वाले हंसे। लिफ्टमैन सहित कई लोग बुरा मान गये।

''सब स्वस्थ ही तो दिखाई दे रहे हैं, ऐसा नहीं बोलना चाहिये।''

लिफ्ट में से एक आदमी ने मुझे प्यार से डांटा। दरअसल वे लोग समझे कि मैं नाराज होकर कह रहा हूं,

''दिखाई नहीं देता क्या?'' भाषा से कई जगह समस्यायें पैदा हो जाती है।

लिफ्ट से नवें माले पर उतर हमने ड्यूटी पर मौजूद नर्स को फाइल दिखाई। सौभाग्य से एक नं. बेड खाली था। औपचारिकतायें पूरी करने के बाद मुझे भर्ती कर लिया गया। वार्ड व बैड देखने के बाद जसलोक अस्पताल में इलाज न करा पाने का मलाल समाप्त हो गया। एकदम साफ–सुथरा, चमकदार अस्पताल। भीड़भाड़ बिल्कुल नहीं, एकदम शांति। एक हॉल में मात्र छः पलंग, वे भी काफी दूर–दूर। बहुत बढ़िया बालकनी जिससे बंबई की सड़कों का नजारा दिखाई देता है। हरेक बैड की दीवार पर आक्सीजन की लाइन की फिटिंग। इतने बढ़िया व मोटे गदेले तथा तकिये तो हम चारों ने ही पहली बार देखे हैं। मरीज का सामान रखने की अलमारी भी चमकदार, दो दरवाजों वाली, ताले लगाने की सुविधा सहित।

उस पर चमकदार लौटा ढककर रखा हुआ। वार्ड के बाहर गैलेरी में पानी पीने हेतु वाटर कूलर लगा हुआ है। हमारे लिये ये सब बिल्कुल मुफ्त। वार्ड के बाहर लिखा हुआ है, ''माइक्रोसर्जरी वार्ड।'' अर्थात एम. एस. डबल्यू.। इतने बढ़िया अस्पताल में आने के बाद सभी को मेरा सही इलाज होने की उम्मीद हो गई। अस्पताल में भर्ती करने के बाद मुझे अस्पताल के ही कपड़े पहनने को मजबूर किया गया। बिल्कुल वैसे ही जैसे जेल में कैदियों के होते हैं। मुझे आज ऑपरेशन की तारीख दी गई थी पर शायद पल्स सही नहीं होने के कारण ऑपरेशन रद्ध कर दिया गया। अब शायद 19–12 शुक्रवार कों ऑपरेशन हो सकेगा। बार–बार तारीख बदलने से हमारा विश्वास डगमगाता जा रहा है। कई बार मुझे लगा मुफ्त वाला इलाज होने से हमें देर हो रही है। हमारी यह भावना हमने डॉ. के सामने भी प्रकट कर दी पर उन्होंने इसका खंडन किया। क्या पता कब इलाज हो? सब देखकर ही मेरे अनुरोध पर पापा ने वापस गांव आना स्वीकार कर लिया। हम सब यहां रहेंगें तो कमायेगा कौन? उस शाम दोनों बुजुर्गो को मैंने अस्पताल की नवीं मंजिल से ही विदा किया। यहां मेरी देखरेख करने के लिये मेरे स्वयं के सहित हम चार आदमी थे। रात कों दोनों को ट्रेन पर बिठा कर वापस भेज दिया गया। उनकी और रुपये भेजने की इच्छा थी पर अब हमारा यहां खर्च ही क्या रह गया है? फिर हमारे आढ़तिया सहित कई स्थानों से हम आपातकाल में पैसे ले सकते थे।

यहां अस्पताल में भर्ती मरीजों को अस्पताल की ओर से चाय, नाश्ता, तथा दोनों समय का खाना दिया जाता है। भर्ती होने से पहले नर्स ने मेरे से पूछा था
''वेज या नॉनवेज''।
मैंने थोड़ा दृढ़तापूर्वक जवाब दिया था, ''वेज केवल वेज। मेरे लिये अंडा भी नॉनवेज में आता है।''
नर्स में फाइल में यह जानकारी लिख दी थी इसके बावजूद जब भी नाश्ता या खाना आया, बांटने वाले चपरासी या नर्स अंडा या मटन लेने के लिये आग्रह करते थे। पहले दिन मैंने धर्मशाला से बनाकर लाया हुआ खाना खाया फिर इसे नितांत असुविधाजनक मान अस्पताल का खाना लेना ही मंजूर किया। वाह री किस्मत! कहां तो हमने उस दुकान से ब्रेड ही नहीं खरीदी थी जहां अंडे भी बिक रहे थे। कहां उसी रसोई का, उन्हीं हाथों से, खाना पड़ा। सुबह छः बजे चाय आती। अस्पताल में रहने के दौरान प्रथम दो–तीन दिन छोड़ मैने नियमित चाय पी। वैसे में चाय बिल्कुल नहीं पीता था बहुत ज्यादा आग्रह पर भी नहीं। प्रातः साढ़े आठ से नौ बजे तक नाश्ता बांटा जाता। नाश्ते में दो ब्रेड मक्खन लगी हुई, दो अंडे, तथा एक गिलास दूध प्रत्येक मरीज के लिये आता था। हम दो–तीन शाकाहारी अंडे नहीं लेते थे जो स्टाफ वालों के हिस्से में आ जाते थे। रविवार को प्रातः के खाने में मटन भी दिया जाता था। बाकी समय सुबह शाम दो रोटी, चावल, एक सूखी सब्जी तथा दाल दी जाती थी। खाना साधारण आदमी का पेट भरने के लिये पर्याप्त हो जाता। मैं अकसर चावल नहीं लेता था इसकी जगह मुझे दो रोटी अतिरिक्त दे दी जाती। कभी–कभी हमें अंडे न लेने की एवज में दो ब्रेड अतिरिक्त भी दी गई। दिन में फल भी वितरित होते जिसमें अधिकतर मौसम्मी मिलती। रात को साढ़े नौ बजे दूध आता था। इस दूध का तो अधिकांश हिस्सा वहां के कर्मचारियों के पेट में ही जाता था। इसी तरह डॉ. द्वारा लिखे जाने पर मरीजों को फलों का रस तथा जैली भी देने की व्यवस्था यहां हैं। सारी खुराक सही–सही प्राप्त करने के लिये चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को पटाकर या दबाकर रखना पड़ता है।

तारीख 19–12–81 को भी मेरा ऑपरेशन अनियमित पल्स के कारण रोका गया। पल्स नियमित करने हेतु तथा आपरेशन की तैयारी हेतु दवाइयाँ चलती रही। अंत में ता. 21–12–81 को रविवार को प्रातः दस बजे मुझे ऑपरेशन के लिये ले जाया गया। रविवार को अस्पताल बंद रहता है पर उसी दिन मेरा ऑपरेशन हुआ। बारां से मुझे यहां आये बीस दिन हो चुके हैं तथा इस अवधि में मेरी गांठ कोई चार गुना बढ़ चुकी है। ऑपरेशन करके गांठ के साथ उस अंग को भी निकाल दिया गया। इस तरह एक साल व एक सप्ताह के अंदर मैं भगवान द्वारा सभी जीवधारियों को प्रदत्त उस शक्ति से वंचित हो गया जिससे यह सृष्टि लगातार चल रही है।
मुझे करीब साल भर पुराना घटनाक्रम याद आया। हम आठ दस सजातीय बंधु, रिश्तेदार, भाई सभी अठारह से 26 वर्ष आयु के जवान, बगीची पर प्रातः नहाने जाते थे। शौच, मंजन, तेल मालिश, बाग की सिंचाई, व्यायाम, स्नान व मंदिर दर्शन–पूजन सब वहीं कर, नौ बजे करीब घर लौटते थे। हम अक्सर रविवार को अपने हाथों से दाल बाफले वहीं बना कर खाते थे। दिसम्बर 1980 के प्रथम रविवार अर्थात 8–12–80 को दिन में जब हम बंकट की बगीची में खाना बनाने की तैयारी कर रहे थे अचानक मेरे पेट में बहुत जोर से दर्द हुआ। मैं काफी देर तक दर्द से बिलबिलाता रहा और दोस्त लोग इसे मेरा नया मजाक समझते रहे। नीबू सोडा आदि पीने तथा बहुत देर तक लोटपोट होने के बाद गैस पास हुई और मैं सामान्य हो सका। उसी दिन मैंने अपनी जन्मजात विकृति डॉ. को बताने का दृढ़ निश्चय कर लिया। ऐसे तो कभी हादसा हो सकता है। पेट दर्द का सही कारण मैं साथियों को तो नहीं बता सका था पर मुझे पता लग गया था। वास्तव में मैं अन्डेन्सेन्डेन्ट टेस्टी नामक बीमारी से ग्रस्त था जिसपर बचपन में मां–बाप ध्यान नहीं दे पाये थे। मैं समझदार हुआ पर 'क्या नुकसान है' यह सोचकर कभी किसी से चर्चा नहीं की। थोड़ी शर्म वाली बात भी थी ही। उस दिन मेरे पेट में गैस बनने से पेट में स्थित अंग पर भारी दबाव पड़ा व

मैं बहुत परेशान हुआ। हिम्मत कर मैं बारां अस्पताल के सर्जन डॉ. पाण्डे के पास गया। उन्होंने रोग देख मुझे तथा मेरे मातापिता को बहुत भला–बुरा कहा। साथ ही मुझे अब तुरंत ऑपरेशन करवाने की सलाह दी। उन्होंने मुझे रोग से कैंसर होने तक का खतरा बता कर डरा दिया था। यह ऑपरेशन सात साल की उम्र में हो जाना चाहिये था।

''चलो काम तो जटिल है पर फिर भी अंग को पेट में से निकाल कर सही जगह लगाने का प्रयास करेंगें।''

भयभीत हो मैंने सारी बात मेरे प्रातःभ्रमण वाले साथियों को बताई। अब छुपाना संभव भी नहीं था। सभी साथियों की डॉ. पाण्डेय के बारे में अच्छी राय नहीं थी। यहीं कार्यरत डॉ. किंकर के अधिकांश लोग मुरीद थे। डॉ. किंकर ने भी देखते ही पूरे उत्साह से कहा,

''अरे यह तो मामूली ऑपरेशन है। बस दो दिन में अस्पताल से छुट्टी दे दूंगा। यह एक अंग तो फालतू होता है, निकाल देंगे तो कोई हानि नहीं है। वापस लगाने में बीमारी का खतरा हो सकता है तथा अस्पताल में भी ज्यादा रुकना पड़ेगा।''

कुल मिलाकर यही तय हो गया कि अंग को डॉ. किंकर से ऑपरेशन करवा कर निकलवा दिया जाये। अब समस्या आई यह काम कहां हो? डॉ. किंकर के घर ऑपरेशन करवाना हमें नहीं जंचा। वहां इतनी सुविधायें कहां? अस्पताल में सीनीयर डॉ. के होते जूनीयर डॉ. ऑपरेशन नहीं कर सकता। इसका समाधान भी डॉ. किंकर ने ही निकाला। दो दिन के लिये पाण्डेय जी छुट्टी पर जा रहे हैं बस उसी समय अस्पताल में यह ऑपरेशन करेंगें। सारी तैयारियां जांच वगैरह प्राइवेट में करवा ली गई। सोमवार प्रातः तारीख 16–12–80 को मैं बारां के राजकीय अस्पताल में भर्ती हो गया। दोपहर में मेरा महत्वपूर्ण अंग बिना कोई जांच कराये निकाल कर फेंक दिया गया। शाम छः बजे मुझे होश आ गया। दूसरे दिन शाम को मैं घर आ गया। आठ दिन बाद डॉ. सा. ने घर पर आकर ही टांके काट दिये। हमने उन्हें इस सारे काम के लिये तीन सौ रु. फीस जो दी थी। अनाड़ी डॉ. से इलाज करवाने की यह भयंकर सजा मुझे मिली। साल भर तक मैं ठीकठाक रहा। हमने वापस घूमना–फिरना चालू कर दिया। साल के बीच में एक बार मुझे झटका तब लगा जब मेरे इसी ऑपरेशन के कारण मेरा वैवाहिक संबंध टूट गया। नवम्बर 1981 में प्रातःभ्रमण से आने के बाद मुझे उसी स्थान पर कुछ तकलीफ महसूस हुई। उस तकलीफ के परिणामस्वरूप आज मैं इस स्थिति तक पहुंचा।

ऑपरेशन की तकलीफें खास महसूस नहीं हुई। दो–तीन दिन बोतलें चली फिर खाना शुरु हो गया। भर्ती के दौरान ही लिम्फोग्राफी नामक जांच लिखी गई थी। जांच के लिये लेबोरेट्री में ले जाकर मेरे पैरों में चीरे लगाये गये पर किन्हीं कारणोंवश जांच नहीं हो पाई। मेरी निकाली गई गांठ की जांच रिपोर्ट आ गई। उसमें मेग्लीनेंट टेरटोमा नामक प्राणघातक बीमारी पाई गई। 31–12–82 बुधवार को मुझे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। हमें सोमवार 5–1–82 को पुनः अस्पताल जाकर डॉ. सा. को दिखाना है। अतः हम चार दिन और धर्मशाला में ही रुके। मैं इस अवधि में भी धर्मशाला में नहीं टिका। रोज कहीं न कहीं घूमने निकल जाते। मेरे पैरों के चीरों पर पट्टी कराने में मुझे बहुत तकलीफ आई। सर्वोदय अस्पताल सहित आसपास के सभी डॉ. ने मुझे टाटा का पेशेन्ट कह कर पट्टी करने से मना कर दिया। मैं हर मना करने वाले डॉ. से बहस करता एवं उन्हें समझाने का प्रयास करता कि इन घावों का कैंसर से कोई संबंध नहीं है। न हीं कैंसर कोई छूत की बीमारी है जिससे आप कैंसर पेशेन्ट से छूआछूत बरतें। पहले दिन तो मुझे पट्टी कराने दो किमी दूर टाटा अस्पताल ही आना पड़ा। अगले दिन मैं अपने तर्कों से एक प्राइवेट डॉ. से पांच रुपये में पट्टी करवाने में सफल हो सका। पैरों में नहाने एवं जूते पहनने के कारण रोज ही ड्रेसिंग करवानी पड़ती थी। इसी बीच हम एक दिन डा. टी. एम. जैन सा. से मिलने भायखला गये। पांच तारीख सोमवार को हम पुनः अस्पताल पहुंचे। सब कुछ ठीक है, अब एक बड़ा ऑपरेशन और होगा, इसके लिये हमें 29–1–82 गुरुवार की तारीख दे दी गई। हमें हमारे घर जाने की इजाजत मिल गई। केन्द्रिय सरकार के नियमों के अनुसार कैंसर पेशेन्ट को इलाज कराने आने जाने के लिये रेलगाड़ी व हवाई जहाज में कन्सेशन टिकट मिलता है। हमने भी कन्सेशन फार्म एक लंबी लाइन में लग कर बनवाये। घर जाने की हमें बहुत जल्दी थी तथा हमें पूर्व में ही आज छुट्टी मिलने की उम्मीद थी, अतः हमने रात ग्यारह बजे दादर स्टेशन से ट्रेन पकड़ ली। हमने रिजर्वेशन लेने का प्रयास नहीं किया क्योंकि तुरंत ही चार रिजर्वेशन मिलना असंभव लगा। कंसेशन फार्म से हमें दो टिकट सामान्य से चौथाई किराये में मिल गये। 6–1–1982 मंगलवार को मेरे वास्तविक पच्चीसवें जन्मदिवस पर रात बारह बजे हम अपने–अपने घर पहुंचे।

हमें बारां से वापस बंबई जाने का कंसेशन फार्म टाटा अस्पताल से उसी समय दे दिया गया था। हमने 29–1–82 गुरुवार को बंबई पहुंचने के हिसाब से चार रिजर्वेशन पूर्व में ही करवा लिये थे। इस बार मेरे साथ पवनजी, वरुण व मेरी मां बंबई गये। हमें सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट में आसानी से कमरा मिल गया। पहले दिन मैं मां को भी अस्पताल ले गया। मुझे उम्मीद थी कि जाते ही भर्ती कर लेंगें पर ऐसा नहीं हुआ। 'कमरा खाली नहीं है ' कहकर पुनः 2–2–82 सोमवार को 'एडमिशन इन्क्वायरी' के लिये बुलवाया गया। हमें 2 फरवरी को फाइल पर लिखकर दे दिया गया, 'भर्ती करे, एम. एस. डबल्यू.'। हम

फाइल लेकर नौवीं मंजिल के वार्ड में दौड़े। वहां पता लगा कि कोई बेड खाली नहीं है, डॉ. ने कैसे लिख दिया ? वहां हमने पूर्व में भर्ती मरीजों से बात की तो पता लगा कि ऐसे तो अभी कई चक्कर लगाने पड़ेंगें। भर्ती होने के बाद भी ऑपरेशन का नम्बर आने में कई–कई दिन लग जाते हैं। मैं पुनः डॉ. सा. से मिला। उन्होंने मजबूरी बताई। पेशेन्ट ज्यादा हैं, जब पलंग खाली होगा तभी तो भर्ती कर पायेंगे। मुझे उनकी बातों से लगा, ऐसे तो महीनों भी निकल सकते हैं। वापस धर्मशाला आकर हमने सलाह मशवरा कर तय किया कि मां, वरुण व पवनजी गांव चले जायें, मैं यहां डॉ. की जान खाता रहूंगा। जब मुझे भर्ती कर लेंगे तो मैं फोन कर दूंगा, वहां से वे लोग तुरंत आ जावेंगे। वैसे भी भर्ती करते ही कौन सा ऑपरेशन कर ही देते हैं। हमने इस योजना को क्रियान्वित किया। मां, पवनजी व वरुण को मैंने रात की देहरादून एक्सप्रेंस में बिठाकर बारां भेज दिया।

मैं बंबई में काफी दिन अकेला रहा। मेरा समय गुजारने के लिये मैं धर्मशाला में मेरे अकेले के लिये दोनों समय खाना बनाता था। वहां रहने वाले कई पड़ौसियों से मैंने दोस्ती कर ली। मैंने इतने दिनों में कभी अपने आप को बीमार महसूस नहीं किया और न ही जानबूझ कर किसी को जताया कि मैं कैंसर पेशेन्ट हूं। मेरे इन्हीं दोस्तों में से एक आंध्र प्रदेश का नायब तहसीलदार था जो अपनी पत्नी का ब्रेस्ट (स्तन) कैंसर का इलाज करवाने आया था। उनके साथ एक खूबसूरत सा बेटा भी था। वे मेरे कमरे के पीछे वाले कमरे में रहते थे पर न जाने कैसे हमारी मुलाकात हो गई। शायद उन्हें व मुझे हमारे मानसिक स्तर का ओर आदमी नहीं मिला। यहां धर्मशाला में बहुसंख्या में गावों के अनपढ़ व निध न लोग ही आकर रहते हैं। एक दिन मैं दोपहर में अपना खाना बना रहा था तो महोदय अपने बच्चे के साथ कमरे पर आ गये। आश्चर्य की बात यह थी कि हम एक दूसरे की भाषा बिल्कुल नहीं समझते थे। टूटी–फूटी अंग्रेजी से या इशारों से ही काम चलाते थे। उन्होंने मुझ से पूछा,

''क्या बना रहे हो ?''

मैंने कहा ''चपाती।''

''ओह परांठा।''

''नहीं, दोनों में कुछ फर्क है।''

''क्या ?''

अब मैं कैसे वर्णन करता ? मैने उनको बिठाकर उनके सामने ही एक परांठा वर्ली स्थित आरे मिल्क डेयरी के शुद्ध घी का बनाया। परांठा तथा आलू मटर की सूखी सब्जी बच्चे को खिलाई तो बच्चे ने बहुत तारीफ की। उन्होंने मुझे भी कमरे में आने का आमंत्रण दिया। दूसरे दिन मैं भोजन के समय उनके कमरे के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। उनकी पत्नी मटन (बकरे का मांस) काट रही थी तथा चावल बन कर तैयार हो चुके थे। मैं अंदर नहीं घुसा। बाहर से ही थोड़ी देर इशारों में बात कर वापस आ गया। एक दिन मैं उनके परिवार के साथ उन्हें बंबई भी घुमाकर लाया। उनके लिये यहां बंबई में हिन्दी, अंग्रेजी व मराठी भाषा के ज्ञान के बिना निर्वाह बहुत मुश्किल हो रहा था। वे मात्र तेलगु ही जानते थे।

इसी तरह से मेरी दोस्ती पटना ए. जी. ऑफिस के ऑडिटर कैलाशपति ठाकुर से हुई। वे स्वयं के इलाज करवाने अपनी पत्नी के साथ आये हुये थे। उन्हें सिर पर कैंसर की गांठे हो गई थी। वे बहुत अच्छी हिंदी, अंग्रेजी जानते थे तथा मस्त स्वभाव के थे। उनका जो भी इलाज हो रहा था वह सब सरक. ारी खर्चे पर था। उनको इस बात का बहुत मलाल था कि उनकी पत्नी को चपाती बनाना नहीं आता है। रोज–रोज चावल खाकर बोर हो जाते हैं। उन्होंने मेरे से अनुरोध किया कि मैं मेरी भाभी को चपाती बनाना सिखा दूं। एक दिन मैं भोजन के समय उनके कमरे में गया भी पर वहां जाकर पता लगा कि उनके पास तवा ही नहीं है। हमने आपस में वादा किया था कि एक दूसरे को चिठ्ठियां लिखेंगे तथा आपस में जवाब देंगे। मैंने यह भी कहा था कि यदि जवाब नहीं आये तो शोक पत्र भेजेंगे। वहां से मुझे आज तक कोई पत्र नहीं मिला। मैंने एक पत्र लिखा था, उसका भी जवाब नहीं मिला। शोक पत्र लिखने की मैं गुस्ताखी नहीं कर पाया।

इसी तरह प्रथम धर्मशाला प्रवास में ही हमारी वहां के स्टॉफ से अच्छी मित्रता हो गई। चाय पानी तो कराते ही थे, हम नीचे कार्यालय में देर तक बैठे भी रहते थे। पूछताछ भी हम कार्यालय में जाकर ही करते थे। गांव के मराठी लोग तो हमारी भाषा समझ नहीं पाते थे। यहां दो महिलायें तथा दो पुरुष लिपिक या व्यवस्थापक कार्यरत थे। हमारे पवन जी कुछ बुजुर्ग जैसे लगते हैं। एक दिन उन्होंने वहां की सबसे ज्यादा पावरफुल महिला कर्मचारी से पूछ लिया,

''मैडम आप के कितने बच्चे–बच्ची हैं।''

उस हल्की सी मूंछों वाली ने हंस कर कहा,

''अभी तो मेरी शादी ही नहीं हुई है। शादी क्या अभी तो सगाई भी नहीं हुई है।''

हम सब को इतनी उम्र की महिला की शादी न होने पर दुःखद आश्चर्य हुआ। एक दिन हमने स्टॉफ की फिल्म दिखाने की मांग स्वीकार कर ली। उस रविवार दोपहर बारह बजे वे हमें बहुत पैदल चला कर एक टॉकीज में ले गये जहां मुगलेआजम फिल्म लगी हुई थी। हमें देर हो गई थी अतः टिकट नहीं मिल पाये। बाद में हम पैदल दो टॉकीज और घूमे पर देरी के कारण फिल्म नहीं देख पाये। फिर एक साध

ारण हॉटल में चाय–नाश्ता कर विदा हुये। फिल्म देखने का वादा बाकी रह गया जो पूरा नहीं हो पाया।

डॉ. टी. एम. जैन कोई बीस साल दरा में रह कर आये है। आजकल वे बंबई के भायखला इलाके में शत्रुंजयदर्शन नामक बहुमंजिला इमारत में दो फ्लेट खरीद कर रह रहे हैं। घर में ही उन्होंने अपना क्लिनिक खोल रखा है। बारां से आने वाला हर मरीज उनका पता लेकर आता है तथा उनकी सलाह लेकर इलाज करवाता है। दिसम्बर 81 में मेरे प्रथम ऑपरेशन के बाद आई जांच रिपोर्ट लेकर हम भी उनके घर पहुंचे। मैं अपने अटैन्डैन्ट्स रम्मू, वरुण व पवनजी के साथ था। उन्होंने रिपोर्ट देखने के बाद एक बहुत मोटी पुस्तक के पन्ने पलटना शुरु किया। मैं पुस्तक को जो पूर्णतः अंग्रेजी में छपी थी, पढ़ने लगा तो डॉ. सा. ने मेरे को पुस्तक पढ़ने से मना कर दिया। खैर मुझे पेज नं. तो पता लग ही गया था, डॉ. सा. ज्योंही पुस्तक बंद कर उनके क्लिनिक पर आये मरीज को देखने गये, मैंने झट से वही पेज निकाल कर पढ़ना शुरु कर दिया। मेरी बीमारी का हूबहू चित्रण था। मृत्यु दर पाँच वर्ष में अस्सी प्रतिशत लिखी हुई थी। डॉ. सा. ने मुझे पुस्तक पढ़ते हुये पकड़ ही लिया। वे बेहद निराशा के से स्वर में बोले,

''तू तो मस्त रह। अब तुझे काहे की फिक्र? जब तक जीना है मौत–मस्ती से जी।''

मैंने जवाब दिया, '' मैं तो मस्त व निश्चिंत ही हूं। मैं तो उन 20 प्रतिशत लोगों में से हूं जो बीमारी होने के पांच साल भी दुनियां में दिखाई देते हैं।''

डॉ. सा. समझ गये कि मैंने किताब से क्या पढ़ समझ लिया है। वे मेरे उत्साह पर प्रसन्न भी हुये।

डॉ. सिक्वेरा मुझे अटैण्ड करते थे। बड़े ऑपरेशन के लिये भर्ती होना था और हर बार एक ही बात 'जगह नहीं है' मैं बहुत परेशान हो उठा। उस दिन मैं बोल ही पड़ा,

''जगह नहीं है तो डॉ. सा. आप ऐसा करो....।''

मैं बोल तो गया पर आगे मेरे पास कहने को कुछ नहीं था। डॉ. सा. बोले,

''हां, हां, बोलो–बोलो गुप्त।''

मैंने बात पूरी की, ''एक पलंग पर दो पेशेन्ट को भर्ती कर दें।''

डॉ. ने कमरे मौजूद सभी लोगों को मेरा सुझाव सुनाया। इस बचकानी बात पर सभी देर तक हंसे भी। यह बात जनवरी 82 की होना चाहिये। जब सभी डॉ. मेरे जीवन के प्रति चिंतित थे तब भी मेरी मन. स्थिति में हास्य बसा हुआ था।

हम चाहे कफन ओढ़कर सोये हैं
फिर भी सुनहरे सपनों में खोये हैं।

मैं 29–1–82, 2–2–82, 5–2–82, 8–2–82, 12–2–82, को भर्ती होने के लिये अस्पताल आता जाता रहा। अंत में 15–2–82 को मुझे बिस्तर खाली मिल ही गया। मैंने फोन कर बारां से मेरे परिजनों को बुलवा लिया। 17–2–1982 को मुझे बहुत दिनों से स्थगित चल रही लिम्फोग्राफी नामक जांच करने हेतु ले गये। लिम्फोग्राफी जांच की मुझे अच्छी तरह से अभी तक याद है। मुझे एक वातानुक. ूलित बिल्कुल ठंडे हॉल में एक मेज पर लेटा दिया गया। मेरे हाथ तथा पैर उस मेज से लगी बेल्टो से बांध दिये गये। मेरी आंखें भी बांध दी गई ताकि मैं कुछ देख न सकूं। इसके बाद दो डॉ. व दो नर्सें मेरे पावों में औजार चलाने लगे। औजारों की एक पूरी ट्राली मेरी ऑपरेशन टेबल के पास ही रखी हुई थी। एक सफाई कर्मचारी भी मेरी सेवा में लगा हुआ था। डॉ. मेरे पैर पर औजार चलाते एवं मुझे लगता कि बहुत सारा काट दिया। न तो मेरे पैर सुन्न किये गये थे और न ही मुझे बेहोश किया गया था। आध ो घंटे तक मेरे दोनों पैरों में औजार चलते रहे और मैं घबराता रहा कि इतने घाव कैसे ठीक हो पायेंगे। मैंने डॉ. से पूछ ही लिया,

''कब तक काटोगे डॉक्टर सा.।''

डॉ. ने जवाब दिया, ''तुम्हारे पैर में नसें बहुत बारीक हैं, हम कोई मोटी नस ढूंढ रहे हैं जिसमें इंजेक्शन के द्वारा दवा शरीर में पहुंचाई जा सके।''

मैं अपनी समस्या से परेशान था। मेरे जोर से पेशाब आ रहा था। मैंने कुछ देर ओर बर्दाश्त किया। डॉक्टर्स की कैंचियां चलती रही। ए. सी. में भी जब उनको पसीने आने लगे तो मैं समझ गया, अभी समय लगेगा।

मैंने बहुत संकोच से कहा, ''जल्दी निपटाईये न सर, मेरे जोर से पेशाब आ रहा है।''

''पेशाब आ रहा है, पर हम तुम्हें अभी तो नहीं खोल सकते।''

डॉ. ने सलाह मशवरा करके मेरे से पूछा, ''कुछ देर और रुक सकते हो क्या? नहीं तो पॉट में करवाना पड़ेगा।''

मैंने रुकने में असमर्थता जताई तो उन्होंने चपरासी को आदेश दे दिया,

''पेशेन्ट को पॉट लाकर पेशाब करायें।''

दो नर्सें, दो डॉक्टर तथा और भी आता–जाता स्टाफ। मुझे बड़ी शर्म लगी। चपरासी बर्तन लेकर आया। इस प्रक्रिया के दौरान डॉ. ने हँस कर नर्सों को बाहर जाने हेतु कह दिया। मेरी तो आंखें बंधी हुई थी ही। मरीजों को इन सब परिस्थितियों से रूबरू होना ही पड़ता है। कुछ देर और प्रयास करने के बाद डॉक्टर्स ने मेरे पैरों के घावों को पट्टियां कर पैक कर दिया। फाइल पर नोट लग गया 'लिम्फोग्राफी असफल'।

मुझे मुक्त करके वापस वार्ड में भेज दिया गया। मैनें मेरे पास के पलंग पर मेरे जैसी ही बीमारी से भर्ती तूरकर उपनाम वाले लड़के के लिम्फोग्राफी के फोटो (एक्सरे) देखे थे। इस जांच में मरीज के शरीर में कोई दवा डाल कर पेट, पीठ के चार पांच एक्सरे लिये जाते हैं। इसका उद्धेश्य ट्यूमर का पता लगाना है। मैं जहां पावों में बड़े घाव होने की कल्पना कर रहा वहां मात्र एक–एक इंच का एक–एक चीरा दोनों पांवों में लगाया गया था। जिन पर साधारण पट्टी कर दी गई थी।

मैं कई दिनों से अस्पताल में बड़े ऑपरेशन के लिये भर्ती था। आसपास भर्ती मरीजों के ऑपरेशन हो रहे थे। डॉ. सभी से दो–तीन बॉतल खून की व्यवस्था करने के लिये कहते। सभी परिजन बमुश्किल व्यवस्था कर पाते। मुझे भी भय सताने लगा। मेरे साथ तो मेरी दुबली पतली मां व छोटा भाई वरुण ही है। एक दिन राउंड पर आये डॉ. जगदीश नारायण जी कुलकर्णी से मैंने पूछ ही लिया,

''डॉ. सा. क्या मेरे ऑपरेशन में भी खून की जरूरत पड़ेगी।''

डॉ. सा. बोले, ''बिना खून के भी कोई ऑपरेशन होता है क्या?''

मैंने सुविचारित प्रस्ताव रखा, ''तब तो आप अभी मेरा खून ले कर फ्रीज में रख लो, ऑपरेशन के समय चढ़ा देना। आप दस पांच दिन बाद ऑपरेशन करोगे तब तक शरीर में यह खून बन ही जायेगा।''

तत्कालीन समय में यह कल्पनातीत बात थी। सभी उपस्थित डॉ. मेरे सुझाव पर दंग रह गये।

''फिर से कहना गुप्त।''

मैंनें पुनः अपनी बात दोहराई जब डॉ. को विश्वास हुआ कि मैं पूरी गंभीरता से बात कह रहा हूं। डॉ. ने अंग्रेजी में अपने साथी डाक्टर्स से कहा,

''क्रांती, ऐसे ही पेशेन्ट हमारे पास आये तो देश में क्रांति हो जायेगी।''

फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले, ''ऐसा नहीं होता है रे गुप्त।''

मैं बहस करने के मूड में था, ''क्यों नहीं हो सकता?''

डॉ. मेरे सुझाव पर विचार नहीं करना चाहते थे, उनके पास समय भी कम था, वे अगले मरीज की ओर बढ़ गये। यदि डॉ. मेरे सुझाव पर विचार करते तो मेरा इन डॉ. सा. का तथा इस अस्पताल का नाम आज गिनीज बुक में दर्ज होता। 1986 से यह प्रक्रिया चालू हो गई है।

अस्पताल के डॉ. सिक्वेरा मुझे मित्रवत् लगने लगे थे। कई बार मरीजों की मरहम पट्टी, सफाई, औजार लाने ले जाने जैसे कामों में मैंने उनकी मदद की। एक दिन मेरे सामने लेटे मरीज ने ऑपरेशन के बाद बांधी गई पट्टी खुजा–खुजा कर खोल डाली। मांस के लोथेड़े बाहर झांकने लगे तथा खून बहने लगा। आपातकाल में डॉ. सिक्वेरा जी को बुलवाया गया। ड्यूटी नर्स कहीं ओर उलझी हुई थी पर मैं हाजिर था। मैंने भारी घिन्न आने के बावजूद नर्स की तरह डॉ. की मदद करके पट्टी करवाई। फिर मरीज के शरीर की सफाई की। खून से सने हाथ डॉ. की तरह ही साबुन लगा–लगा कर नर्सिंगरुम के वाशबेसिन में धोये। फिर मैं डॉ. सा. से बोला,

''आप तो मुझे यहीं अप्वाइंटमेंट दिलवा दो।''

डॉ. सा. ने झट से जवाब दिया, ''हां, हां, तुम्हारी नौकरी तो एकदम पक्की है, तुम जब चाहो ज्वाइन कर सकते हो। यहां कैंसर पेशेन्ट को तो प्राथमिकता है ही।''

अब मैं चुप। मुद्धई सुस्त, गवाह चुस्त।

इस महाराष्ट्रियन तुनकमिजाज मरीज से भी मेरी मित्रता थी। ऑपरेशन करके इसकी मूत्रनलिका काट दी गई थी। इस मरीज के एक अच्छी पत्नी तथा दो बच्चे थे। पत्नी कुछ दिन सेवा के बाद पति से तंग आ गई और एक दिन सुनने में आया कि वह पति को छोड़ कर चली गई है।

एक बार नेपाल से प्रशिक्षु डॉक्टर्स टाटा मेमोरियल अस्पताल की सैर करने (विजिट) पर आये। दस–बारह करीब होगे। हमारे विभाग के दोनों प्रमुख डॉक्टर्स मि. एम. आर. कामट एवं जे. एन. कुलकर्णी भी उनके साथ थे। सभी भर्ती मरीजों के पास जाते। हमारे डॉ. उन्हें पूरा विवरण बताते फिर प्रशिक्षु डाक्टर्स सब बारी–बारी से मरीज को देखते। मेरे को यह सब प्रक्रिया बड़ी बुरी सी लगी। उनके लौटने से पूर्व ही मैंने सबको सुनाते हुये कमेंट किया,

''नेपाली डाक्टर चिड़ियाघर की सैर करने आये हैं।''

डॉ. कुलकर्णी की मुस्कराहट हम लोगों से छिप नहीं सकी। नेपाली दल तो मेरी हिन्दी को क्या समझा होगा?

मेरे अस्पताल में भर्ती के दौरान मेरी मां अकेली बस से धर्मशाला व अस्पताल आने जाने लगी थी। मां हाड़ौती के अलावा कोई अन्य भाषा नहीं जानती थी। मैंने कई बार उसे अकेले जाने से मना किया। मैने सुझाव भी दिया कि मां की जेब में अस्पताल व सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट का पता लिख कर रख दें पर मां को जबरदस्त आत्मविश्वास था। एक दिन मेरा डर सच हो गया। मां बेस्ट की बस में बैठ अस्पताल से सर्वोदय भवन जा रही थी। गल्ती से वह बस के निर्धारित स्टाप से एक स्टॉप पहले ही उतर गई। नई जगह देख वह घबरा गई। कई बार इधर–उधर चक्कर लगाये पर रास्ता नहीं मिला। रुंआंसी हो उसने एक महिला से पूछा जो मां की बात को बिल्कुल नहीं समझ पाई पर बंबई की इंसानियत ने मां को खोने से बचा लिया। वह मराठी महिला मां को एक पान वाले के पास ले गई। स्मरण रहे बंबई

में सारे पानवाले उत्तरप्रदेश के हिन्दी भाषी हैं। मां को घर्मशाला या अस्पताल का नाम भी मालूम नहीं था। बस वह तो यही समझा पाई कि उसका बेटा टाटा अस्पताल में भर्ती है और वे उसी अस्पताल की धर्मशाला में रुके हुये हैं। इस सूचना पर ही बंबई वासियों ने मां को सर्वोदय अस्पताल पहुंचा दिया, चाहे उन्हें इसके लिये अपना एक घंटा खर्च करना पड़ा हो।

बहुत सुना था अंधेरों की बस्ती है यह।
हमें तो हर कदम पर यहां उजाले मिले।

हम पेशेन्ट लोगों को चाय, नाश्ता, खाना अस्पताल का ही मिलता था। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी– दो रसोईघरवाले, दो सफाईवाले, दो लिफ्टमेन भी हमारे खाने में से बचाकर खाते थे। एक दिन मैंने जानबूझकर दो रोटी और मांग ली। न मिलने पर नर्स से शिकायत कर दी। बची हुई रोटियां तो कर्मचारी खा ही चुके थे। नर्स के कहने पर एक कर्मचारी चावल की उसके द्धारा खाने के लिये सब्जी आदि डालकर तैयार की गई प्लेट मुझे देने आये। मैंने उसे डांटकर भगा दिया। खाने की तो कोई खास बात नहीं थी। मेरा मकसद प्रशासन के ध्यान में जो बात लाना था वह पूरा हो गया। पूरे अस्पताल में हंगामा सा मचा तथा सभी मरीजों को ज्ञात हो गया कि उनके खाने में से चोरी हो रही है। दो दिन बाद एक मद्रासी अटैन्डैन्ट ने सारे अस्पताल के कर्मचारियों को खाने के मामले में बुरी तरह लताड़ा।

''तुम हरामखोर मरीजों का खाना खा जाते हो, तुम सब को कैंसर होगा और यहीं आकर मरोगे।'' मैंने भी चुटुकला जोड़ा, ''इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। तब हम यहां चपरासी बनेगें और तुम्हारा खाना खायेंगे।''

15 फरवरी 1982 सोमवार से ऑपरेशन की तारीख 8–3–1982 सोमवार तक मैं हट्टा–कट्टा एकदम तंदुरुस्त अस्पताल में पड़ा–पड़ा पलंग तथा रोटियां तोड़ता रहा। शारीरिक तथा मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होते हुये भी मैं पेशेन्ट कहलाता था। कई साथी पेशेन्ट्स को मैं नहीं भूल पाऊंगा।

एक मेरी सी ही उम्र का तूरकर। महाराष्ट्रीयन, उसके पिताजी महज दो बीघा जमीन के मा. लिक। सुपारी तथा नारियल पैदा करके परिवार का पालन कर रहे थे। मेरे जैसा ही रोग व उपचार, हायर सैकेण्डरी तक पढ़ा हुआ और अभी तक मेरी तरह कुंवारा। मैंने इससे मराठी भाषा सीखने का प्रयास किया था पर महाराष्ट्र में कई तरह की मराठी चलती है अतः मैं भ्रमित हो गया तथा नहीं सीख पाया। एक साल बाद भी मुझे टाटा मेमोरियल में मिला था। हम दोनों चेकअप पर आये थे।

दूसरा अमृतसर पंजाब का व्यापारी पुत्र–सतीश महाजन, हमउम्र, हंसमुख, आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत समृद्ध। स्नातक, विवाहित, पेट के कैंसर से ग्रस्त। पिताजी श्री दुर्गालालजी एवं श्वसुरजी के साथ इलाज करवाने आया था। पता– महाजन हार्डवेयर स्टोर, लौहगढ़ (इनसाइड) अमृतसर (पंजाब)। मेरी तरह ही कैंसरविजीत। काफी वर्षों तक पत्र व्यवहार चला। मैं ता. 11–9–97 को अमृतसर गया तो इसने मेरा बहुत सम्मान किया।

तीसरा बुजुर्ग मि. पाटिल। मील मजदूर, निर्धन, इकलौती जवान लड़की का पिता। बेटी ही घर व अस्पताल संभाल रही थी। मुझे अकेले ताश खेलना इसने ही सिखाया। मरीजों के लिये उपयुक्त ताश का खेल अस्पताल में बहुत प्रचलित था।

एक ओर अल्पायु, हम उम्र, हरियाणा निवासी–अग्रवाल, दिल्ली के किसी अस्पताल से रैफर करके भेजा गया। ब्लड कैंसर का मरीज। पहले दिन नाश्ते में अंडा खा लिया और बहुत उल्टियां की। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। अग्रवाल होते हुये, सब रिश्तेदारों के सामने अंडा खाया। मैंने पूछा ही, ''क्या अंडा खाते हो?'' उसने कहा था, ''कभी–कभी।'' मुझे आश्चर्य इसलिये था कि हमारे इलाके में अग्रवाल समाज में अंडा खाना अच्छा नहीं समझा जाता था। कुछ बिगड़ैल खाते भी थे तो चोरी छुपे। भर्ती होने के चौथे दिन ही उसकी मृत्यु हो गई, हमारी आंखों के सामने।

मेरे भर्ती होने से पूर्व से ही यहां एक बुजुर्ग भर्ती थे। उन्हें सब पंडितजी कहते थे। अक्सर चपरासी व नर्सें उन्हें चिढ़ाने के लिये पूछते, ''पंडितजी अंडे तो दो चल जायेंगे न? वे भी मेरी तरह शाक. ाहारी थे तथा अंत तक बने रहे। अंत तक इसलिये लिख रहा हूं कि तीसरी बार भर्ती होने पर डॉ. ने यह कह कर उन्हें घर भेज दिया था कि अब कोई इलाज नहीं है। उनके साथ उनकी पत्नी थी। उसे समझाया गया कि यहां से जिंदा ले जाना बहुत आसान है और मुर्दा ले जाना बहुत मुश्किल।

यहां नौवें माले पर सप्ताह में दो–तीन मौतें होती रहती थी। आखिर भर्ती भी तो चालीस रहते थे। कुछ लोगों से लगाव हो जाता है। सतीश महाजन के पिताजी दुर्गालालजी महाजन भी मेरी तरह मिलनसार थे। बंबई के ही एक पेशेन्ट से उन्हें लगाव हो गया और दुर्भाग्य से वह मर गया। एक दिन दुर्गालालजी मुझ से बोले कि आओ मांजरेकरजी के यहां बैठ आते हैं। मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने बताया,

''उसके चार लड़कियां ही हैं, मेरा अच्छा प्रेम हो गया है। वह मर गया तो अपना फर्ज बनता है शोक प्रकट करने जाने का।''

''पर चाचाजी मैं तो यहाँ भर्ती हूं, बाहर कैसे जाऊंगा?''

''तुम मेरे साथ चलोगे। मैं नर्स से इजाजत ले लूंगा। तुम बंबई के सब रास्ते जानते हो। पता मेरे पास है। तुम्हारे चलने से मुझे बहुत सहूलियत रहेगी।''

कैदी तो बाहर निकलने को सदा ही आतुर रहते ही हैं। मेरे घर वालों को खबर कर, अस्पताल के कपड़े उतार, अपने कपड़े पहन उनके साथ चल दिया। चाचाजी ने तो वास्तव में अच्छा सप्पा जमा रखा है। नर्स, लिफ्टमैन, वाचमैन सबसे इजाजत मिल गई। मांजरेकर का मकान प्रिंस हॉटल के पास नरीमन प्वाइंट पर था। अस्पताल से बहुत दूर। मैं बेस्ट की बस में बहुत कम खर्चे एवं समय में उन्हें वहां ले गया। मकान ढूंढने के लिये मुझे कई जगह पूछताछ भी करनी पड़ी। मैं बंबईया हिन्दी का अच्छा जानकार हो चुका था अतः यह सब काम मेरे लिये बहुत आसान था। एक पुरानी चार मंजिली इमारत में एक मात्र कमरे के फ्लैट में मां–बाप के साथ चार लड़कियां रह रही थी। रात्रि में सोने के लिये टांडें बनाई हुई थी जिन्हें दिन में नीचे डाल लिया जाता था। बिल्कुल रेल के स्लीपर क्लॉस जैसे। मृतक की पत्नी की महाजनजी ने अस्पताल में भी बहुत मदद की थी। वे चाचाजी की अहसानमंद थी।

''दो बच्चियां नौकरी कर रही हैं। कुछ पेंशन आ जाती है। मकान तीस साल से पंद्रह रु. मासिक किराये में चल रहा है। हो जायेगी किसी तरह गुजर–बसर।''

विधवा मां ने सुबकते हुये बताया। करीब आध घंटा संवेदना प्रकट कर हम आ गये। चाचाजी ने और आर्थिक मदद देने की पेशकश भी की जिसे उस स्वाभिमाननी ने सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। हमें वापस अस्पताल पहुंचने में चार घंटे लग गये। अस्पताल आने के बाद पता लगा कि आज तो यहां सुनीलदत. तजी आये थे। सभी मरीज नीचे हॉल में इकठ्ठे हुये थे। बच्चों को खिलौने बांटे गये तथा जादू का खेल दिखाया गया था। अब मेरी किस्मत में सुनीलदत्त को देखना नहीं लिखा था।

मेरे पहले तूरकर का ऑपरेशन हुआ था। छुट्टी भी उसे ही पहले मिली। मैं उसके बाद ऑपरेटेड हुआ जो अभी तक जिंदा हूं। सतीश महाजन को सिर्फ दवाइयों से ही ठीक करके घर भेज दिया गया था। वह भी बच गया। पाटिल का ऑपरेशन मेरे बाद हुआ था। मुझे उसकी विशेष चिंता रही। मेरे अस्पताल छोड़ने बल्कि गांव आने तक वह ठीक नहीं हुआ था। वृद्धावस्था के कारण उसकी रिकवरी धीरे हो रही थी। उसकी बेटी के अलावा ओर कोई उससे मिलने भी नहीं आते थे। 16 अप्रेल 1982 को जब मैं दुबारा चेकअप कराने बंबई टाटा अस्पताल में गया तो फुर्सत निकाल वैसे ही अपने वार्ड में घूमने चला गया। ड्यूटी नर्स पुरानी ही थी, मैंने पाटिल के बारे में जानकारी चाही तो वो कुछ नहीं बोली। मैंने पेशैन्ट रजिस्टर उठाया और पन्ने पलटे। पाटिल का पन्ना लाल स्याही से कटा हुआ था तथा लिखा था, ''डैड''। मैं सन्न रह गया। मेरे यहां से जाने तक तो ऐसी कोई उम्मीद नहीं थी। वार्ड में पूछताछ से मालूम हुआ कि उसकी बेटी ने यहां अस्पताल के लिफ्टमैन से दोस्ती कर ली थी। बाप के मना करने पर बेटी ने उल्टा जवाब दे दिया जिसे बाप (पाटिल) बर्दाश्त नहीं कर पाया। उसने अपने दोनों हाथों से अपना ऑपरेट किया हुआ पेट फाड़ कर आत्महत्या कर ली। कैसा क्रूर मजाक रहा कुदरत का?

कई दिनों तक अस्पताल में पड़ा–पड़ा बोर हो गया। एक दिन सोचा, चलो बंबई घूम आऊँ। समय गुजारने के लिये अपने मित्रों रिश्तेदारों को पत्र लिखता रहता था। चार पत्र हाथ में लिये और अपने असली कपड़े पहन लिफ्ट से नीचे उतरा। वाचमैन की निगाह से नहीं बच सका।

''आप तो पेशेन्ट हैं ना?''

''हाँ''

''आप बाहर नहीं जा सकते।''

''मैं तो चिट्ठियां डालने जा रहा हूं।''

''नहीं पत्र हम डाल देंगे, हमारी ड्यूटी है।''

मैंने कुछ बहस भी की पर बात नहीं बनी। पत्र वाचमैन को देकर वापस आ गया। पूछताछ करने पर पता लगा, कई पेशेन्ट भाग चुके हैं, दो–चार आत्महत्या भी कर चुके हैं। वाचमैन की नौकरी पर आंच आती है।

मैंने अस्पताल से काफी पत्र लिखे। मुझे गौतमजी का जवाबी पत्र अस्पताल में ही प्राप्त हो गया। मेरे पत्रों में अपना दुखड़ा ज्यादा होता था। 'नाव का कुछ सामान बाहर फेंककर नाव को डूबने से बचाने का प्रयास कर रहा हूं' यह वाक्य मैं अपने करीब सभी पत्रों में लिखता था। गौतमजी ने मुझे पत्र के द्धारा दो मंत्र जपने का सुझाव दिया था जिनसे मनुष्य यमराज को अपने से दूर रख सकता है। मैंने तुरंत प्रभाव से प्रातःकाल उन दोनों मंत्रों का जाप शुरु कर दिया। उनमें पहला है गायत्री मंत्र तथा दूसरा है सप्त चिरंजीव स्मरण। इसके साथ धीरे–धीरे कुछ और मंत्र, प्रार्थनायें मेरी प्रातः की प्रार्थना में जुड़ गये। प्राणायाम्, ध्यान, समाधि आदि का भी मैंने अस्पताल में पड़े–पड़े अभ्यास किया। गीता मेरे जीवन में यहीं साकार हुई। एक रात कोई बारह बजे तक मुझे नींद नहीं आई। दिन में ज्यादा सो लिया था। करीब पांच वर्ष पूर्व गांव में मैंने भूतेश्वर महादेव मंदिर पर अहमदाबाद से पधारे हुये एक योगी महात्माजी से आसन सीखे थे। हम करीब 25 प्रशिक्षु नियमित स्नान–ध्यान करने वहां जाते थे। मुझे वहां जाने की प्रेरणा मेरे छोटे चाचाजी से मिली थी। मैंने वहां सीखा शव आसन पूरे मनोयोग से अस्पताल के बैड पर लेटे–लेटे लगाया। ध्यान को श्वांसों के साथ केन्द्रित किया। हर सांस छोड़ने के साथ मेरा शरीर हल्का होता गया। इतना हल्का कि मैं हवा में उड़ने लगा। मैं अस्पताल की बंद खिड़की के कांच में से बाहर निकल कर उड़ता हुआ चौदह मंजिले अस्पताल की छत तक पहुंच गया। बिजली की रोशनी से चमचमाता बंबई शहर बहुत खूबसूरत लग रहा था। अचानक मेरे दिमाग में भय घुस गया। गिरकर घायल होने या मरने का।

साथ ही यह भी खयाल आया कि ज्यादा ऊपर जाने के बाद शायद मैं नीचे वापस नहीं आ पाऊँ। डर के कारण मैं वापस नीचे अपने बिस्तर पर आ गया। मैं काफी प्रयास करने के बाद मेरे हाथ पैर हिला पाया। आँखें खोलने में भी मुझे विशेष जोर लगाना पड़ा। शरीर शिथिल तथा थका हुआ लगा। यह मेरे जीवन का इकलौता अलौकिक अनुभव है। शायद मुझे समाधी लग गई हो। मैं चिंताग्रस्त भी हुआ। उसके बाद मुझे कोई घंटाभर नींद नहीं आई। यदि मैं वापस नहीं आता तो क्या होता? अखबर में खबर छपती टाटा अस्पताल का मरीज डर के मारे मर गया। यह घटना मार्च 1982 के प्रथम सप्ताह की है जब मेरा ऑपरेशन होने की तैयारियां चल रही थी।

मेरा ऑपरेशन दो बार टाला गया था। पहली बार 1–3 को तथा दूसरी बार 5–3–82 को। ऑपरेशन से दो दिन पूर्व पेट साफ करने की गोली दी जाती तथा खाना बंद कर दिया जाता। इसी के साथ नींद की गोलियां भी दी जाती थी। पहली बार मैंने नर्स से मना कर दिया,

''मुझे कोई टेंशन नहीं है, बढ़िया नींद आती है, मैं यह गोली नहीं खाऊँगा।''

नर्स को मुझे वह गोली खिलाने के लिये मेरे अस्पताल में भर्ती मित्रों का सहारा लेना पड़ा। बाद में कई लोगों को तनाव से बचाने के लिये मैं चुपचाप दवाइयाँ खाने लगा। दो दिन की तपस्या के बाद फोन सुनकर जब नर्स कहती,

''मि. गुप्त, खाना खा लो, तुम्हारा ऑपरेशन कैंसिल हो गया है''

तो बहुत तकलीफ होती। आखिर 8 मार्च 1982 सोमवार को मेरा नं. आ ही गया। उस दिन फोन करके बंबई स्थित सी.ए. अध्ययनरत मेरे चाचा को बुलवा लिया था। वे दिनभर छुट्टी ले मेरे पास अस्पताल में रहे। मित्र विजय दूसरे दिन मिलने आया था। मुझे पता नहीं मेरे ऑपरेशन में खून की जरूरत पड़ी या नहीं, यदि जरूरत पड़ी तो उसकी व्यवस्था कहां से हुई। दो–तीन दिन तो मुझे होशोहवास ही नहीं था। चौथे दिन एक दर्दनाक घटना घटी। मेरे ग्लूकोज चढ़ाने वाली नलची किसी तरह से निकल गई। हाथ में से खून बहा और आठ इंच मोटे रुई के गदेले वाले बिस्तर पर छः इंच व्यास का खून का घेरा बन गया। वह तो दिन का समय था जो किसी की नजर पड़ गई और नलची वापस सही करके लगाई गई अन्यथा ... .. . ।

पूरे अस्पताल में हंगामा मच गया था। इसे कहते हैं गरीबी और आटा गीला।

ऑपरेशन के बाद का एक ओर वाकया लिख दूं। डॉ. सा. ने ऑपरेशन के छठे दिन मुझे देखने के बाद कहा,

''गुप्त, अब तुम खूब खाओ पिओ। जल्दी ठीक हो जाओगे।''

मैंने पूछा, क्या रोटी खा लूं?''

डॉ. सा. ने स्वीकृति दी। इसके बाद मेरी मां ने नर्स से पूछा,

''क्या तेल खटाई भी दे दोगे।''

नर्स ने कहा, '' अब घी मिलता ही कहां है, जो मिलेगा वही तो पेशेन्ट को खिलाना पड़ेगा।''

पुराने विचारों के हिसाब से रोगी को तेल–खटाई से परहेज करने की सलाह दी जाती थी। मेरी मां का मन नहीं मान रहा था पर मैं भी खाने को उतावला था और चिकित्सकों की तो राय मिल ही गई थी। ऑपरेशन के समय लगाई गई कई नलचियां जो मेरे शरीर को पोषण देने या बेकार पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का काम कर रही थी अब तक हटाई जा चुकी थी। पेट का पानी मुंह के द्धारा निकालने के लिये एक नली मुंह के रास्ते पेट तक पहुंचाई गई थी, इस नली का दूसरा सिरा एक बोतल में डाला गया था। इससे मरीज को उल्टी नहीं होती है। पेशाब के लिये पृथक नली लगी थी। इसके अतिरिक्त पेट में एक इंच करीब छेद करके मल निकलने का रास्ता बनाया गया था। इस तरह का सिस्टम पूर्व में मैंने कभी नहीं देखा था। ऑपरेशन के पहले चार दिन मुझे दिये गये पदार्थ तथा मेरे शरीर से उत्सर्जित पदार्थों का मापन कर पूरा लेखाजोखा रखा गया था। ऑपरेशन से आने के बाद मेरा पलंग बदल दिया गया था क्योंकि एक नं. बेड का ऑक्सीजन सिस्टम सही काम नहीं कर रहा था। मुझे ग्लकोज चढ़ाने के लिये मेरी बांह में एक प्लास्टिक की नलची कोई आठ इंची अंदर घुसा दी गई थी। अमूमन इस कार्य हेतु नस में इंजेक्शन लगाया जाता है। यह विकसित तरीका मैंने पहली बार देखा। यह नली अस्पताल से छुट्टी करते समय ही खोली गई। ऑपरेट होने के दो दिन बाद मुंह की तथा पेशाब की नली हटा दी गई थी। ग्लूकोज शायद पांच दिन चढ़ा। पेट से मल निकालने का सिस्टम आठ दिन बाद हटाया गया। ऑक्सीजन एवं खून मेरे चढ़ा या नहीं मुझे पता नहीं। डॉ. सा. की सलाह मान मैने उस दिन शाम को एक पूरी थाली खाना खा लिया। दो चपाती, चावल तथा दो सब्जी। रात्रि को नौ बजे करीब डॉक्टर्स आये।

''क्या खाया?''

मैंने सब कुछ गिना दिया।

''शाबास, ऐसे ही मस्त रहो।''

डॉ. मेरे हौसले पर प्रसन्न हो चले गये। कोई आठ दिन बाद पेट में भारी खाना गया था। वह भी उस पेट में जो ऊपर से नीचे तक पूरा काट दिया गया था। जिसे वापस पैक करने के लिये तीन स्तरों पर कोई पचास टांके लगाये गये थे। रात्रि साढ़े नौ बजे से पेट दर्द शुरु हुआ। मैं कराहने लगा तो छोटे भाई

वरुण ने नर्स को बुलवाया। मैंने कहा,

''मुझे तो खाना खाने के कारण पेटदर्द लगता है, डॉ. सा. को बुलवाओ।''

नर्स ने डॉ. को बुलवाने जैसी स्थिति नहीं मानी। मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने नींद का इंजेक्शन लगाने की प्रार्थना की पर नर्स ने वह भी स्वीकार नहीं की। नर्स ने मुझे 'कुछ नहीं होगा, थोड़ी देर में मिट जायेगा' जैसे आश्वासन देकर सोने की राय दी।

कोई एक घंटा और मैंने दर्द सहते हुये बिताया फिर मेरे मुंह से कराहने की आवाजें निकलने लगी। इसी बीच छोटे भाई व मां को भी नींद लग गई। नर्स बहुत सेवाभावी थी, वे बिना बुलाये मेरे पास आई। मैंने उसे अपनी तकलीफ बताते हुये भईया को जगा देने का अनुरोध किया। नर्स ने कहा,

''दर्द है तो इसमें भईया क्या करेगा? उसे तो सोने दो, जो कहना हो मुझ से कहो।''

मैंने कहा, ''मेरे पेट व पीठ में बहुत दर्द है मुझे लगता है खड़ा होने व कुछ घूमने से आराम मिलेगा।'' ऑपरेशन के बाद अभी तक मुझे खड़ा नहीं किया गया था। लेटे-लेटे परेशान होने पर चाबी से गिरारी घुमाकर पलंग को सिर की तरफ से ऊंचा कर मैं बैठ अवश्य जाता था। पेट में से मल निकालने वाली थैली अभी मेरे लगी हुई थी। धन्य है वह सेवाभावी नर्स, उसने बिना कुछ सोचे मुझे एक हाथ से सहारा दे पहले पलंग पर बिठा दिया फिर मेरे लगी गंदी थैली पलंग से खोली। मुझ से पूछा,

''क्या खड़े होना चाहते हो?''

मेरे द्धारा स्वीकृति देने पर उसने एक हाथ से थैली पकड़ी और दूसरे हाथ से मुझे सहारा दे, फर्श पर खड़ा कर दिया। मैंने हल्की सी अंगड़ाई ली और कुछ टहलने की अनुमति मांगी। नर्स एक हाथ में थैली और दूसरे हाथ से मेरी बांह थामें मेरे साथ आगे बढ़ी। दस पंद्रह कदम चलने पर मेरा पीठ व पेट दर्द कम हो गया। मैं वापस बिस्तर पर आ कर सो गया। पंद्रह कदम टहलने में मुझे उस रात हजारों रु. की दवा खाने से ज्यादा राहत तथा हिम्मत मिली। यह सब संभव हुआ उस देवी की कृपा से। मेरी मां व भाई सहित पूरा वार्ड सो रहा था। उस वास्तविक सिस्टर (बहिन) ने किसी को तकलीफ देना भी उचित नहीं समझा। सब वैसे का वैसा सेटिंग कर सिस्टर मेरे पास स्टूल पर बैठ गई। मेरे से इस तरह बातें करने लगी जैसे मां बच्चे के पास बैठी हो। वे बोली,

''तुम बहुत हिम्मत वाले हो गुप्त, तुम बहुत जल्दी ठीक हो जाओगे। अब तुम सोने की कोशिश करो, मैं तुम्हारे पास बैठी हूं। मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूं।'' इसके साथ ही वे मेरे सिर पर भी हाथ फेरने लगी। धीरे-धीरे मैं सामान्य अवस्था में आया और मुझे बातें करते-करते कब नींद आ गई पता नहीं। सुबह मैं उस देवी के प्रति बहुत कृतज्ञ था। वे मूल रूप से बिहार की थी तथा इस अस्पताल में तीन साल से कार्यरत हैं।

17 मार्च, 1982 तक मेरे सारे टांके हटा दिये गये थे। अन्य रोगियों के मुकाबले मैं काफी अच्छी स्थिति में था। मेरे पेट में से निकाले गये सभी नमूनों की जांच रिपोर्ट्स आ गई थी। कहीं भी कैंसर फैलने के लक्षण नहीं दिखाई दिये थे। डॉ. के लिये यह बहुत खुशी की बात थी। मेरा ध्यान इससे हट कर मेरा खोया अंग वापस लगाने पर केन्द्रित था। मैं अक्सर डॉ. से इसकी चर्चा करता और वे मुझे बहला देते। अंत में डॉ. ने सच्चाई बता ही दी। कोई उपाय नहीं है। विवाह करने की तो सोचना भी मत। मुझे ज्यादा दुःख भी नहीं हुआ क्योंकि अब तक सब झटके सहने की आदत पड़ चुकी थी। इस पूरी अवधि में मैं अपना अंग बचाना चाहता था तथा डॉ. सिर्फ मुझे बचाना चाहते थे। ता. 19-3-1982 शुक्रवार को मुझे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। छुट्टी देने से पूर्व डॉ. कुलकर्णी जी ने मेरे से पूछा,

''गुप्त, क्या तुम हमारे बुलाने पर बाद में चेकअप कराने यहां आओगे?''

मैंने जवाब दिया था, ''जिंदा रहना होगा तो आऊँगा ही।''

मेरा जवाब बहुत भावनात्मक था जिससे माहौल गमगीन हो गया।

अगले दिन हम देहरादून एक्सप्रेस ट्रेन में बैठ घर के लिये रवाना हो गये। वापसी में और घर आने के बाद मैंने घोर लापरवाही बरती। ट्रेन में मेरे लिये ऊपर की सीट रोकी गई थी जिस पर मैं अपने दोनों हाथों के सहारे उचक कर जा बैठा था। घर आने के दो तीन दिन बाद ही मैंने साइकिल चलाना शुरु कर दिया। व्यवसायिक कार्य भी संभाल लिये। मैंने अपने आप को बीमार माना ही नहीं। कुछ दिनों बाद मेरे पेट में लगे बीच के टांके पक गये उनमें से मवाद आने लगा। मैने गांव से बंबई अस्पताल के पते पर डॉ. को पोस्टकार्ड लिख कर सूचना दी एवं सलाह मांगी। वापसी जवाब का इंतजार किया जाना संभव नहीं था। मैं छोटे चाचाजी के लड़के मेरे भाई गोपाललाल को लेकर अस्पताल गया। उसी के पास तब तक हमारे परिवार में मोटर साइकिल थी और मैंने डर के मारे साइकिल चलाना बंद कर दिया था। अस्पताल के गेट पर ही सर्जन डॉ. अर्जुनसिंह जी राजावत मिले। उन्हें मेरा इतिहास पता था। मुझे जिंदा व स्वस्थ देखकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। मैंने उन्हें अपनी समस्या बताई तो उन्होंने इतने बड़े अस्पताल के टांके पकने पर क्षोभ मिश्रित आश्चर्य प्रकट किया। गोपाल मेरे साथ पट्टी बांधने वाले कक्ष (ड्रेसिंग रुम) में चला गया। ज्योंहि डॉ. ने मेरा घाव साफ किया, खून व मवाद देखकर गोपाल को चक्कर आ गये। वहां उपस्थित अन्य लोगों ने गोपाल को संभाला एवं बाहर लाकर बैंच पर लिटाया। मेरी पट्टी होने के बाद जब मुझे इस घटना का पता लगा तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। इतना सा खून देखकर बेहोश,

और गर जिंदगी में मैंने जो देखा उसे देख ले तो क्या हो? खैर अगली बार आठ दिनों तक मैं उसको ले जाये बगैर पट्टी करवाता रहा एवं ठीक हुआ।

मुझे एक महिने बाद वापस जांच के लिये टाटा मेमोरियल बंबई बुलवाया गया था। मैं किसी अटैन्डेन्ट को लेकर गया और ता. 20-4-1982 मंगलवार को अस्पताल में जाकर डॉ. कुलकर्णी जी को दिखाया। डॉ. कुलकर्णी मेरे पोस्टकार्ड का उल्लेख करना नहीं भूले और मैं उन्हें पत्र का जवाब न देने पर उपालंभ देना नहीं भूला। मेरे टांके मधु शेट्टी नामक डॉ. सा. ने लगाये थे। डॉ. कुलकर्णी ने हंसते हुये उनसे जवाब मांगा। थोड़ी देर उन्होंने आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण करते हुये चुहलबाजी की और अंत में मुझे निर्णय सुनाया कि धागे ही खराब आ गये थे। सब सही पाया गया और मुझे तीन माह बाद की तारीख दे दी गई। 13-7-1982 मंगलवार को मैं पुनः बंबई टाटा अस्पताल चेकअप के लिये पहुंचा। मैंने तो कोई शिकायत नहीं की पर मेरे पेट के बिगड़े हुये आकार को डॉ. ने इंडिविजुल हर्निया करार दिया। यह आकार चीरे की लाइन में टांके पकने के कारण ही बिगड़ा था। मुझे खून की जांच लिख दी गई जिसमें फैक्टो प्रोटीन भी थी। ता. 16-7-82 को मुझे फैक्टो प्रोटीन की जांच रिपोर्ट लेने सातवीं मंजिल पर स्थित लेबोरेट्री में जाना पड़ा। इसी बीच मैं समय निकाल अपने नौवी मंजिल पर स्थित वार्ड में भी घूम आया। जांच रिपोर्ट्स में कोई खराबी नहीं आई और मुझे पुनः तीन माह बाद बुलवाया गया।

5-10-82 मंगलवार को मैं पुनः बंबई गया। मुझे इस बार बिना कोई जांच कराये छुट्टी दे दी गई। मेरा कोई इलाज दवा आदि भी नहीं चल रही है। मुझे इस बार आना अखरा। मैंने डा. सा. से विवाह करने के बारे में राय मांगी क्योंकि परिवार का बहुत दबाव था। डॉ. सा. ने मुझे लगभग डांटते हुये कम से कम पांच वर्ष तक विवाह के बारे में न सोचने की सलाह दी। दुबारा पुनः तीन माह बाद की तारीख दी गई पर मैं अपनी सुविधा से 1 मार्च, 1983 मंगलवार को अर्थात् लगभग पांच महिने बाद अस्पताल जांच हेतु पहुंचा। जाने में रेल में कन्सेसन टिकट नहीं मिल सका, अस्पताल में फाइल निकालने में अपेक्षाकृत थोड़ा ज्यादा समय लगा और हल्की सी डॉ. की झिड़की सुननी पड़ी। अन्य कोई तकलीफ नहीं आई। 4 मार्च-83 शुक्रवार को जांच रिपोर्ट सही पाये जाने पर पुनः तीन माह बाद की तारीख दे दी गई। मैं 26-7-1983 को अपनी सुविधानुसार ही गया। इस बार एक्सरे भी करवाया गया। पुनः तीन माह की ही तारीख दी गई पर मैं 6-12-83 को गया। इस बार से मुझे छः माह की तारीख दी जाने लगी। एक्सरे व खून की सारी जांचे भी की जाने लगी। अगली बार मैं 26-6-84 को बंबई गया। जांचे, रिपोर्ट्स ओ. के., 6 माह बाद आओ, यह क्रम दो साल चला। बाद में मैं कभी भी दी गई तारीख पर अस्पताल नहीं पहुंचा। शुरु में तो मैं पत्र लिख कर अस्पताल को मेरे आने की नई तारीख दे देता था बाद में यह सिलसिला भी बंद हो गया। कुलकर्णीजी के अतिरिक्त पुराने सब डॉक्टर्स जा चुके थे और कुलकर्णी जी को कष्ट देने लायक अब मेरा केस रहा भी नहीं था। नये डॉ. फाइल पर पुराने नोट्स देखकर खानापूर्ति कर लेते थे। उसी समय सोनोग्राफी नामक नई तकनीक का आविष्कार हुआ। एक बार डॉ. ने मुझे सोना. ग्राफी लिख दी। अस्पताल में सोनोग्राफी में नम्बर आने में काफी दिन लगते थे तथा बाजार में पांच सौ रुपये। मैं डॉ. के पास निवेदन करने गया कि इस जांच के बिना ही काम चला लें, वैसे भी इतने सालों में किसी ने यह जांच नहीं लिखी थी। डॉ. ने मेरे प्वाइंट से ही मुझे जवाब दिया,

''अब दो चार साल में एक जांच बाहर भी करा लो तो क्या हर्ज है, नई तकनीक आई है तो उसका भी फायदा उठाना चाहिये।'' मैंने बाहर जांच करवाकर उन्हें फोटो दिखाये जो सब सही पाये गये। इस प्रक्रिया में हमें उस वक्त बंबई पूरे एक हप्ताह रुकना पड़ा। अगली बार जब मैं साल-छः महिने बाद पुनः जांच करवाने गया तो डॉ. बदल चुके थे। नये डॉ. ने सोनोग्राफी सहित सारी जांचे लिख दी। मैंने यह कहते हुये प्रतिवाद किया कि सोनोग्राफी तो तीन साल में एक बार करवानी है। डॉ. को मेरी यह बात बुरी लगी और वे बिना सोनोग्राफी रिपोर्ट देखे मुझे छुट्टी देने को तैयार नहीं हुये। बाद में ओ. पी. डीं. वाले ने भी मुझे बिना डॉ. की इजाजत के आगामी तारीख देने या फाइल जमा करने से मना कर दिया। मजबूरन मुझे फाइल ओ. पी. डी. में चुपके से रख कर आनी पड़ी। मुझे पूर्ण विश्वास था कि फाइल सही जगह पहुंच जायेगी और तीन-चार साल बाद मुझे इसका प्रमाण भी मिल गया। इसके बाद मैंने नियमित चेकअप पर जाना बंद कर दिया। दुर्भाग्य से मेरी चाचीजी को भी इस अस्पताल में स्तन कैंसर के इलाज के लिये लाना पड़ा। उनका रोगग्रस्त अंग निकाल दिया गया, वे अभी बिल्कुल ठीक हैं। वर्ष 2000 में मुझे मेरे अन्य चाचाजी के साथ पुनः इस अस्पताल में आना पड़ा। दो बार मुफ्त इलाज के दुखद अनुभवों से मैंने उन्हें प्राइवेट में ही इलाज कराने को प्रोत्साहित किया। आर्थिक दृष्टि से हम इसमें सक्षम भी थे। प्राइवेट इलाज में भी हमें इंतजार-कतार से मुक्ति नहीं मिली। केमोथेरैपी तो हमें जसलोक में ही करानी पड़ी थी। चाचाजी को चेस्ट कैंसर था जिसमें ऑपरेशन करके बीमार अंग को बाहर निकालना संभव नहीं था। लाखों रु. खर्च करने के बाद भी वे 17 महिने में दुनियां छोड़ चले गये।

चाचाजी के साथ पहली बार बंबई जाने के दौरान मैंने अपनी फाइल भी निकलवा ली। तब तक इस अस्पताल में आमूलचूल परिवर्तन आ चुका था। ओ.पी.डी. नये भवन में जा चुकी थी। फाइल मिलने में तो काफी देर हुई पर डॉ. ने मुझे झट से बुलवा लिया। आखिर मैं कोई दस-पंद्रह साल बाद आया था। पूछा,

''क्या तकलीफ है ?''

मैंने कहा, ''तकलीफ तो कुछ नहीं पर अब चाचाजी के साथ आया हूं तो आपसे मिलने में क्या हर्ज है ?''

''अब आपको बीस साल हो गये, जांच की कोई जरूरत नहीं है।''

मैंने अंग प्रत्यारोपण का पुराना राग छेड़ा, शायद विज्ञान की तरक्की के कारण कोई नया तरीका इजाद हुआ हो। पर इस बात पर डॉ. ने मुझे डांट दिया। उनकी यही राय थी कि और कुछ न सोच बच्चा गोद ले लूं। यह आदेश भी था कि इस अवसर पर होने वाली पार्टी में उन्हें भी अवश्य बुलाऊँ। उसके बाद मैने कभी अपनी फाइल टाटा मेमोरियल के रिकार्डरुम में से नहीं निकलवाई। समय–समय पर करवाई गई कुछ फोटोकॉपी अवश्य मेरे पास पड़ी है जो यदा कदा हाथ में आकर उन दिनों की याद दिलाती रहती हैं।

1982 अप्रैल से 1986 तक मैं कई लोगों को अपने अटैन्डेन्ट के रूप में अपने साथ ले जाकर बंबई दिखा लाया। मेरे मील पर मेरे साथ बैठ रहा भाई जब मेरे साथ गया तो हम अंधेरी (पूर्व) में हमारे ब्याईजी अग्रवाल सा. के यहां रुके थे। उस समय भी मुझे कुछ कारणवश पूरे हप्ते बंबई रहना पड़ा था। नवल के साथ बंबई जाने में मुझे रेल्वे रिजर्वेशन सहित कई बातों का आराम रहा था। मेरे स्टाफ के मज. दूर लक्ष्मीनारायण माली को भी मैं एक बार ले गया था तब हमें डीलक्स ट्रेन के जनरल कोच के टायलेट में बैठ कर आना पड़ा था। गौतमजी के साथ बंबई गया तब हम सर्वोदय अस्पताल ट्रस्ट की घाटकॉपर स्थित धर्मशाला में रुके थे। तब तक दादर की धर्मशाला किराये पर उठा दी गई थी। घाटकोपर से टाटा अस्पताल जाने आने के लिये सिर्फ पांच रु. प्रति व्यक्ति किराये में वाहन सुविधा भी उपलब्ध करवाई गई थी क्योंकि यहां से अस्पताल बहुत दूर है।

आज मेरे जेहन शिकायत गूंजती रहती है। टाटा मेमोरियल जैसे अस्पताल में दो तारीख को पहुंचे मरीज की गांठ 21 तारीख को अर्थात् 19 दिन बाद क्यों निकाली गई ? इस अवधी में ही गांठ का आकार चार गुना बढ़ गया। बीमारी आगे बढ़ने का बहुत ज्यादा खतरा था। क्या बीमारी पेट, सीने या गले तक फैलने के बाद मरीज को दीर्घ आयु देना संभव था ? यदि नहीं तो इस सारी कवायद का क्या अर्थ है ?

मेरा आज का सोच

यदि 27 नवम्बर 1981 को कोटा के ऋषभ अस्पताल के डॉ. से अपना अंग विशेष निकलवा देता और कोई इलाज नहीं करवाता तो भी शायद मेरी उम्र पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

। इति ।

और गणेश जी दूध पीने लगे

तारीख 21.9.95– मैं अपने छोटे भाई अशोक के साथ नृसिंह मंदिर के सामने से निकला। वहां भारी भीड़ लगी देख अशोक बोला,

'लगता है यहां भी गणेश जी दूध पी रहे हैं।'

पड़ौसी दुकानदार बोला, 'हां भाई साहब, आप भी पिला आओ।'

अशोक बोला, 'हम तो सब से बाद में पिलाएंगे।'

मैं भोजन करने के लिए घर आ गया व अशोक वापस बाजार चला गया शायद गणेशजी को दूध पीता देखने। मंदिर पर छोटे बड़े लड़के–लड़कियों की ज्यादा भीड़ थी।

मैं कल्पना करने लगा, कैसे पी रहे होंगे गणेशजी दूध? मैं गत 25 वर्षों से यहां रह रहा हूं और दिन में कम से कम चार बार इस मंदिर के सामने से निकलता हूं फिर भी मुझे यहां स्थित गणेशजी की जानकारी नहीं थी। मैंने सोचा, 'सूखी दीवार में सुराख होगा। चींटी या चूहे का। उसी में से दूध अंदर जा रहा होगा। या कड़क धूप में सूखी चूने पत्थर की दीवार कुछ दूध सोख रही होगी।' मेरी मां ने बताया,

''मेरे हाथ से तो गणेश जी ने दूध नहीं पीया। सारा नीचे बह गया। लोग क्या गपोड़े चला रहे हैं?''

मुझे मां की बात ठीक लगी। थोड़ी देर बाद छोटा भाई रामू आया। उसने बताया,

''चाचीजी के हाथ से गणेशजी ने तीन चम्मच दूध पीया। सीसवाली वाले रमेशजी की पत्नी के हाथ से आधा गिलास दूध पीया।''

मैंने पूछा, 'कहां पर?'

'तिलक बाल मन्दिर के गणेश जी ने।'

'अपने घर के गणेशजी को पिलाकर देखते हैं।' मैंने प्रयोग करना चाहा।

'घरों के गणेशजी नहीं पी रहे।' रामू ने बताया।

मैं दुकान आ गया। मुनीम अरविंद जैन ने उतावली से मेरे से पूछा,

'आप पिला आये गणपति को दूध?'

मैंने मौन विस्फारित नजरों से उसे घूरा।

'दिल्ली, जयपुर, भरतपुर, अलवर आदि सब जगह से फोन आये हैं, गणपति बप्पा दूध पी रहे हैं।'

मैंने कहा, 'अच्छा चलो अपने गणेशजी को पिलाते हैं।'

'कामी लगी मूर्तियां नहीं पी रही।'

उसने अपना ज्ञान बताया। इसके बाद अरविंद जानकारी देने लगा,

''ललित सटोरिये के कुँवर साहब का दिल्ली से फोन आया था कि हमारे यहां गणेश जी दूध पी रहे हैं, आपके यहां भी पी रहे हैं क्या? ललित ने जवाब दे दिया कि पी रहे हैं। जयपुर से पद्म जैन (अरविंद का चचेरा भाई) के साले का भी फोन आया था। मथुरा वालों के यहां उनके लड़के के ससुराल से फोन आया और उन्होंने भी ऐसी ही बात पूछी। बाजार में दूधवाले आधा गिलास दूध मुफ्त गणेशजी को पिलाने के लिए दे रहे है। चंद्रास्वामी (भारत के उच्च राजनैतिक पहुंच वाले महान् किन्तु विवादास्पद तांत्रिक) ने यह चमत्कार किया बताया।'

चमत्कार को नमस्कार। पूरे भारत में एक ही समय में एक ही बात फैलना चमत्कार ही तो है। तरह–तरह की अफवाहें दिनभर सुनने को मिली।

अफवाह नं. 1– दिनेश पंडित मेटाडोर वालों का भतीजा तिलक बाल मंदिर में पढ़ता है। आधी छुट्टी में वह नीचे उतर रहा था। सीढ़ियों पर गणेशजी प्रकट हुए और उन्होंने बच्चे से दूध मांगा और पास ही स्थित गणेशजी की मूर्ति में समा गए। विद्यार्थी ने यह बात टीचर से कही। टीचर ने गणेशजी को दूध पिलाया और अब वहां दूध पिलाने वालों की भारी भीड़ लगी हुई है।

अफवाह नं. 2– जगदीशजी की पत्नी प्रतिदिन खाकीबाबा मंदिर में गणेशजी पर दूध चढ़ाती है। आज दूध चढ़ाया तो दूध गाायब हो गया। अब वहां दूध चढाने वालों की भारी भीड़ लगी है। व्यवस्था बनाए रखने हेतु रेलिंग लगाई गई है।

अफवाह नं. 3– गोपाल राठौर (प्रसिद्ध व्यापारी) ने बताया कि किसी ने दूध की कटोरी में गणेशजी की प्रतिमा रख दी। दूध गायब हो गया। दो कटोरी दूध और डाला तो वह भी गणेशजी पी गए। गणपति बप्पा मोरिया।

अफवाह नं. 4– खाकीबाबा के गणेशजी दूध के साथ मोतीचूर के लड्डू भी खा रहे हैं। एक चम्मच दूध में एक दाना नुक्ती का रख कर चम्मच गणेशजी की सूंड से लगाने पर गणेशजी नुक्ती व दूध दोनों उदरस्थ कर जाते हैं।

अफवाह नं. 5– ताड़ के बालाजी सुबह गदा घुमा रहे थे। अभी भी उनकी मूर्ती हिल रही है।

अफवाह नं. 6– चौमुखा के गणेशजी तड़ातड़ देसी घी के लड्डू खा रहे हैं।

अफवाह नं. 7– बरड़ियों के बालाजी रोड पर पैदल चलते नजर आए।

अफवाह नं. 8– सात हजार वर्ष पूर्व भी ऐसी घटना हुई थी।

कौशल नागर (दुकान का कर्मचारी) अभी घर से खाना खाकर आया है। उसने बताया कि गोपाल कालोनी में दूध समाप्तप्रायः हो गया है तथा दुकानदारों ने दूध के भाव बहुत बढ़ा दिए हैं। उसका मकान मालिक भी घर के गणेशजी को दूध पिला रहा था। सुरेश चित्तौड़ा (तेल मिल वाले व मेरे मित्र) अभी टीवी पर समाचार देखकर आ रहे हैं। देश भर में गणपति बप्पा को दूध पिलाया जा रहा है। दिल्ली में दूध की भारी कमी। इंदौर गणपति की श्रद्धा में बंद। वैज्ञानिक विवेचन कर रहे हैं।

चित्तौड़ा जी ने बताया कि उनकी मां व पत्नी भी गणेशजी को दूध पिलाकर आये हैं। केसरी जी गर्ग (हमारे साझेदार) स्वयं भी हनुमानजी के मन्दिर में गणेशजी को दूध पिलाकर आये हैं।

मेरी चिंता 'देवी–देवता इसी तरह खाने–पीने लगे तो हमारा क्या होगा? वैसे भी देश में दूध का उत्पादन बहुत कम है।'

अशोक बंसल (अनुज) भी संभवतः दूध पिलाने गया होगा। एक घण्टा पहले उसका फोन आया था,

'दूध पीने वाली बात सत्य है क्या?'

'सत्य ही होगी।' मैंने कहा।

'तो अपने को भी दूध पिलाना चाहिये'।

'हाँ–हाँ, पिला आओ। षायद गणेषजी के पेट में अभी जगह बच रही हो।' फोन बन्द कर अनुज शायद दूध पिलाने चला गया क्योंकि किराना दुकान बंद हो चुकी है। रात नौ बजे अशोक से बात हुई। वह दूध पिलाने गया था पर प्रतिमाओं ने दूध नहीं पीया। लोग चम्मच टेढ़ी कर देते हैं और दूध नीचे बह जाता है।

पुरुषोत्तमजी गर्ग (67 वर्ष) रात सात बजे दुकान पर आए। वे सीधे बरड़ियों के बालाजी से आ रहे थे। वहां की बालाजी की मूर्ति आहिस्ता–आहिस्ता दाएं–बाएं हिलती हुई उन्होंने अपनी आखों से देखी है। वे अटरू रोड़ स्थित मंशापूर्ण गणेशजी मंदिर भी दो बार गए। वहां चार–पांच सौ आदमियों की भीड़ लगी है तथा गणेशजी दूध पी रहे हैं।

ज्योतिष से भी इस घटना को जोड़ दिया गया है। इस वर्ष एक नवरात्रा कम हो रहा है, उसमें भी नवमी तिथि क्षय हो रही है। साथ ही इस बार दीपावली पर पूर्ण सूर्यग्रहण होगा। ऐसा हजारों वर्षों में पहली बार हो रहा है। जनता विभिन्न आशंकाओं से ग्रस्त हो रही है।

अफवाह नंबर नौ– आरएसी के जवानों ने खाकीबाबा की बगीची में गणेशजी की प्रतिमा से रिस कर आने वाले दूध के पाइप के नीचे बाल्टी लगा रखी है। गणेशजी की कृपा से वे आज छककर दूध पीएंगे।

हरि बंसल (अनुज) उवाच– ''अंधविश्वास से अच्छा मनोरंजन हुआ। आज तीन अफवाहें तो मैंने जारी की।''

उपसंहार

रात्रि साढ़े सात बजे दूरदर्शन की हिन्दी समाचार सेवा एवं आठ बजे अंग्रेजी समाचारों में गणेशजी एवं महादेवजी के दूध पीने–पिलाने व दूध के भाव बढ़ने की जानकारी दी गई। दिल्ली–जयपुर के कई मंदिरों के फोटो दिखाए गए। जी टीवी के परख कार्यक्रम में भी इस घटना को परखा गया। सवाल भी उठाया गया कि ईश्वर भारत की जनता पर ही क्यों मेहरबान हुआ? जी टीवी की दस बजे वाली न्यूज में भारत के अतिरिक्त लंदन, हांगकांग, मानचेस्टर आदि नगरों में भी गणेशजी को दूध पिलाने के समाचार प्रसारित हुए। दूध पिलाने वाले श्रद्धालुओं एवं इस घटना को ढकोसला मानने वाले नास्तिकों(?) सभी से भेंटवार्ता दिखाई गई। वैज्ञानिक विवेचन हुआ। एक वैज्ञानिक ने कहा कि गीले पत्थर पर दूध भरी चम्मच लगाने पर साइफन सिद्धांत के अनुसार चम्मच का दूध नीचे रिस जाता है। सफेद संगमरमर, अंधेरा, भीड़–भड़क्का और सबसे बढकर अंधविश्वास के कारण श्रद्धालु बहते हुए दूध को नहीं देख पाता।

तारीख 22/09/95 शुक्रवार प्रातः राजस्थान पत्रिका समाचार पत्र घर पर आया। उसमें हाड़ौती के सभी कस्बों में गणेशजी को दूध पिलाए जाने संबंधी समाचार थे। जयपुर में दूध पिलाने के लिए मची रेलमपेल का समाचार मय फोटो के छपा था। उपमुख्यमंत्री हरिशंकर भाभडा, उद्योग सचिव एस. एन. सिसोदिया, विधायक एवं भाजपा महिला मोर्चा प्रदेश अध्यक्ष श्रीमती तारा भंडारी के हाथ से भी गणेशजी के दूध ग्रहण करने के समाचार छपे हैं। इस घटना से पूरे भारत में खासकर उत्तरी भारत में असमंजस व भय फैला तथा दूध के भाव बढ़ गए।

निष्कर्ष

दिल्ली से यह समाचार टेलीफोन द्वारा एसटीडी सेवा से जुड़े शहरों व कस्बों में फैला। छोटे गांवों में जहां फोन नहीं थे, वहां यह खबर नहीं फैली। आज कोई गणेशजी को दूध नहीं पिला रहा है।

मुझे तो यह किसी शातिर दिमाग द्वारा फैलाया गया सस्पेंस लगा।

बर्फीली कब्र

पारीक साहब और मैं अपनी वार्षिक यात्राओं के क्रम में इस बार एक अत्यंत ऊंचाई पर स्थित गांव भोजखंडी में पहुंचे। गांव धार्मिक व पर्यटन दृष्टि से सर्वथा अनजान तथा आधुनिक सुविधाओं से पूर्णतः वंचित है। केदारनाथ से बद्रीनाथ के पुराने मार्ग पर एक बहुत पुराना तीर्थ है श्री तुंगनाथजी। गुप्तकाशी से आगे कुंड नामक स्थान से एक मार्ग ऊखीमठ, चोपता, गोपेश्वर होते हुये बद्रीनाथजी जाता है। चोपता से पांच किमी दूर है तुंगनाथजी। यहां कठिन चढ़ाई है तथा सड़क नहीं है। अब यहां हजारों में एकाध यात्री ही आता–जाता है। पिछले वर्ष मैंने निश्चय किया था कि आगे से चारोंधाम का कार्यक्रम न बना कर एक ही धाम की नई पुरानी सारी जगह देखेंगे। इसी म में हम तुंगनाथ घोड़े से पहुंचे। हमें धर्मशाला में कमरा मिल गया। अगले दिन हमने लीक से हटकर आसपास किसी गांव में जाने का निश्चय किया। पूछताछ से मालूम हुआ कि पांच किलोमीटर दूर भोजखंडी नामक गांव है। एक पगडंडी जाती है। सीधी चढ़ाई चढ़नी है। रास्ता खतरनाक नहीं है। वहां सिर्फ पांच महीने ही बस्ती रहती है। बाकी दिनों गांव बर्फ से ढंका रहता है। कोई चौदह हजार फुट ऊंचाई पर है। घोड़ेवाले, भेड़ें चराने वाले, चीड़ का तेल, भोजपत्र की छाल, लकड़ियां आदि इकट्ठा करने वाले ही वहां जाते हैं। कई जगह गर्मी की फसल भी हो जाती है। इस तरह चार–पांच महीने वन सम्पदा, कृषि, पशुपालन तथा यात्रियों को घोड़े उपलब्ध कराने से हुई कमाई लेकर सर्दी में सब लोग नीचे के अपने गांवों में वापस चले जाते हैं।

तुंगनाथ से एक मजदूर सामान लेकर दोपहर में भोजखंडी जाने वाला है। हमने उसे अपना मार्गदर्शक मान लिया। वहां भोजन आदि मिलना मुश्किल था। अतः हमने अपने हिसाब से पदयात्रा की तैयारी की। हम दोपहर एक बजे खाना खाकर र–वाना हुए। हमें उम्मीद थी कि हम दो घंटे में पहुंच जाएंगे। ऊबड़ खाबड़ सीधा ऊपर पहाड़ी पर चढ़ता संकरा मार्ग, हमें फूंक–फूंक कर कदम रखने को मजबूर कर रहा था। आधे रास्ते में ही आए तूफान व बारिश ने हमारी मुश्किलें और बढ़ा दी। आखरी पडाव पर हमें ओलावृष्टि का सामना भी करना पड़ा। पथप्रदर्शक के सहारे आखिर हम मंजिल पर पहुंचे ही। हमारा परिचय बद्री नामक व्यक्ति से हुआ। बद्री कई घोडों एवं भेड़ों का मालिक है तथा उसका एक मकान भी यहां बना हुआ है। वह कल ही अकेला यहां की व्यवस्थाएं जमाने पहुंचा है। उसके परिवार के और सदस्य बाद में आएंगे। उसका मकान खाली पड़ा है। उसने आतिथ्य भाव से ही हमें एक कमरा रुकने के लिए दे दिया। वह चाहता तो हमारी मजबूरी का फायदा उठा पंचसितारा होटल का किराया भी वसूल कर सकता था। हमारे मार्गदर्शक कुली को जिसने कठिन समय में मदद कर हमें यहां तक पहुंचाया, हम धन्यवाद तक देना भूल गए। बद्री ने कमरा साफ करवा कर उसमें पानी का बड़ा मटका भरवा कर रखवा दिया। उसने हमें खबर भिजवाई कि यदि हम चाय नाश्ता करना चाहें तो नीचे चौक में आ जाएं। पर बरसते पानी और ओलावृष्टि के बीच चाय के शौकीन पारीक साहब ने भी लिहाफ की गर्मी लेना ही ज्यादा उचित समझा। हमने मोमबत्ती जला उजाला कर अपने रैनकोट एवं गीले कपडे उतारे। बैग में से निकाल कर थोड़ा– थोड़ा नाश्ता किया, पानी पीया एवं रजाइयों में दुबक कर सो गए।

यह पूरा मकान लकड़ी से निर्मित है। हमारे कमरे में मात्र एक दरवाजा है। छत पर टीनशेड हो रहा है। कमरे में एक नाली है जिसके पास लकड़ी से बनी मटकी पटिए से ढकी हुई रखी है। वहां लगे दो तख्तों पर हम अपनी चादर बिछाकर सोए। घुप्प अंधेरे कमरे में पानी–पेशाब के लिए टॉर्च सिरहाने रखी। यहां कमरे में संडास या स्नानघर तो है नहीं, हमने रात्रि में पेशाब करने के लिए कमरे की नाली का उपयोग करने का निश्चय किया। एक लौटा पानी डाल देंगे। बरसते मेह व हाड़ कंपाती ठंड में कमरा कौन खोलेगा ?

पता नहीं कब रात गुजर गई। पारीक साहब ने आवाज देकर मुझे जगाया। इससे पूर्व जब भी मेरी नींद खुली, मैं घुप्प अंधेरा देख 'बहुत रात बाकी है,' यह सोच कर सोया रहा। टॉर्च जलाकर घड़ी देखने की जहमत कौन उठाए ? पर जिसका सदैव जल्दी उठने का नियम रहा हो, वह तो यह जहमत उठाएगा ही। 'साढ़े आठ बज गए हैं। उठ, देखें कमरे का यह दरवाजा कैसे नहीं खुल रहा है ?' मैं मीठे स्वप्नों से जाग एकदम चिंतातुर हो गया। अभी भी वैसा ही सन्नाटा और वैसा ही अंधेरा। मैं उठा और पारीक साहब द्वारा जलाई टॉर्च की रोशनी में देखता हुआ सीधा दरवाजे के पास जाकर अंदर से रात्रि को हमारे द्वारा लगाई गई सांकल खोलने का प्रयास करने लगा। पर यह क्या ? पूरी ताकत लगाने के बावजूद दरवाजा जरा सा भी नहीं दब रहा। यह किवाड़ की लकड़ी इतनी गीली तथा ठंडी क्यों है ? अब तक तो पहाड़ों पर धूप खिल जाती है। माना हमारे कमरे का दरवाजा उत्तर की ओर है पर उससे क्या ? कहीं से तो कमरे में थोड़ा प्रकाश आना ही चाहिए था। सब ओर से निराश होने के बाद मैंने सोचने के लिए समय चाहा। पहले मैंने नाली में लघुशंका की। पूरे कमरे में दुर्गंध फैल गई। हवा बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। मटके से पानी लेकर आंखे धोई तथा कुल्ला किया। ऐसा लगा मोरी में से पानी बाहर नहीं जा रहा। मेरे पास कोई डंडा होता तो पहले मोरी में चला कर देखता। मैंने उधर से ध्यान हटा पहले तौलिए से हाथ व मुंह पोंछे। बिना टॉर्च के कोई काम नहीं हो रहा। हम टॉर्च का उपयोग कंजूसी से कर रहे हैं ताकि बैटरी को ज्यादा चला सकें।

अब तक हमें अहसास हो गया कि हम फंस चुके हैं। हमने कई बार बद्री के नाम से जोर–जोर से आवाजें भी लगाई। मैंने कमरे की लकड़ी की दीवारों तथा दरवाजे पर जोर–जोर से मुक्के मारे शायद दीवारों का कंपन ही किसी को हमारी मदद के लिए भेज दे। लकड़ी की दीवारें ऐसी मजबूत लग रही थी जैसे हमारे राजस्थान की चूने पत्थर की चुनाई वाली दो फीट मोटी दीवार हो। चिल्लाने या उन्हें बज. ाने का कोई फायदा हमें नजर नहीं आया। प्रातः की हमारी पहली आवश्कता है शौच जाना, जो यहां मुमकिन नहीं है। रात्रि को हमने खाना नहीं खाया था लिहाजा हाजत भी नहीं है। मैं सामान्यतया पानी पीकर तथा पारीक साहब चाय पीकर प्रेशर बनाते हैं। आज हम कुछ खाएंगे–पीएंगे नहीं तो निभ जाएगा। जीवन की एक आवश्कता पानी हमारी केटली और मटकी दोनों में है। हमारे बैगों में अभी पर्याप्त नाश्ता है। मूंग की दाल का हलवा, चने की नमक–मिर्च वाली खस्ता दाल तथा मूंगफली के तले हुए नमकीन दाने। सांस लेने के लिए कमरे में पर्याप्त हवा है पर बदबूदार। हमें घुटन महसूस नहीं हो रही है। मेरा दिमाग मुसीबत में काफी तेजी से हिसाब लगाता है। अगर आक्सीजन की कमी नहीं आई तो हम सात आठ दिन तो इसमें जिंदा रह ही लेंगे। तब तक तो भगवान कुछ करेगा ही।

घुप्प अंधेरे में तख्ते पर बैठ हमने बातचीत शुरू की। कई विचार सामने आए। पानी के कारण लकड़ी फूल गई और किवाड़ नहीं खुल रहा। घने बादल एवं बरसात के कारण अंधेरा हो रहा है। रात भर टीनशेड पर बरसात होने की आवाजें आ रही थी पर अब वह भी नहीं आ रही है। आगे की कल्पनाएं ज्यादा भयावह है। भूस्खलन हो गया हो या भारी मात्रा में गिरी बर्फ के नीचे हम दबे पड़े हों। बर्फ ही होगी तो सूर्य की रोशनी से पिघल जाएगी। पर पिघलेगी तो तब जब सूर्य निकलेगा। यदि इसी तरह बर्फ गिरती रही तो हम और गहरे दफन होते चले जाएंगे। हम निराशा के गहरे गर्त में डूबने लगे। एक लम्बी चुप्पी के बाद मैंने टॉर्च उठाई और पूरे कमरे को गौर से देखा। कहीं तो ऐसी जगह होगी ही जहां से हम दीवार में चाकू डाल कर छेद कर सकें। यदि हमारे पास दीवार की मोटाई से ज्यादा लम्बा चाकू हो तो हम पता लगा सकेंगे कि हम मिट्टी में दबे हैं या बर्फ में। मेरा निरीक्षण पूरा होने से पहले ही पारीक साहब बोल उठे, 'अब टॉर्च जलाने से क्या होगा? तेरे पहले मैं सब देख चुका हूं। हमारे पास कोई औजार तो है नहीं जो इन लकड़ियों को तोड़ सकें।' 'पर मैं क्या करूं? मैं चुपचाप तो बैठ नहीं सकता। आप भी सदैव यह बात कहते रहे हो।' हम पुनः आमने–सामने बैठकर बातें करने लगे। पुरानी यादें, घर–परिवार, जीवन–मरण से अध्यात्म तक की। 'मैं तेरे घरवालों को क्या जवाब दूंगा?' 'आप पहुंचोगे तभी तो।' 'मैंने ही तेरे को ऐसी यात्राओं का शौक लगाया था। मुझे तेरी ज्यादा चिंता है। तेरे भरा–पूरा परिवार है।' पारीक सा. ने मुझे अपने घर की याद दिला दी। अभी परसों ही तो मैंनें घर पर बात की थी। वसीयत भी आलस्य में ही रह गई। मैं कुछ भावुक हो गया। मेरी आंखों में से आंसू आ गये। 'अरे तू तो सचमुच घबरा गया। जीना–मरना तो ऊपरवाले के हाथ में है। हम यहां से निकलने हेतु पूरा संघर्ष करेंगे।'

रात को दर्द से कुलबुलाती हमारी टांगें और कमर अब तक काफी ठीक हो चुकी हैं। पिंडलियों, जांघों व टखनों में हल्का दर्द अभी भी बाकी है पर अब हम पुनः कुछ भी काम करने को तैयार हैं। अब हमें अंधेरे में कुछ–कुछ देखने का अभ्यास हो गया है। मैंने बैग में से टटोल कर नेलकटर निकाला जिसके साथ छोटा चाकू भी है। पारीक साहब को भान हुआ तो उन्होंने पूछा, 'क्या निकाल रहे हो?' 'नेलकटर।' 'अब अंधेरे में तेरे नाखून कटेंगे।' 'नहीं, मैं तो टाइम पास करने की स्कीम बना रहा हूं।' 'अब क्या टाइम पास करना है, सुबह से चाय भी नहीं मिली।' 'चाय की छोडो, आक्सीजन की सोचो। शायद इस कमरे में हम कहीं छेद कर सकें।'

'नेलकटर से।' 'और क्या है हमारे पास?' 'बड़ा चाकू भी है।' 'वह भी काम आ सकता है।'

मुझे कुछ करने की स्वीकृति मिल गई। रात आते समय देखी गई कमरे की स्थिति से मैंने अनुमान लगा लिया कि पूर्व दिशा किधर है। पूर्व की ओर नदी तथा पश्चिम की ओर ऊंचा पहाड़ है। हमारे कमरे का दरवाजा उत्तर की ओर खुलता है। जो कमरे की पश्चिमी दीवार के पास है। कमरे में नाली पूर्व दिशा में है। कमरे के मध्य दो बड़े तख्ते लगे हैं। जिन पर हमारे बैग आदि सामान रखे हुए हैं। हमारा कमरा दूसरी मंजिल पर है। इसका फर्श लकड़ी का है। नीचे का कमरा पूरा एवं हमारा कमरा आधा पश्चिम की ओर से भूमिगत है। अभी दिन के 10 बजे हैं और सूरज पूरब की ओर है। 'मुझे पहले किस ओर चाकू चलाना चाहिए?' पारीक साहब ने सलाह दी, 'किवाड़ बारीक लकड़ी का बनता है। शायद उसमें झिरी बन जाए।' 'हां, किवाड़ में तो झिरी होती है पर बरसात में दबी रहती है। फिर भी शुरूआत ़यहीं से करते हैं।'

भगवान का नाम ले मैंने खुरचना शुरू किया। इसी बीच मैंने मन ही मन गायत्री मंत्र का जाप प्रारंभ कर दिया। इस मंत्र ने मुझे पूर्व में भी कई बार संकटों से उबारा था। दरवाजे की पूरी चौखट पर बर्फ जमी महसूस हुई। ऊपर की तरफ चौखट एवं किवाड़ के बीच में बाहरी दबाव पड़ने के कारण ज्यादा जगह हो गई थी। वहां जमी बर्फ में धीरे–धीरे छेद कर मैंने बड़ा चाकू पूरा घुसा दिया। अब यह बात तो तय हो गई कि हम बर्फ के नीचे दबे पड़े हैं। शायद रात भर बर्फ गिरी हो। यहां के लोग इन हालातों के अभ्यसत होंगे लेकिन हमारे लिए तो यह एक भयानक अनुभव है। मैं धीरे–धीरे सावधानीपूर्वक काम कर रहा हूं। चोट का खतरा नहीं उठा सकता। पारीक साहब ने दो–तीन बार कहा भी, 'तू थक गया होगा, मैं

आऊं' पर मैंने मना कर दिया। मैं भी तो बला ही टाल रहा हूं। अब हमें बचने का विश्वास ज्यादा हो गया है। कभी तो मौसम खुलेगा, धूप निकलेगी, बर्फ पिघलेगी और हम बाहर निकल पाएंगे। गांव वाले, सरकार, प्रशासन भी तो यहां फंसे लोगों को बाहर निकालने का प्रयास करेंगे ही। मेरे मन में तो बस एक ही चिंता है आक्सीजन की। किसी तरह कमरे में हवा आने के लिए दो–चार छेद हो जाएं। पारीक साहब को आक्सीजन की चिंता नहीं है। यहां गीला है, पानी है, यहां आक्सीजन अपने आप बनती है। हमने पढ़ा है कई बार इंसान इस तरह गड्ढों, कमरों में से 10–15 दिन बाद भी जीवित बाहर निकल आते हैं। हमारे पास माचिस और मोमबत्ती भी है पर हम उसे काम नहीं लेना चाहते। कार्बन डाइआ. क्साइड बनने से दम घुट कर मरने की कई घटनाएं हम पढ़–सुन चुके हैं।

हमारे कमरे की स्थिति ऐसी है कि यदि धूप से बर्फ पिघलती भी है तो दरवाजे के सामने की बर्फ अंत में पिघलेगी। हम उत्तरी गोलार्द्ध में हैं। यहां प्रातः धूप पूर्वी दीवार पर, दोपहर दक्षिणी तथा शाम को पश्चिमी दीवार पर आती है। हमारा दरवाजा उत्तरी दीवार में है। पूरी भौगोलिक स्थिति पर विचार करने तथा पहाड़ों में लकड़ी से बने मकानों की छत की बनावट की कल्पना करने पर हमें लगा कि शायद पूर्वी दीवार का छत से लगा हिस्सा बर्फ से मुक्त हो। छत दीवार से थोड़ी आगे निकली रहती है, वह दीवार के सहारे बर्फ गिरने से रोकती है। पूर्वी ओर गहरी खाई व नदी है तथा धूप भी इसी दीवार पर आएगी। मैंने अपना ध्यान इस दीवार में छेद करने पर लगाया। दस फीट ऊंची छत तक पहुंचना तो असंभव है। तख्त को दीवार के सहारे सटा कर मैंने करीब सात फीट की ऊंचाई पर दो जुड़े हुए पटियों के बीच चाकू फंसाया पर इस झिरी के पीछे भी एक पटिया लगा था। शायद बर्फीली हवाओं को रोकने के लिए यहां मकानों में ऐसी व्यवस्था की जाती है। झिरी में चाकू घिसते हुए एक स्थान पर ऐसा लगा जैसे पीछे के पटिए में जोड़ लगा हो। कुछ देर परेशान होने के बाद मैंने हताशा में दीवार पर मुक्का मारा। एकदम तेज आवाज निकली। मतलब यहां लकड़ी के पटिए पतले हैं तथा पीछे दीवार खुली हुई है। इधर दीवार में से पानी भी नहीं रिस रहा। हमारा अंदाजा सही निकला। अब मैंने पुनः चाकू उठाया। मेरे हाथ में स्टील का दांतेदार चाकू है। इसे मैंने आरी की तरह काम में लिया। एक घंटे तक लकड़ी को घिस–घिस कर हम एक बारीक सुराख बनाने में सफल हो गए। सुराख में से हल्की सी रोशनी तथा सर्द हवा अंदर आई जो हमारे तन–मन में नवजीवन का संचार कर गई। हमें तीन घंटे के श्रम के बाद मिली इस कामयाबी पर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। हमारे मन में बसा मृत्यु का भय कम हो गया। ऐसे ही अवसर पर इन्सान को भूख लग आती है।

जो इन्सान सुबह सात बजे नाश्ता कर लेता हो वह दोपहर एक बजे भी खाने में संकोच कर रहा है। न शौच, न मंजन–कुल्ला, न स्नान ध्यान, कैसे कुछ खा लें। अब हमने जीवित रहने के लिए अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने वाली कहानियां सुनाना शुरू किया। कैसे एक छोटी नाव पर समुद्र में भटक रहे यात्रियों ने अपने ही एक मृत साथी का मांस खाकर अपनी जान बचाई थी? कैसे विषम परिस्थिति में फंसे एक खच्चर ने दूसरे खच्चर का मांस खाकर बर्फीले पहाड़ पर 15 दिन तंबू में अपने आपको जिंदा रखा। आत्मा की रक्षा ही सबसे बड़ा धर्म है। पहाड़ी लोग अक्सर सप्ताह में एक–दो बार ही शौच जाते हैं। मंजन करने और मुंह धोने लायक पानी तो हमारे पास है। पर इसे खर्च कर देंगे तो पीएंगे क्या? क्या हम बाहर की बर्फ से पिघल रहा पानी इकट्ठा नहीं कर सकते? कोई तरकीब लगानी होगी। हमने ब्रश करके खाना शुरू कर दिया। मैंने गिनती के दाने ही मुंह में डाले। प्रेशर बनने का भय है। अभी इस नाश्ते में न जाने कितने दिन गुजारने हैं। खाने के बाद हमें कुछ थकान सी महसूस हुई। दोनों सलाह करके सो गए। आश्चर्य ऐसे भय के बीच भी मुझे गहरी नींद आ गई। मुझे खट्टे मीठे सपने भी आने लगे। स्वप्न में मैंने देखा कि मैं बर्फ से ढकी पहाड़ी ढलानों पर अकेला घूम रहा हूं। अचानक एक देवता (जैसे हम मंदिरों में देखते हैं) प्रकट हुए। देवता ने मुझसे कहा, 'आओ स्वर्ग चलें। यहां से बिल्कुल पास ही है।' मुझे माया–मोह ने बांध रखा था। मैंने कहा, 'अभी नहीं, मैं घर वालों से कह कर नहीं आया।' देवपुरुष अंतर्ध्यान हो गए और मैं स्वप्न से जाग कर वापस कमरे में आ गया। इसके बाद मैं बहुत देर तक शांत लेटा पारीक साहब के जागने का इन्तजार करता रहा। अचानक मुझे ध्यान आया कि अभी तो पानी की व्यवस्था करनी है। मैं हरि– हरि कहते उठ बैठा। पारीक साहब ने भी हरि में जवाब दिया। उन्हें गहरी नींद नहीं आई थी। वे तो मेरे उठने का इन्तजार कर रहे थे। वे बोले, 'मैंने सोचा अब तुझे तो आराम करने दूं। तूने बहुत मेहनत की है।' खैर अब हमने पानी इकट्ठा करने पर विचार शुरू किया।

दरवाजे के पीछे तथा पश्चिमी दीवार पर हल्का–हल्का पानी रिस रहा है। मैंने किवाड़ पर रुमाल रखा तो वह गीला हो गया। पर यह तो बहुत गंदा है। सुबह जब मैं चाकू से दरवाजे की बर्फ खुरच रहा था तो मेरे हाथ गीले हो गए थे। इसी आधार पर किवाड़ों के छेद में से बर्फ में चाकू तिरछा घुसा दिया। थोड़ी देर बाद चाकू के हत्थे से पानी की बूंद टपकी। हमारा नल तैयार हो गया। हमने थोड़ा बड़ा छेद कर चाकू की जगह स्टील की चम्मच लगा दी। जहां पानी की बूंदें गिर रही थी वहां लोटा रख दिया। तीन चार घंटे में लोटा भर ही जाएगा पर देखने की बात यह है कि इस नल में कितनी देर पानी आता है। यहां बंद हो जाएगा तो दूसरी जगह लगा देंगे। कम से कम प्यासे तो नहीं मरेंगे। हमने थोड़ा हास्यरस

भी पैदा किया। कुछ चुटकुले भी याद आने लगे। उसमें यमराज और मृत्यु के चुटुकले ज्यादा थे। हम फुसफुसाहट में ही बातें कर रहे थे। हमने अपनी जिंदगी की वे ही दास्तानें पुनः एक दूसरे को सुनाई जो हम पूर्व में भी कई बार सुना चुके थे। हमने कमरे में से बाहर निकलने की कई संभावनाओं पर भी विचार किया। हम तख्ते से मार कर पूर्वी दीवार में कोई पटिया तोड़ सकते हैं। पर इधर तो जमीन 20 फीट नीचे होनी चाहिए। बाकी तीनों दीवारें तथा छत भी बर्फ से ढकी होंगी। क्या हम मैदानी व्यक्ति इस बर्फ पर चल कर कहीं पहुंच पाएंगे? कमरे में यदि कोई बड़ा सुराख हो जाता है तो यहां की बर्फीली हवाएं क्या हमें कमरे में भी जिंदा छोडेंगी। अभी तक हम एकदम बंद कमरे में अपने शरीर की गर्मी से ही जी रहे हैं। हमें कोई पटिया इस तरह निकालना है कि हम जब चाहें उसे वापस लगा दें। इस काम के लिए हमें सब्बल जैसे भारी औजार की जरूरत है। हमने रात को अपने रैनकोट उतार कर खूंटी पर टांगे थे। मैंने कोट उठा कर देखा–खूंटी के रूप में लोहे का कीला गड़ा हुआ है। यदि हम इसे उखाड़ पाएं तो यह हमारी कई प्रकार से मदद कर पाएगा। यहां ऐसे दो कीले गड़े हैं। अब इन कीलों को उखाड़ने में ही समय गुजारेंगे। हमारे पास ताश, शतरंज, पुस्तकें तथा पहाड़ों का नक्शा है पर अंधेरे में सब बेकार हैं। बाकी काम हमने कल सुबह के लिए छोड़ दिया और सोने का प्रयास करने लगे।

भूख,भय, न नहाने का अहसास,पेट का भारीपन,मुझे नींद नहीं आई। लेटना मुश्किल हो गया तो मैंने टार्च जलाकर घड़ी देखी। अभी नौ ही बजे हैं। मैने होले से पारीक सा. को पुकारा। वे भी जाग रहे हैं।'कुछ खा लेते हैं,शायद तभी नींद आये'। हमने अपना नाश्ता निकाल प्रातः की तरह ही एक–एक दाना चबाना शुरु किया। चबा–चबा कर खाने से समय भी गुजरेगा,कम भोजन में ज्यादा शक्ति भी मिल. `गी। इसी समय हमें बाहर से तूफान व बारिश की सी आवाज सुनाई देने लगी। हम पुनः दहशत में आ गये। यह गिरती बर्फ हमारे जीवन की उम्मीदों को कम कर रही है। इसके साथ हमारा सकारात्मक सोच भी शुरु हुआ। मतलब आज दिन में बर्फ नहीं गिरी। हमारे कमरे की छत पर भी बर्फ नहीं है। यदि अब ज्यादा बर्फ न गिरे तो शायद हमें बचने का रास्ता मिल जाये। 'हे प्रभो, अब तो तू ही मालिक है, रहम कर।' मैं प्रार्थना में बहुत कातर हो गया। मेरी आंखों से निकले आंसू तो पारीक सा. नहीं देख सके पर मेरे मुंह से निकली सिसकी उनके अन्तर्मन में उतर गयी। वे बोले, 'अब रोने से क्या होगा? अभी तो हमारे पास पर्याप्त दाना–पानी है। पचास–पचास दिन तो आदमी उपवास में नहीं मरता।कभी तो मौसम खुलेगा ही। फिर यहां अभी बर्फ गिरने का मौसम भी नहीं है।'' ''पता नहीं हमारी किस्मत में ही यह लिखा था।'' बमुश्किल मैं अपने आप पर काबू पा सका ।

नाश्ते के बाद हमने पानी पीया। एकदम बर्फ का सा। हमारे नल में से पानी टपकना जारी है। अब हमने मटका ही उसके नीचे लगा दिया। खाने के बाद हम अपनी–अपनी रजाई ओढ़ सो गये। रात कुछ निंद्रा, कुछ सोच विचार में कटी ही। अब नींद भी कितनी आती? छत पर हो रही गड़गड़ाहट के हम थोड़ी देर में अभ्यस्त हो गये। रात में जब–जब भी गहरी नींद आई मुझे विचित्र सपने आते रहे। एक सपने में मैं यात्रा से वापसी के बाद घर पहुंच गया। घर पर मेरा कोई स्वागत नहीं हुआ। मैं झल्लाया 'इसकी अपेक्षा वहीं रह जाता तो ज्यादा अच्छा था।' इतने में पत्नी मुस्कराती हुई आई और मुझे नकली फूलों की माला पहना दी। मैंने हाथ आगे फैलाए और मेरी नींद खुल गई। टॉर्च जलाकर घड़ी देखी। 6 मई रविवार सन् 2001 सुबह के 5:45 हुए हैं। मैंने हल्का सा मुंह धो रात को सोची हुई योजना पर काम शुरू कर दिया। हमें कमरे में उपलब्ध सामानों का औजार के रूप में प्रयोग कर कीला उखाड़ना है। पूरी ताकत लगाकर कीले को हिलाया पर वह टस से मस नहीं हुआ। 'इन बेवकूफों को इतने मजबूत कीले गाड़ने की क्या जरूरत थी?' मैं गुस्से में बड़बड़ाया। पारीक साहब मेरी हरकतों को महसूस कर उठ गए। 'इधर वाला देख लेते है। उन्होंने दूसरी खूंटी पर टंगे सामान उतारे तथा कीले की मजबूती परखने लगे। 'हिल तो नहीं रहा पर यह शायद कम गड़ रहा है।' मैंने भी आकर देखा यह खूंटी ज्यादा लम्बी है। निश्चय ही इसे निकालना सरल रहेगा। मैंने नेलकटर के चाकू से कीले के आसपास लकड़ी खुरचना शुरू किया। हम दोनों मुसीबतजादों के पास कोई काम तो था नहीं। दोनों चाकुओं की सहायता से कमशः काम में जुटे रहे। आखिर सफलता मिली दोपहर के 11 बजे। आधा दिन कटा और हमारे हाथ एक बहुत बड़ी नियामत लग गई। आज शायद अभी तक धूप नहीं निकली है। हम कल बनाए सुराख में से बार–बार बाहर झांक लेते हैं। बादल छाए होंगे पर बारिश की आवाज नहीं है।

इस बीच हम कमशः ब्रश कर चुके थे। नाली में से पानी धीरे–धीरे बह जाता है। किवाड़ के छेद में लगी चम्मच की स्थिति में परिवर्तन कर हम मटके में पानी संग्रह करना जारी रखे हुए हैं। हमने थोड़ा नाश्ता करने के बाद कुछ देर आराम किया। अब हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है शौच। अब तो कमरे की दीवार का कोई पटिया तोड़ना ही पड़ेगा। अब हमारे हाथ में कोई एक किलो वजनी, 10 इंची लंबा, एक सेमी मोटा धारदार कीला है। आधा घंटे में हमने हमारी कल बनाई झिरी को एक बड़े छेद में तब्दील कर दिया। बाहर का दृश्य सुखद नहीं है। कल जिसे हम दूर पहाड़ी पर जमी बर्फ समझ रहे थे वह तो मात्र तीन फीट दूर ही थी। हमारा कमरा तो अभी तक बर्फ में दबा है। बर्फ की ठंडक तो हमें महसूस हुई पर कोई जोरदार हवा कमरे में नहीं आई। बाहर का उजाला देखने के बावजूद हम तय नहीं कर पाए कि हमें दुखी होना चाहिए या खुश।

'अब ये पटिए 10 मिनट में खुल जाएंगे पर वापस लगेंगे नहीं।' मैं बोला। पारीक साहब ने कहा 'सो तो है। अभी हमें पता नहीं इस कमरे में और कितने दिन रहना है।' 'चलते फिरते सात आठ दिन और फिर निश्चेतन अवस्था में।' 'पटिया नहीं लगा और फिर हिमपात शुरू हो गया तो?' मैंने अपने हाथ रोक लिए। पारीक साहब ने टॉर्च जलाकर पूरे कमरे की लकड़ी की दीवारों का फिर से निरीक्षण किया। 'वहां देखो, वह चौखटा अंदर से ठुका मालूम पड़ता है। उखाडेंगे तो उसे ही जिसे वापस ठोक सकें।' पारीक साहब ने छत के पास दीवार के कोने में इशारा करते हुए कहा। 'पर वहां तक पहुंचेंगे कैसे?' 'पहुंचना ही पड़ेगा।' हमने एक तख्ते के ऊपर दूसरा तख्ता जमाया। हमारा प्रयास निरर्थक नहीं गया। यहां दो छोटे पटिए ठोक कर रोशनदान बंद किया गया था। थोड़े प्रयास के बाद मैं एक पटिया ढीला करने में सफल हुआ। पर यह क्या? पटिया तो बर्फ से चिपक रहा है। पूर्वी ओर छेद में से देखे दृश्य के हिसाब से यहां बर्फ नहीं होनी चाहिए। मैंने पटिया ऊंचा कर बर्फ को कीले से खोदना शुरू किया। थोड़ी देर में ही बर्फ में छेद हो गया और दूर हल्के बादलों से ढका आसमान दिखाई देने लगा। हमारे मन में अपार प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। पटिया पूर्णतः उखाड़कर नीचे रख लिया तथा कीला मार-मार कर पूरी बर्फ बाहर की ओर गिरा दी। तेज हवा के झोंके से कमरा एकदम ठंडा हो गया। पारीक साहब ने मुझे उतारा एवं स्वयं मचान पर चढ़ रोशनदान में से गरदन बाहर निकाल दी।' यहां से तो मैं बाहर जा सकता हूं।' मुझे बाहर जाना खतरनाक लग रहा है। मैं पारीक साहब की जिस चीज का कायल हूं वह उनकी हिम्मत ही है। उन्होंने अपने बैग में से नायलोन की रस्सी निकाली, जिसका एक छोर तख्त के एक पाए से बांध दिया। उन्होंने अपने जूते एवं बरसाती कपड़े पहने। मेरी सहायता से थोड़े प्रयास के बाद वे बाहर बर्फ पर खड़े हो गए। मैंने उन्हें रस्सी का सिरा तथा कीला थमाया। इस समय मैंने उनके शरीर में विशेष फुर्ती, चेहरे पर चमक तथा वाणी में चहक देखी। 'अब मैं थोड़ा घूम फिर आता हूं।' 'ज्यादा दूर मत जाना तथा बातें करते रहना ताकि मुझे आपका आभास मिलता रहे।' पारीक साहब ने कीले की सहायता से बर्फ खुरच कर ढलान पर सीढ़ी सी बनाई एवं उस पर पैर बढ़ाया। इस तरह एक-एक सीढ़ी बनाकर वे कमरे की छत पर पहुंच गए। छत ढलवा है पर फिसलन नहीं है। वे छत के मगरे पर आराम से खड़े हो मुझे बाहर की कमेंटरी सुनाने लगे।

'पश्चिम उत्तर से पूरब दक्षिण की ओर ढलवां बर्फ जमी हुई है। स्केटिंग का मैदान बन गया है। दक्षिणी ओर कई पेड़ नजर आ रहे हैं। हम कल इधर से ही आये थे। पूरे गांव में कोई मकान नहीं दिखाई दे रहा है। हमारे कमरे की छत सबसे ज्यादा ऊंचाई पर है। सर्दी बहुत है पर मुझे इस प्रकृति को देखने में बहुत आनन्द आ रहा है। काश हमारे पास कीलों वाले जूते तथा ज्यादा गरम कपड़े होते तो हम यहां घूमते।' पारीक सा. की बातें सुन मेरा मन भी बाहर जाने को मचलने लगा। पारीक सा. को मैंने वापस बुलाया। अंदर आने से पूर्व वे आवश्यक कार्य से भी निबट आये। बाहर जाने की अपेक्षा अंदर आने में ज्यादा परेशानी आई। मैंने केटली से पानी डाल कर साबुन से उनके हाथ धुलवाये। इसके बाद मैं भी उसी प्रक्रिया से बाहर निकला। बाहर का दृश्य नयनाभिराम है। फोटो एवं फिल्मों में ऐसे दृश्य देख वहां घूमने की इच्छा होती है और जब मैं आज इस शानदार प्राकृतिक वातावरण में हूं तो मेरी आत्मा कांप रही है। कुछ देर इस मोहक नजारे का आनन्द ले, मैं भी जरूरी काम से निपटा। पारीक सा.ने कुछ घूम आने के लिये प्रोत्साहित किया पर मेरी तो हिम्मत व शरीर दोनों जवाब दे चुके हैं। मैं जल्द ही रोशनदान से अंदर कूद गया। मुझे यहां से आने-जाने में कठिनाई नहीं हुई। मंजन कर शरीर के पोंचा लगा तरोताजा हुये। घड़ी देखी, शाम के साढ़े चार बज गये हैं। मौसम भी खराब होना शुरू हो गया है। हमारा कमरा भी काफी ठंडा हो चुका है। मैंने तख्तों पर चढ़, कीले से ठोक, पटिया लगा कर रोशनदान बंद कर दिया। साफ- सफाई कर वापस बिस्तर लगाये और फिर मोमबत्ती के उजाले में दोनों मित्रों ने पिकनिक मनाई। इस तरह आज हमारा दिन आनन्द से निकला। अब हमारा दिमाग दैनिंदीय समस्याओं से ऊपर उठ यहां से बाहर निकलने की योजनाओं पर सोचने लगा। शरीर के अंदर बाहर की शुद्धी होने, हमारे फेंफड़ों में ताजा हवा जाने तथा प्रकृति का अद्भुत् मंजर आंखों के रास्ते दिल में उतर जाने से हम तरोताजा व स्फूर्तिवान महसूस करने लगे। नाश्ता खाने के बाद हमारा समय विचार-विमर्श में बीता जब तक कि नींद नहीं आ गई।

हमारे कमरे की यह छत इस गांव की सबसे ऊंची जगह है। यहां से पूरा गांव दिखाई देता है। हम जिस रास्ते से आए थे वह भी काफी दूर तक दिखाई देता है। यहां से सीधा उतार है जिस पर अभी बर्फ जमी हुई है। हमारी तरह गांव के अन्य सैकड़ों व्यक्ति भी यहां फंसे होंगे। हम आवाजें लगाकर या लाल कपड़ा लहरा कर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करेंगे। इस भोजखंडी गांव का जीवन तुंगनाथजी से जुड़ा हुआ है। वहां के लोगों को अवश्य ही इस त्रासदी का पता चला होगा। प्रशासन अवश्य ही बचाव के प्रयास कर रहा होगा। हमने तुंगनाथजी की धर्मशाला में कमरा लेकर अपने सामान रख छोड़े हैं। ध र्मशाला के बुजुर्ग मैनेजर ने हमारी इस ऊलजलूल यात्रा के लिए हमसे बहुत मना किया था पर हमारी बदकिस्मती हमें यहां ले आई। धर्मशाला में मैंने अपना पता तथा फोन नंबर रजिस्टर में लिखा था। कहीं ऐसा न हो कि हमारे मरखप जाने की खबर हमारे घरों पर पहुंच गई हो। पारीक साहब वापसी यात्रा शुरू करना चाहते हैं। यह विचार मुझे हास्यास्पद लग रहा है। मुझे प्रशासनिक मदद आने का पूरा भरोसा है।

पारीक साहब कह रहे हैं कि जब ढाई दिन में ही किसी ने कुछ नहीं किया तो अब क्या करेंगे। उन्होंने कहा 'अगर मैं अकेला होता तो कल शाम तक तुंगनाथ पहुंच जाता। तू बहुत डरपोक है।' 'पर आप यह खिड़की खोल पाते तब ही तो कमरे से बाहर निकलते ना! फिर भी यदि आप जाना चाहो तो मैं आपको रोशनदान तक विदा करने अवश्य आऊंगा। हो सकता है आप सही सलामत पहुंचकर प्रशासन को इस गांव की विपदा की सही जानकारी दे सको एवं सैकड़ों लोगों की जान बच जाए। फिर तो अगले स्वतंत्रता दिवस पर आपको जीवनरक्षा पदक मिलना पक्का हो जाएगा।' गत दो दिनों से भय के कारण बढ़ रहा हमारा प्यार आज थोड़ी सी आजादी एवं जीने की राह मिलते ही तकरार में बदल गया। पारीक साहब को मेरी यह बद्‌जुबानी बुरी लगी और वे चुप्पी साध गए। काफी देर बाद मैंने तनाव को कम करने के लिए कहा, 'मैं कल कमरे के आसपास बर्फ पर चलकर आत्मविश्वास पैदा करता हूं। बाबा हिम्मत देंगे तो हम आपके प्रस्ताव पर परसों अमल करेंगे। यदि हम गांव में से किसी को निकाल कर साथ ले जा सकें तो और भी अच्छा रहेगा।' इसके बाद हमने विवाद के डर से बहुत कम बातें की। रात्रि में बारिश होने का आभास भी हुआ। नींद देर से आई पर बहुत गहरी आई। प्रातः जब मैं उठा तो 6:40 हो चुके थे।

प्रातः उठते ही मैंने सबसे पहले पूर्वी दीवार में बनाये छेद में से कीला व रुमाल बाहर निकाला। रात में शीतल हवा से बचने के लिये हमने यह खिड़की बंद कर दी थी। सूर्य की किरण अंदर आई एवं पश्चिमी दीवार पर पड़ी। कमरे में हल्का उजाला हो गया। आज का दिन कितना अच्छा निकलेगा, सर्वप्रथम भगवान भास्कर के दर्शन हुये हैं। पारीक सा. भी जाग रहे हैं। उजाला दिखते ही गुडमार्निंग बोले। मैंने भी चहक कर जवाब दिया। वे काफी देर से जाग रहे हैं पर ऊँचा रोशनदान खोलने की व्यवस्था तो हम दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही हो पायेगी, अन्यथा पारीक सा.तो अब तक नहा धो निपट ही जाते। बाहर मौसम सुहाना है और हम दोनों की इच्छा ही उसका आनन्द लेने की है। कल वाले तरीके से ही दरवाजा खोला गया। पहले पारीक जी बाहर निकले। शौच निवृत्ति के बाद उन्होंने मेरे से साबुन तथा पेस्ट–ब्रश ले लिया। बोले, 'बाहर अच्छी धूप खिली है। बर्फ पिघल–पिघल कर खूब पानी बह रहा है।' 'मैं भी बाहर आ जाऊं'। 'अरे आ जाओ न भाई सा., ऐसी भी क्या बात है?' मैंने रस्सी, तौलिया आदि आवश्यक सामान पारीक सा. को दे दिये। उन्होंने छत के लठ्ठे से रस्सी बांध दी।मैं रस्सी का सहारा लेकर बाहर आ गया। बर्फ हमारे इस रोशनदान से करीब डेढ फुट नीचे हो गई है। सभी जगह बर्फ का स्तर घट रहा है। कमरे की छत चारों ओर से खुल गई है। कई छोटी–छोटी नालियां बन गई हैं जिनमें पानी बह रहा है। पश्चिम की ओर सूर्य की किरणें बर्फ पर परावर्तित हो आंखें चौंधिया रही है। दूर उत्तरी घाटी में ढलान पर बर्फ की चादर चमक रही है। इसी ओर ढलान से आगे शायद जलधारा के भी उस पार मुझे बर्फ जैसी सफेद हिलती हुई आकृति नजर आई। मैंने अपने कदम रोक ध्यान से देखा फिर पारीक सा. की ओर मुखातिब हो कर बोला, 'आपको वहां कुछ दिखाई देता है'। 'नहीं तो।'
'वो देखो सामने'। 'हां, शायद बर्फ लुढ़क रही है।'
'लुढ़क नहीं रही, चल रही है।'
पारीक सा. मेरे पास आ खड़े हुये। बोले, 'हां अब दिखा। यह तो कोई भारी भरकम प्राणी है। हिममानव, भालू या वैसा ही कोई। पहाड़ से नीचे उतर रहा है। एकदम सीधा नहीं, तिरछा– जैसे इंसान टेढ़े–मेढ़े रास्ते बनाता है। दस पंन्द्रह मिनट तक हम इस दुर्लभ दृश्य को देखते रहे। नीचे उतरने के बाद भालू हमें दिखना बंद हो गया। इतने पास जंगली जानवर दिखाई देने से मेरे मन में दहशत पैदा हो गयी।

मैं प्रातःकालीन कार्य से निबट कर आया तब तक पारीक साहब खिड़की के पास खड़े होकर आसपास के दृश्यों का रसास्वादन कर रहे थे। आते ही मैंने उनसे लुंगी खोलने के लिए कहा। योजनानुसार हमने कमरे की छत पर चढकर लाल रंग की लुंगी लहराते हुए चारों दिशाओं में पूरी ताकत से बचाओ–बचाओ की आवाजें लगाई। हमारी आंखे निरंतर किसी अज्ञात मसीहा को खोजती रही जो हमारी मदद कर सके। आधे घंटे बाद तक भी कोई संकेत नहीं मिलने पर हताश हो हम कमरे में आ गए। हमने रस्सी के सहारे लुंगी को कमरे की छत से लटकते हुए बांध दिया। एक गहरे लाल रंग का झंडा सा बन गया। यदि कोई मनुष्य इसे देखेगा तो हमारी सुध अवश्य लेगा। हमारे कमरे के रोशनदान के बाहर की बर्फ पिघल गई जिससे हमें इस रास्ते से कमरे में जाने में ओर अधिक कठिनाई होने लगी। यदि यह बर्फ एक फीट और कम हो जाएगी तो हमारा यह रास्ता बंद हो जाएगा। कुछ ऐसा क्यों न करें कि आज ही इस कमरे का मुख्यद्वार खुल जाए। औजार के नाम पर हमारे पास सिर्फ कीला है। हमने देखा कि जहां पानी बह रहा है वहां बर्फ तेजी से पिघल रही है। हमने प्रयास कर पानी का बहाव दरवाजे के पास से कर दिया। हमें विश्वास है कि हम दोपहर ढलने से पूर्व कीले की मदद से बर्फ खोद कर दरवाजा खोलने में कामयाब हो जाएंगे। सब व्यवस्था कर हम वापस कमरे में घुसे। छोटे छेद में से आ रही रोशनी से हमें अभी टॉर्च या मोमबत्ती नहीं जलानी पड़ी। हमने ब्रश कर मुंह धोया एवं प्रार्थना की। इसके बाद हमने नाश्ता निकाला जो अत्यल्प था। फिर भी हमने उसमें से शाम के लिए आधा बचा कर रख लिया। तख्तों को नीचे उतार, बिस्तर बिछा हम लिहाफ में दुबक गए।

फुर्सत के क्षणों में कई बातें याद आती हैं। यदि हम कल भी यहां से नहीं निकल पाए तो

भूखों मरने की नौबत आ जाएगी। मैं बड़बड़ाया, 'भगवान ने मुझे अभी तक तो भूखा नहीं सुलाया। मेरी जन्मकुण्डली में दूसरे भाव में चंद्रमा स्वग्रही है, कहीं न कहीं से इंतजाम होना चाहिए।' पारीक साहब ने हताशा से कहा, 'तो तेरे को भगवान ने अभी तक जेल में भी तो नहीं रखा था। आज हमें यहां तीन दिन हो गए।' 'शायद इसी जेल ने हमें प्रकृति का ऐसा सुन्दर रूप भी दिखाया जिसे देखने की हर कोई तमन्ना रखता है, पर देख नहीं पाता। देखो मुझे आज बर्फ पर चलने का कैसा अभ्यास हो गया। आज दोपहर में हम आसपास घूमने जाएंगे व अपना रास्ता भी तलाश करेंगे। शायद कल निकल ही लें। 'आज भालू को देखना बड़ा अच्छा लगा पर अगर रास्ते में मिल गया तो! जंगली जानवर अपने क्षेत्र में इंसान का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। वैसे आगे से कोई प्राणी हमला भी नहीं करता।' 'सिवाय मनुष्य नाम के प्राणी के।' बातें करते–करते न जाने कब झपकी लग गई। गड़गड़ाहट सुन मेरी नींद खुली। 'पारीक साहब! आप कुछ सुन रहे हैं?' 'हां लगता है बर्फ गिर रही है।' 'नहीं, धूप खिल रही है। यह आवाज तो हवाई जहाज जैसी है।' 'नहीं, हेलीकॉप्टर की है।' 'तब तो उठो, हमें तुरंत ऊपर चलना चाहिए।'

हमने झटपट तख्ते जमाए और खिड़की से बाहर कूदे। एक हेलीकॉप्टर कम ऊंचाई पर उड़ता हुआ उत्तर की ओर आगे बढ़ गया। हमने छत पर खडे हो जोर–जोर से लुंगी हिलाते हुए चीखना शुरू कर दिया। हेलीकॉप्टर मुड़कर पुनः हमारे ऊपर से निकल कर नीचे दक्षिण की ओर चला गया। हम निराश हो बैठे ही थे कि हेलीकॉप्टर पुनः आता दिखाई दिया। अचानक उसमें से कुछ सामान नीचे गिरा। एक हाथ आश्वासन देता सा दिखाई दिया और हेलीकॉप्टर वापस तुंगनाथजी की ओर उड़ गया। कुछ देर बाद हमारा ध्यान उसमें से गिराए सामानों की ओर गया। करीब 50 फीट आगे पहाड़ी की ओर सामान पड़ा है। वहां तक बर्फ जमी हुई है तथा इसका ढाल नदी की ओर है। 'शायद कोई राहत सामग्री सेना ने बर्फ में दबे इस गांव के लिए भिजवाई है। आखिर प्रशासन को गांव की सुध आ ही गई। चलो सामान ले आते हैं।' मैं बोलता चला गया। अब मुझे घर लौटने की पूर्ण उम्मीद हो गई है।

अब सामान कमरे तक लाना हमारी प्राथमिकता हो गई। इसके लिये हमने रस्सी का प्रयोग किया। सामान बहुत भारी है उसे उठा कर लाना संभव नहीं है। पारीक सा. ने बर्फ पर चलकर एक बंडल को रस्सी से बांधा और मैंने कमरे की छत पर खड़े हो रस्सी खींच ली। इस तरह हमने पांचों बंडल अपने कमरे की पश्चिमी दीवार पर ला रखे। बंडल मजबूती से पैक किए गए हैं जिससे पानी इनके अंदर न घुस सके। पारीक साहब के आदेशानुसार मैं कमरे में जाकर नेलकटर एवं चाकू निकाल कर लाया। चाकू से रस्सी काट मैंने सबसे छोटा बंडल खोला। इसमें दवाइयां निकली हैं। पारीक साहब ने कहा, 'अरे ये हमारे किस काम की? तू यह बंडल खोल शायद इसमें खाने का कुछ मिले।' 'हां, खोलता हूं। आप को खुशबू आ गई लगती है।' चाकू की मदद से दूसरा बंडल खोला। सलीके से रखे ब्रेड, बिस्किट तथा पूरी सब्जी के पैकेट। मैं तो यह तय नहीं कर पाया कि पहले क्या खाऊं? पारीक साहब ने पूरी साग का एक पैकेट खोल लिया। मैंने भी देखा–देखी पूरी सब्जी खाना शुरू कर दिया। बीच–बीच में हम खाने की, प्रशासन की एवं भगवान की प्रशंसा भी करते रहे। इसके बाद पारीक साहब ने एक ब्रेड का पैकेट खोला। मैंने आशंका प्रकट की, 'देख लो कहीं खराब न हो गई हो।' 'अरे पहाड़ों पर कुछ खराब नहीं होता। जैसे अपने यहां फ्रिज होता है, वैसे ही यह तो पूरा इलाका ही फ्रिज है।' हमने ब्रेड खाई बहुत स्वादिष्ट लगी। मेरा तो पेट भर गया। बर्फ पर बहते पानी से हमने हाथ धोए और कुल्ला किया। फिर वही पानी पीया भी।

दोपहर के ढाई बज गये हैं। एक घण्टा बाद सूर्य पहाड़ी की ओट में हो जायेगा तथा हमें धूप मिलना बंद हो जायेगी। दोपहर बाद अक्सर पहाडों पर मौसम खराब हो जाता है। अभी भी हमें तीखी हवायें सता रही हैं। हमने बचे तीन बंडलों को उलट पुलट कर देखा। एक में लोहे के सामान, दूसरे में कपड़े आदि तथा तीसरे में भोजन होने का आभास हुआ। हमने बाकी बंडल नहीं खोले। हम इतना सामान कमरे में ले जाने में असमर्थ हैं। पैक सामान बाहर धूप, बरसात में खराब नहीं होंगें। दवाईयों को तो हमने खिड़की से कमरे में ले लिया पर भोजन का बंडल भारी है। अभी तक गांव का कोई आदमी भी प्रकट नहीं हुआ। कुछ विचार विमर्श कर हमने सबसे भारी बंडल को खोला। हमारी आंखे विस्मय ओर खुशी से चमक उठी। इसमें ऐसे औजार निकले जिनसे हम अपनी मदद स्वयं कर सकेंगे। एक बड़ा एवं एक छोटा हथौड़ा, तीन कीले, मजबूत रस्सी, बर्फ खोदने की गेंती, धारीदार फावड़ा तथा एक सावल। अब हमारे दिलों में कुछ कर गुजरने की हसरत पैदा हुई। भोजन से तन में तथा साधन से मन में शक्ति उत्पन्न हो गई। गेंती से बर्फ तोड़ना ज्यादा मुश्किल नहीं लगा और शाम 4:30 बजे तक हमने हमारे कमरे के दरवाजे के सामने की सारी बर्फ तोड़कर ढलान में फेंक दी। रस्सी की मदद से रोशनदान में से कमरे में जा प्रयास कर मैंने कुण्डी खोल ली। पारीक साहब सामने खडे थे। उन्होंने आजादी के इस अवसर पर मुझे बधाई दी। अब हमने हथौड़ी से कीलें ठोककर पटियों द्वारा रोशनदान को मजबूती से बंद कर दिया। इस काम में हमें साढे पांच बज गए। आसमान में बादल छाने से अंधकार सा होने लगा। वैसे यहां साढे सात बजे तक अंधेरा नहीं होता हैं। आज हमने अत्यधिक श्रम किया है। तीन–चार दिन में आई शारीरिक कमजोरी के बावजूद हमारी जिजीविषा बढ़ती जा रही है। खिली धूप नई आशा तथा बादल मायूसी लेकर आते हैं। सारा काम समाप्त कर हमने दरवाजा बंद कर लिया। आज हमने दरवाजे की कुण्डी

नहीं लगाई बल्कि बाहर से लाया गया भारी सामान दरवाजे से टिकाकर सुरक्षा व्यवस्था की। तख्तों को बिछा, बिस्तर लगा हम लेट गए।

बातों का सिलसिला चलने लगा। अब हम कल यहां से निकल सकते हैं, रास्ते में बचाव दल मिल ही जाएगा। वैसे अब यहां रुक कर हम इस गांव के लोगों की मदद भी कर सकते हैं। यह बहुत बड़ा पुण्य का काम होगा। वैसे हमारे बीमार होने का खतरा भी बहुत है। हमारे पास दवाइयां भी है। यह खतरा उठाया भी जा सकता है। हमारे मन में इस गांव के लिए कुछ कर गुजरने की हूक उठी। आखिर यहां के लोगों ने हमें शरण दी थी। महाभारत की एक कहानी में भीम अपने आश्रयदाता के स्थान पर स्वयं राक्षस के पास नहीं चला गया था क्या? हमने तीन दिन में अपने इस मकान के मालिक तथा उस मजदूर के बारे में जो हमें यहां तक लाया था, सोचा ही नहीं। इसी बीच पानी बरसने की आवाज आने लगी। हमारी वार्ता थम गई, मस्तिष्क क्लांत हो गया। पता नहीं कब झपकी आ गई।

दरवाजा थपथपाने की ध्वनि से नींद खुली। जेहन में भालू का डर समा गया। 'पारीक साहब! उठो–उठो, शायद भालू आ गया है।' मैंने उठकर झट से दरवाजे की कुण्डी लगा दी। बाहर से एक इंसान का दयनीय स्वर सुनाई दिया। 'बाऊजी, बाऊजी! मदद करो।' मैंने पूछा, 'कौन है?' 'मैं रामा बाबूजी, नीचे के मकान में रहता हूं। जल्दी से दरवाजा खोलो।' अब तक पारीक साहब टॉर्च लेकर आ चुके थे। दोनों ने मिल सारा सामान हटाया एवं कुण्डी खोली। सामने एक इंसान खड़ा है। हल्की बारिश, हाड़कंपाती ठंडी हवा में बरसाती ओढकर। बाहर अभी पूर्ण अंधेरा नहीं हुआ है। मैंने उसे अंदर ले तख्त पर बिठाया एवं दरवाजा बंद किया। उसने कहा, 'बाबूजी, कुछ खाने को हो तो दो। तीन दिन से भूखा हूं।' मैंने उसे ब्रेड का पैकेट दिया। उसने आधा खा लिया। मैंने कहा कि पूरा ही खा लो तो वह बोला कि मेरा भाई घर में भूखा है। यह आधा उसे खिला दूंगा। हमने उसे बताया कि हमारे पास बहुत भोजन है। तब उसने भर पेट खाना खाया एवं दो घूंट पानी पीया। अब हमारी उत्सुकता उसकी रामकहानी सुनना चाह रही है। धीरे–धीरे उसे कुरेदा। वे लोग भी हमारी तरह बर्फ के नीचे दब गए थे। आज दोपहर में उन्होंने हमारी चिल्लाहट सुनी थी। प्रत्युत्तर में वे लोग भी चिल्लाए थे पर हम नहीं सुन पाए। भूख–प्यास से आवाज कम व कान तेज हो जाते हैं। वे दोनों भाई काफी देर तक हमारा इंतजार करते रहे। उन्हें उम्मीद थी कि उनकी आवाज सुन कर हम उन्हें निकालने का प्रयास करेंगे पर हम तो स्वयं में ही उलझे थे। शाम होने पर दोनों भाइयों ने मिल कुल्हाड़ी की मदद से रास्ता बनाया और घर के बाहर निकल कर हमें ढूंढा। बाहर पड़े दो बंडल, हमारे दरवाजे के बाहर की खुदी हुई बर्फ तथा छत पर लटकी लुंगी देखकर उसने हमारा दरवाजा खटखटाया।

कहते हैं 'खुदा मेहरबान तो गधा पहलवान।' कुछ देर पहले हम किसी गांववासी की मदद ले अपनी जान बचाना चाह रहे थे। अब गांववासी स्वयं हमारे से मदद मांगने आ पहुंचा। हमने उसे भर पेट खाना खिलाया तथा उसके भाई के लिए पूरी एवं ब्रेड का पैकेट दे उसे विदा किया। हमने उसे आश्वस्त किया कि हम इस गांव के सभी लोगों को बचाने का प्रयास करेंगे। वह हमें दुआएं देता हुआ गया और हम सोचने लगे–

देने वाला कोई और है, देता रहता दिन–रैन।
जग भ्रम मोहे करें, या सों नीचे नैन।।

इस घटना ने हमारे मस्तिष्क में यहां रुक कर लोगों की मदद करने के संकल्प को और मजबूत कर दिया। अब हमें यहां का स्थानीय निवासी भी मिल गया जिसकी जानकारी एवं श्रम का उपयोग हम कर सकेंगे। रात में तो वह शायद ही आएगा। हम भी अभी बहुत थके हुए हैं। कुछ खा पी लें। अभी बाहर का दृश्य बहुत ही अच्छा है। धुंधलके में पहाड़ों का अलग सौंदर्य होता है। यह सूर्य का ही प्रकाश है जो बर्फीली चोटियों से परावर्तित होकर आ रहा है। हमने बाहर घूमने का मानस बनाया एवं सिर से पैर तक पूर्ण परिधान धारण किया। बर्फ का स्तर लगातार कम होता जा रहा है। पश्चिमी ओर बर्फ के बीच से काले–काले चकते झांकने लगे हैं। यह पेड़ तथा बर्फ मुक्त चट्टानें हैं। चारों ओर हल्के प्रकाश में लिपटी गहन नीरवता छाई हुई है। आसमान में विभिन्न रंगों के बादल दौड़ते दिखाई दे रहे हैं। कभी–कभी तो बादल हमें छू लेते हैं। हमारी निगाहें सुदूर उत्तर में भालू को तलाश कर रही हैं। बर्फ के अंदर से कई जगह झरने का बहता पानी दिखाई दे रहा है। ग्लेशियर में से गंगा निकली हो, ऐसा दुग्ध धवल। हवा की सांय–सांय में झरने की कलकल लुप्त हो रही है। चारों ओर का दृश्य देख आंखों व मन को तृप्त कर अब हमने 'रामा' का घर ढूंढना शुरू किया। हमारे कमरे के पिछवाड़े बर्फ तोड़ने के निशान दिखाई दिए पर यहां तो सीधा ढलान है। फिसल कर गिरने का खतरा है। चलो अब सुबह ही देखेंगे। हम वापस अपने कमरे में आए और सांकल लगा ली।

हम बरसाती कपड़े उतार तख्त पर बैठ, नमकीन बिस्कुट चबाते हुये, बतियाने लगे। पारीक सा.ने मेरे ऊपर डरपोक होने का आरोप लगाया। मैं उनके साथ अमरनाथ गया या हेमकुंड चाहे गौमुख, हर जगह खतरनाक रास्ते में जाने से डर के कारण उन्हें काफी परेशानी रही। आज यहां भी मैं ज्यादा ढाल वाली बर्फ में चढ़ने उतरने में डर रहा हूं। पारीक सा. जवानी में एथलीट रहे हैं। तैरना, दौड़ना, साइकिल चलाना जैसे व्यायाम उन्होंने बहुत किये हैं। मौत का उन्हें कभी डर नहीं रहा। सदा एक ही बात कहते

हैं, 'जो ऊपर वाला करवा रहा है वही हम कर रहे हैं, वही बुलाता है, वही सही सलामत लौटा भी लेता है।' ईश्वर के ऊपर मुझे भी पूरा भरोसा है पर अकसर मैं इस बात को भूल जाता हूं। यदि हम हमारी जीवन नौका को उस खेवनहार के ऊपर छोड़ दें तो फिर काहे का दुःख। पारीक सा. और मेरे विचारों में ओर भी कई समानतायें हैं। हम ईश्वर की पूजा मूर्ति के बजाय प्रकृति के रूप में करने में ज्यादा विश्वास रखते हैं। प्राचीन स्थल किले, खंडहर, मंदिर आदि देखने का हमें शौक है। शतरंज खेलने की हम दोनों को बीमारी है। कठिन पदयात्रायें करने में हमें मजा आता है। स्वभाव में कुछ अंतर के बावजूद हमारा साथ निभ रहा है।

आज आठ मई 2001 हो गया है। ऊलजलूल सपनों के बीच रात कटी। आठ बजे करीब ही सो गये थे तो सुबह साढ़े तीन बजे ही नींद खुल गई। कल पूरी खुराक मिलने से तन में शक्ति तथा मन में कुछ कर गुजरने का उत्साह है। मैंनें मौसम देखने के लिये आहिस्ता से दरवाजा खोला फिर भी पारीक सा. की नींद खुल ही गई। 'कितने बजे होंगे?' 'साढ़े तीन से कुछ ज्यादाह।' ''और सो लेते हैं।'' ''अब नींद तो आयेगी नहीं, समय भी क्यों खराब करें।'' अंगड़ाई ले पारीक सा. उठ बैठे। तब तक मैं कमरे के बाहर निकल गया। इस समय प्रकृति का नया रूप देखने को मिल रहा है। एकदम साफ खिला मौसम। आसमान में टिमटिमाते हजारों तारों के बीच तेजस्वी चन्द्रमा, और इसी प्रकाश में दूर-दूर तक नजर आती पर्वत चोटियां। मैंने पारीक सा. को बाहर बुलाया। ''देखो इस पर्वत चोटी के पीछे भी एक और चोटी चमक रही है।'' ''हां, बादलों के कारण पहले हम इन्हें नहीं देख पाये। इन्हीं में से कोई होगी-नंदादेवी, सागरमाथा या कैलाश। वैसे यह पूरी पर्वत श्रृंखला यहां चौखंभा के नाम से जानी जाती है। पहाड़ों पर प्रातः ही मौसम सबसे ज्यादा साफ होता है। आज हमने प्रभु रचित इस महान् हिमालय पर्वत को इतने विस्तृत एवं भव्य रूप में देखा, यह हमारे लिये बहुत गौरव की बात है।

आज हमने कमरे में मोमबत्ती जलाकर उजाला किया। हमारे मटके में पानी कम रह गया था अतः आज हमें नित्य कर्मो से निवृत होने के लिये बाहर के बर्फ जैसे पानी का ही प्रयोग करना पड़ा। चार दिनों में हमें इस मौसम की आदत सी हो गई है। स्नान करना छूट गया है। दिनभर मुंह में विचित्र सा कडुवापन रहता है। पारीक सा. को चाय की भयंकर लत है, यहां फंसने के बाद चार-पांच बार चाय का नाम लेकर काम चला लेते हैं। भगवान को याद करने के बाद आज की कार्ययोजना शुरू की। पांच बजे करीब हम बाहर पड़े दोनों बंडल को खींच कर अंदर लाए। एक में प्लास्टिक शीट एवं कंबल निकले। दूसरे में मोमबत्तियां, माचिसें, टार्च, बिस्किट्स तथा बीकानेरी नमकीन की थैलियां निकली। अब हमारे मुंह में पानी आना ही था। पहले पेट पूजा की। सब आइटम चख डाले। अब पचाने के लिये भी कुछ चाहिये। पारीक सा. ने झट डिबिया निकाली। मैंने इलायची एवं लौंग ली, पारीक सा. ने सुपारी मुंह में डाली। अब हम गांव के लिये कुछ करने का मानस बना कमरे से बाहर आ गये।

हम रामा के घर की ओर गये। सामने चार खच्चर जमीन से खुरच-खुरच कर घास चरते नजर आये। शायद ये आज ही बाहर निकले हैं। रास्ते में अब बर्फ बहुत कम रह गई है। फिसलने का खतरा नहीं रहा। रामा के घर बाहर से कुंडी लगी है। जोर-जोर से आवाजें दी तो नीचे के छपपर में से दोनों भाई निकल कर आये। वे अपने मवेशियों को संभाल रहे हैं। हमने उनसे गांव में चल, लोगों के हालचाल पूछने के लिये कहा। रामा ने मेरे से ब्रेड के दो पैकेट मांगे और कहा 'बाबूजी, बस अभी दस मिनट में इन दो खच्चरों को और खड़ा कर दूं, फिर हम नीचे देखने चलते हैं।'' ठीक भी है, पहले आदमी स्वयं की सोचता है, फिर अपनी धन-सम्पत्ति की। सेवा तो इस सबके बाद है। हम खाली हाथ आ गये थे। मैं वापस कमरे में गया। मैंने अपने सामान तख्ते पर फैलाये तथा बैग में खाद्य सामग्री भरी। पीने के पानी की केटली भी भर कर साथ ली और तुरंत रामा के पास छपरे में आ गया। रामा ने मेरे से ब्रेड ली तथा चार-चार टुकडे गुड़ के साथ खच्चरों को खिलाये। धीरे-धीरे उसने जानवरों को खड़ा कर छप्पर से बाहर ठेल दिया। मैंने उन्हें बिस्किट तथा नमकीन दिये जिसे वे काम करते-करते ही खा गये। थोड़ी जान आने पर रामा का छोटा भाई गोविंद बोला, ''बाबूजी ये खच्चर चल पड़ेगें तो इनके सहारे हम सब भी निकल लेंगें। ऐसी बरसात व बर्फ मैंने अपनी जिंदगी में नहीं देखी। क्या पता आगे रास्ता है भी या नहीं? जरा सी बारिश में रास्ते टूट जाते हैं। हम मेहनत कर फिर रास्ता बनाते हैं। यहां तो हम पहाड़ की मजबूती देखकर बसे हैं। हमारे मकान भले ही बर्फ में दब गये हों पर पहाड़ से कहीं मिट्टी पत्थर नहीं गिरा है। अगर कच्चा पहाड़ होता तो ऐसे हिमपात के बाद तो हम पचासों फुट नीचे कब्र में दब चुके होते। हमारे बुजुर्गो ने जहां भी गांव बसाये हैं पहले पहाड़ की मजबूती को देखा है।'' वह युवक हमें बहुत कुछ समझा गया और हम सिर्फ सहमति में सिर हिलाते रहे।

मैंने गोविंद से हमारे आश्रयदाता बद्री के बारे में पूछा। बद्री ने स्वयं के सोने का कमरा तो हमें दे दिया। अब वह कहां होगा उन्हें भी पता नहीं है। इसके साथ ही हमें हमारे मार्गदर्शक भोला की भी चिंता हुई। गोविंद ने बताया कि उसका कोई घर यहां नहीं है। वह तो किसी के भी घर के आंगन में सो जाता है। जो लोग मकानों के अंदर सोये होंगे वे तो सब सही सलामत मिल ही जायेंगे। यहां गांव में पचास-एक घर तो हैं ही। हम दिन भर में शायद सब घरों के अंदर झांक पायें। हम बगल वाले मकान की ओर बढे। 'यहां जानकी लाल और उसका लड़का रहता है।' आवाज देने पर भी अंदर से कोई

जवाब नहीं आया। दरवाजे के बाहर अभी भी एक फुट बर्फ जमी हुई है। हमें यह बर्फ हटानी होगी एवं यह दरवाजा भी तोड़ना पड़ेगा। 'हमारे कमरे में बहुत सामान पड़ा है, जिसकी जरूरत हो ले आओ। गेंती, फावड़ा, सब्बल, सावल, हथौड़े, कीलें।' मैं रामा की ओर मुखातिब होकर बोला। 'हां, मैंने रात में देखे थे।' रामा ने कहा। रामा को अकेले हमारे कमरे में जाने में संकोच हो रहा था। हमारी भी बार–बार कमरे में जाने की श्रद्धा नहीं थी। जब मैंने उसे बताया कि सारा सामान सरकारी है तब वह कमरे में गया। इध ार गोविंद ने छपरे की पुआल हटाई तो अंदर से भेड़ों के मिमियाने की घुटी–घुटी सी आवाजें सुनाई दी। औजार आने के बाद बर्फ हटाने में समय नहीं लगा। रामा छपरे से नीचे कूदा तथा अंदर से कुंडी खोली। दरवाजा खुलते ही एक गर्म दुर्गंध का झोंका आया। बीस पच्चीस भेडें तथा एक घोड़ा यहां पसरे पड़े हैं। शायद कुछ भेड़े मर भी गई हों। छपरे के अंदर एक कमरा है जो रामा के हाथ लगाते ही खुल गया। कमरे में फर्श पर गुदड़ियों में लिपटे दोनों बाप बेटे बेहोश पड़े हैं। गोविंद ने हाथ लगाकर देखा, सांस चल रही है। मैंने मुंह पर पानी के छींटे मारे, रामा तथा गोविंदा ने उनके तलवे तथा हथेलियां मसली। पारीक सा. ने केटली के ढक्कन से दोनों के मुंह में पानी डाला। ऐसे समय मैं तो बिल्कुल संज्ञाशून्य हो गया, इन्हें होश में लाने के लिये क्या करें? लेकिन मुसीबतों में पले पहाड़ के बेटों के पास अभी कई उपाय हैं।

हमें एक घर में ही घण्टाभर हो गया है और अभी तक हम कुछ कर भी नहीं पाये हैं। अभी तो बहुत घर हैं, महिलाऐं, बच्चे भी हैं। सबकी व्यवस्था देखना हमारे बस की बात तो नहीं है। फिर भी कुछ करना तो है ही। पारीक सा. ने बुखार से तपते बेटे के सिर पर रुमाल गीला कर पट्टी लगाई। गोविंद ने सामान ढूंढ कर आग जलाई। रामा भेड़ों को संभालने लगा। कुछ ही देर में बेटे को होश आया। मैंने पहले उसे पानी पिलाया फिर एक बिस्किट खिलाया। तब तक पारीक सा. हमारे कमरे में जाकर इलेक्ट्राल पाउडर की थैली सहित कई दवाइयां ले आये। धीरू नाम के उस लड़के को इलेक्ट्राल के घोल के साथ बुखार उतारने की गोली दी। धीरू ने ठंड लगने की शिकायत की। अब रामा को कमरे में भेज पारीक सा. ने पांच कम्बल मंगवाये। दो कम्बल धीरू को उढ़ाकर उसे सुला दिया।अब तक गोविंद ने जानकीलाल के सीने पर कपड़ा गर्म कर सेंक किया तथा चाय की पत्ती भी उबाल ली। तीनों ने चाय सुड़की, धीरू को उठाकर पिलाई तथा जानकीलाल के लिये रख दी। अब हमें अन्य मकान भी देखने हैं। पारीक सा. ने सहर्ष जानकीलाल की सेवा में रुकना स्वीकार किया।

सवा आठ बज गये हैं। तेज धूप खिली है। रामा ने जानवरों के बाड़े की अच्छी व्यवस्था कर दी है। सफाई, चारा–पानी कर स्वस्थ जानवरों को चरने हेतु छोड़ दिया। जानकीलाल के मकान के नीचे की तरफ बढ़े तो एक वृद्धा की पुकार सुनाई दी। रामा ने मिट्टी, बर्फ हटा उसके मकान का दरवाजा खोला। महिला ने रामा से पूछा, 'क्या ये सरकारी आदमी हमारे लिये कुछ लाये हैं।' रामा ने मुझे इशारा किया। मैंने एक–एक पैकिट पूरी, ब्रेड तथा बिस्किट का उसे दे दिया। इस घर में इतनी समस्या नहीं है। महिला अपने पति एवं बेटी के साथ मकान में रह रही हैं। इतनी देर में रामा ने दक्षिणी ओर का मकान देखा। वहां दो वृद्ध भूखे मिले। उन्हें खाना पानी दिया। इतने में ही मुझे हेलिकॉप्टर की आवाज सुनाई दी। मैं हाथ का सामान छोड़ अपने कमरे की ओर भागा। हेलिकॉप्टर आने से पूर्व ही मैं पारीक सा. की लुंगी ऊंचे स्थान से लहराने लगा। गांव के नजदीक आने पर हेलिकॉप्टर स्थिर हुआ और उसमें से एक सीढ़ी लटकाई गयी। कांधे पर भारी बैग बांधे एक–एक कर पांच सैनिक क्रमशः बर्फ की ढलान पर उतरे। हे. लिकॉप्टर सीढ़ी खींच वापस चला गया। मैंने लुंगी समेट मेरी ओर बढ़ते पांचो जवानों का स्वागत किया।

सैनिकों की वर्दी पर लगे फीते से मैं जान गया कि ये सैनिक बी.एस.एफ.(बोर्डर सेक्यूरिटी फा. ॅर्स) अर्थात सीमा सुरक्षा बल के हैं। मैंने मुस्करा कर हाथ बढ़ाया। सैनिकों के नेता ने आगे बढ़कर फौजी स्टाइल में तपाक से मेरे से हाथ मिलाया। मेरा कमजोर हाथ झन्ना गया। ''मैं कैप्टन पी. दुबे, बी.एस.एफ से।'' ''मैं हेमराज बंसल बी.कॉम.एल.एल.बी.एकेडमिक चार्टर मेम्बर लायंस क्लब बारां साऊथ। राजस्थान से। मेरा लंबा सा परिचय सुन कैप्टन चकरा गया। ''राजस्थान से? क्या आप यहां के निवासी नहीं हो।'' ''नहीं, हम दो ट्यूरिस्ट भी यहां फंस गये हैं। देखो वे हमारे साथी आ रहे हैं।'' मैंने हमारी ओर आते पारीक सा. की तरफ इशारा करके कहा।'' ''अरे फारेनर्स भी हैं यहां। शायद तुम उनके गाइड बन कर आये हो।'' ''नहीं, वे विदेशी नहीं हैं।'' मैंने अपनी हँसी को रोकते हुये जवाब दिया। तब तक पारीक सा. ने आकर कैप्टन से हाथ मिलाया। मैंने परिचय दिया ''मि. बजरंगलाल पारीक, बारां नगरपालिका में वरिष्ठ लिपिक। और पारीक सा. आप हैं मि. दुबे। हमें बचाने आये हैं। बी.एस.एफ. से''। ''इन्हें आना ही चाहिये, जरा देर से आये, चलो फिर भी ठीक है।'' पारीक सा. ने थोड़े उलाहने के साथ उनका स्वागत किया।

कैप्टन और उनके चारों साथियों के साथ हम अपने कमरे में पहुंचे। सैनिकों ने अपने कंधों पर टंगे बैग उतारे। एक जवान ने तुरंत वायरलैस सेट चालू किया। कैप्टन ने यहां सुरक्षित उतरने, मौसम खुलने तथा हमारे बारे में रिपोर्ट दी। अब कैप्टन ने हमारी दास्तान सुनी। मैंने उन्हें विस्तार से हमारे यहां आने, कमरे में ठहरने, बर्फ में फंसने, प्रयास कर निकलने तथा अभी तक किये बचाव कार्यों की जानकारी दी। साथ ही यह भी बताया कि अब यहां किस चीज की जरूरत है। कैप्टन ने अपने साथ आये एक चि. कित्सक तथा तीनों सैनिकों को तुरंत गांव के लोगों की मदद हेतु भेज दिया। कैप्टन ने पुनः वायरलेस पर बात कर गांव की आवश्यकतायें बताई। कैप्टन भी रुबरू जाकर गांव की हालात जानना चाहते हैं

और हमें उनसे कई सवाल पूछने हैं। लिहाजा हम तीनों साथ–साथ चलते बातें करते रहे। कैप्टन से हमें पता लगा कि इस गांव का रास्ता कई जगह से कट चुका है जिसके दुबारा चालू होने की कोई संभावना नहीं है। पूर्वी ओर की पहाड़ी पार कर रास्ता बनाने पर विचार चल रहा है। इसमें सत्रह हजार फीट ऊंचाई पार कर आना पड़ेगा। इससे तुंगनाथ से इस गांव की दूरी साढ़े पांच किलोमीटर से बढ़कर बारह किमी हो जायेगी। अभी हम यहां फंसे लोगों को निकालने का ही प्रयास कर रहे हैं। हमारे जवान तुंगनाथ से पुराने रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं और इधर से हम आगे बढ़ेंगे। हमारे जवान तो रस्सी के झूलों पर आने जाने हेतु प्रशिक्षित हैं। आम आदमी एवं जानवरों को तो ऐसे नहीं निकाल सकते ना। तुंगनाथ में जनता ने हंगामा मचा रखा है। रोज नारेबाजी, प्रदर्शन हो रहे हैं। भूख हड़ताल चल रही है। विधान सभा में खूब शोर–शराबा हो चुका है तथा लोकसभा में भी प्रश्न पूछा गया है। अब सरकार क्या करे? मौसम खुलेगा तभी तो कुछ हो पायेगा। अब यहां हैलीपेड तो है नहीं। दो दिन तो तुंगनाथ का हैलीपेड ठीक करने में ही लग गये। पहले दिन तो हमने चमोली से ही उड़ान भरी थी तब तो हम इस जगह को ढूंढ ही नहीं पाये। कल किसी ने लाल कपड़े से संकेत दिया तो हम सामान उतार पाये। हैलीकॉप्टर की भी एक ही उड़ान हो पाती है। शाम को तो मौसम खराब ही हो जाता है। हमने कैप्टन को बताया कि लाल लुंगी लहराने का काम हमने ही किया था। कैप्टन ने हमारे इस कार्य की प्रशंसा की।

घूमते हुये हम काफी नीचे गांव में आ गये। चिलकती धूप व हेलीकॉप्टर की आवाज, सैनिकों की मदद अब तक गांव के काफी लोग आजाद हो चुके हैं। जो लोग मजबूत घरों में खाने पीने के सामानों के साथ थे उनको कुछ नहीं हुआ। पहाड़ी लोग ऐसी परिस्थिति के आदी भी होते हैं। बारह लोग बीमार हैं जिनका इलाज सैनिक डॉक्टर द्धारा किया जा रहा है। इंसानी मौत की कोई खबर नहीं है। पचासेक भेड़ें तथा पाँच खच्चर मर चुके हैं तथा कई बीमार हैं। गांव वालों के लिये यह सामान्य बात है। यहां भोजन में सामूहिक गोश्त पकाया जा रहा है। यहां की अधिकतर आबादी मांसाहारी है।

कैप्टन दुबे ने ग्यारह बजे मुख्यालय से सम्पर्क साधा। किसी मनुष्य की मृत्यु नहीं हुई यह जान सबने संतोष की सांस ली। बीमार लोगों को यहां से निकालने के बारे में कोई योजना नहीं बन पाई। कैप्टन ने भोजन सामग्री तथा ईंधन के साथ श्रमिक भेजने की मांग की ताकि यहां हैलीपेड बनाया जा सके। मुख्यालय से सूचना मिली कि सीमा सड़क संगठन के इंजिनियर टूटे मार्ग का निरीक्षण करने भेज दिये गये हैं। इधर से कैप्टन का आग्रह था कि पुराने मार्ग को भूल नये रास्ते का सर्वे करवाया जाये। इसके बाद कैप्टन ने गांव के लोगों से अभी तक हुई व्यवस्थाओं की जानकारी ली। गांव के सभी घरों को देखा जा चुका है। आवश्यकतानुसार दवाइयां, भोजन, कम्बल बांटे जा चुके हैं। गांव के लोग परस्पर एक दूसरे की मदद कर रहे हैं। कोई जनहानी नहीं हुई है। बीमार, घायल सब लोगों को बचा लिया जायेगा। हमारा आश्रयदाता बद्री भी पूर्ण स्वस्थ है तथा सेवाकार्यों में लगा हुआ है। बद्री ने कैप्टन से पशुचिकित्सक तथा चारा भी मंगवाने का अनुरोध किया। मि. दुबे ने सबकी बातें ध्यान से सुनी पर कोई उतावली नहीं दिखाई।

दोपहर बारह बजे तक हम बुरी तक थक कर कमरे की ओर लौटे। मि. दुबे तथा उनके दो साथी सैनिक भी साथ थे। सैनिकों ने अपने बैग खोल अपना खाने पीने का सामान निकाला। उन्होंने ब्रांडी पीने हेतु हमारे से भी बहुत आग्रह किया पर हमने सविनय मना कर दिया। हमने पूरी भाजी, ब्रेड खाकर अपनी भूख मिटाई। खाने पीने के बाद कैप्टन दुबे ने कहा, ''चलो अब आपका रास्ता ढूंढते हैं।'' वहां जाना बहुत सुखद होता गर हम थके हुये नही होते। मैंने तो तुरंत ही मना कर दिया। पारीक सा. ने थोड़ा सोचकर कहा, ''चलने की इच्छा तो बहुत है पर अब दमखम नहीं रहा, आप ही देख आओ। हमारे धीरे–धीरे चलने में आप भी व्यर्थ ही लेट होंगे।'' दुबे जी को हमारे से शायद ऐसी ही आशा थी। उनके जाने के बाद हम दरवाजा बंद कर सो गये। हम ज्यादा देर नहीं सो पाये। डॉक्टर व उसके साथ एक जवान ने आकर दरवाजा खटखटाया। मैंने उठकर सांकल खोली। अब यह कमरा सार्वजनिक हो गया है। सैनिक ने जानकारी दी, '' गांव के दक्षिणी ओर एक गिरे हुये छपरे में एक लड़के की मृत्यु हो गई है तथा वहां एक बालिका गंभीर बीमार मिली है। अब हमें भी भूख लगी है। कैप्टन सा. एवं हमारे अन्य साथी किधर गये हैं।'' मैंने उन्हें पूरी रिपोर्ट दी एवं रजाई ओढ़ कर वापस सो गया। वे अपने हिसाब से खायें पीयें, मुझे तो आराम की सख्त जरूरत है।

सवा दो बजे हैलीकॉप्टर की आवाज सुन पारीक सा. एवं मैं दोनों तुरंत उठ कर बाहर आये। जब तक सैनिक एवं डाक्टर भी खाना खा चुके थे। हैलीकॉप्टर में से पांच बंडल सामान नीचे फेंका गया तथा पांच सैनिक भी सीढ़ी लगाकर उतारे गये। अपना काम कर हैलीकॉप्टर चला गया। काश कप्तान सा. यहां होते तो उनसे इस हैलीकॉप्टर से हमें बाहर भेजने के लिये कहते। मैंने मन ही मन सोचा। सैनिकों ने आपस में परिचय किया। हैलीकॉप्टर का पायलेट मि. दुबे के सम्पर्क में था। मि. दुबे ने ही मार्गदर्शन कर सैनिकों एवं सामानों को सही जगह उतरवाया। दुबे जी अभी यहां से दो किमी नीचे रास्ते पर अपना काम कर रहे हैं। अभी आये सैनिकों से हमें यह जानकारी मिली। गांव के लोगों की मदद से सामानों के बंडल अलग कमरों में रखवाये गये। अब हमारे इस कमरे में तो जगह ही कहां बची है। गैस सिलेंडर, गैस ही भट्टी, आलू, प्याज, लौकी, खीरा, सेव, आटा, दाल, चावल, नमक, मसाले आदि सामान आये हैं। इसी

बीच डाक्टर आवश्यक दवाईयां लेकर गंभीर बीमार लड़की के इलाज के लिये प्रस्थान कर चुके हैं। सुनने में आया है कि लड़की का बदन बर्फ में दबे रहने के कारण काला पड़ गया है। पारीक सा. व मैं कोई पौन घंटा यह सब कार्यवाही देखते खड़े रहे इसी में हमारे को भारी थकान आ गयी। अब संभालने वाले आ गये हैं तो हमारी काम करने की सारी इच्छाशक्ति स्वतः ही लुप्त हो गई। हम स्वयं इसी सोच में डूबे रहे कि किस तरह से खीरे व सेव प्राप्त कर सकें। काफी दिनों से ताजा कुछ खाने को नहीं मिला था। हम मन मसोस पुनः अपने कमरे में जाकर सो गये।

पारीक सा. व मैं दोनों पुनः बातें करने लगे। अब हमें यहां से निकलना ही चाहिये। हमारा शरीर टूट रहा है। शायद बुखार आ गया हो। भारी मुसीबत में तो हम बीमार नहीं हुये। अब जब भर पेट खाने को मिल रहा है तो शरीर को रोग जकड़ने लगा है। कल तक हममें स्व रक्षार्थ उत्साह था और जब मृत्यु का भय पूर्णतः समाप्त हो गया तो शरीर आराम मांग रहा है। कैसा विचित्र विरोधाभास है–अभावों में स्वस्थ, बाहुल्य में बीमार। इस वातावरण में जीते हुये हमें आज चार दिन हो गये हैं। कप्तान सा. के आते ही हम उनसे अनुरोध करेंगें, हमें तो किसी तरह यहां से निकालें। चार तो बज ही गये हैं। अब तो कल हैलीकॉप्टर से ही जाना संभव हो सके शायद। ''आज यहां अपने को ताजा खाना मिल जायेगा, बहुत सारा सामान आया है।'' ''पर मैं तो उनके हाथ का बनाया खाना नहीं खा सकता। वे तो मांस भी बना रहे हैं।'' ''तो मांस तेरे खाने में थोड़े ही डालेंगें।'' पारीक सा. ने मुझे समझाना चाहा। ''पर मैं तो नहीं खा सकता। मैं तो कैप्टेन से दो तीन खीरे व सेव मांग लूंगा और बाकी ब्रेड आदि हैं ही।'' मैंने दृढ़तापूर्वक कहा। इसके बाद हमारे बीच चुप्पी छा गई और झपकी लग गई।

पांच बजे कैप्टन कमरे में आये। भनक पा हम उठ बैठे। दुबे जी के चेहरे पर चमक थी। बोले,'' कैसे उदास बैठे हो, आप लोगों को तो गांव वालों के बीच होना चाहिये था।'' ''बहुत थकान है, शायद बुखार आ गया है।'' कप्तान सा. ने मेरे कपाल पर हाथ रखा फिर बोले, ''हां, आपको तो तेज बुखार है। अभी डॉक्टर आवें तो दवा ले लेना।'' ''हां दवाईयां तो हमारे पास भी हैं। आप तो दुबे जी अब हमें किसी तरह नीचे भेजने की व्यवस्था करवा ही दें।'' पारीक सा. अधीर हो कर बोले। ''हां निकाल देते हैं आपको यहां से। आपने सुबह ही बोला होता तो सीढ़ी से हैलीकॉप्टर पर चढ़ा देते।'' ''सुबह तक तो हम यहां रुक सेवा कार्य करना चाहते थे, पर अब थकान ने हिम्मत तोड़ दी है।'' ''चलो देखते हैं, अगर रोपवे तैयार हो गया होगा तो आज ही आपको झूले पर बिठाकर तुंगनाथ पहुंचा दूंगा। आप लोग झूले से न जाना चाहो तो कल तक हैलीकॉप्टर का इंतजार कर लो। हिम्मत तो आपको दोनों तरीके से ही दिखानी पड़ेगी।'' कप्तान सा. हमें उलझन में छोड़ चले गये। बुखार की गोलियां खाने के साथ ही हमारा वादविवाद शुरु हो गया। मौसम की अनिश्चितता तथा एक दिन बचाने के सोच में हमने आज ही निकलने का निर्णय ले लिया।

हमारा निर्णय होने के बाद पारीक सा. फुर्ती से बाहर चले गये। मैंने उनसे कुछ नहीं पूछा और मैं यहां से प्रयाण की तैयारी करने लगा। सामान जमाने के बाद लिहाफ में दुबक कर मैं पारीक सा. का इंतजार करने लगा। मैं रोपवे की कल्पना में खोया था तभी पारीक सा. आ गये। उनके हाथ में दो सेव फल तथा दो खीरा ककड़ी थी। ''तेरी बड़ी इच्छा थी ना–मैं मांग लाया। अभी पन्द्रह मिनट में तुंगनाथ जी जाने वाली पगडंडी पर पहुंचना है। क्या है साहब हमारी सेनावाले भी? रास्ता तैयार भी कर दिया। हमें पैदल भी बहुत कम चलना पड़ेगा। हम बस घंटा भर में तुंगनाथ पहुंच जायेंगें।'' पारीक सा. की बातें सुन मेरे चेहरे पर चमक आ गई। अभी हमारे पास दस मिनट हैं। चलो फ्रूट्स ही खा लेते हैं। एक सेव व एक खीरा खा बाकी बचे फल तथा कुछ बिस्किट्स हमने रास्ते के लिये बैग में डाल लिये। सर्दी एवं बरसात के अधिकतम कपड़े पहन लिये। पानी की केटली भी भरकर कंधे पर टांग ली। हम पूर्णतः पहाड़ी ट्यूरिस्ट बन कमरे के बाहर निकले। गांव के लोगों को हमारे जाने की खबर मिल गई थी। कई लोग हमें विदा करने आये। बद्री एवं भोला का हमारे माथे कर्जा है। हम उनके प्रेम से इतने भावविहल हो रहे थे कि हमारी हिम्मत उन्हें रुपये पैसे देने की नहीं हुई। रामा पारीक सा. के पैरों में गिर रोने लगा। सभी से गले मिल हमने विदा ली। विदाई की इस बेला में मेरी आंखें भी आंसुओं से भर गई। बोझिल मन से हम सेना के जवानों द्वारा बनाये झूलों पर बैठ गये। हमारे सामानों के बैग हमारे कंधों पर टंगें थे। सुरक्षा के लिये सेना वालों ने हमारी कमर में बैल्ट बांधकर उसे झूले के तार से जोड़ दिया था। डर के मारे यदि हम गिर भी जायें तो तार के सहारे लटके रहेंगे। पास खड़े सैनिक ने हमें हिम्मत रखने तथा तार से हाथ न छोड़ने की नसीहत दी। मि.दुबे ने हमें 'बेस्ट ऑफ लक' कहा। मैंने झूला रवाना होते ही एक हाथ उठा सबसे टाटा किया। झूला एक मजबूत तार पर गिर्री में नट बोल्ट फंसा कर टांगा गया था। झूले के नीचे एक रॉड पर दोनों ओर रस्सी बांधी गई थी। इस रस्सी का एक सिरा नीचे के तथा दूसरा सिरा ऊपर के सैनिकों के नियंत्रण में था जिसे खींचने हेतु बेरिंग वाली चरखी लगाई गई थी। ऊपर वाले सैनिक पहिया घुमाते रहे और हम आगे बढ़ते गये।

आज ही हमारी वापसी अत्यन्त आश्चर्य की बात है। यह सैनिक इंजिनियरिंग का कमाल है। सैनिकों के साथ यह हमारी भी कठिन परीक्षा है। हमें मजबूत देखकर ही दुबे जी यह जोखिम ले पाये थे। गांव के लोगों, महिलाओं, बच्चों को निकालने के लिये तो अभी बहुत कुछ करना होगा। जानवरों के लिये तो

रास्ता चाहिये ही। वैसे दुबे जी के हावभाव से लगता नहीं कि प्रशासन यहां दुबारा लोगों को बसने देगा।

पहली घाटी पार करने में मात्र पाँच मिनट लगे। चरखी ढीली की गई और हम साइकिल की गति से आगे बढ़े। गहरी खाई देखकर पूरे शरीर में सिहरन दौड़ गयी। पहले पड़ाव से दूसरे झूले तक आने हेतु कोई आध किमी चलना पड़ा। पुनः उसी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा पर इस बार उतार कम था तथा झूला अपेक्षाकृत कम ऊंचाई पर था जिससे हमारे मन में भय का संचार नहीं हुआ। तीसरी बार पुनः इसी प्रक्रिया से अंतिम बाधा पार की गई। यहां कई सैनिकों के साथ नागरिक भी प्रतिक्षारत थे। ओह! आश्चर्य मेरे छोटे भाई अशोक व रामू तथा पारीक सा. के कुंवर सा. प्रवीण जी यहां खड़े हैं। हमने उन्हें दूर से ही पहचान लिया पर वे शायद हमें नहीं पहचान पाये। जमीन पर पैर रखते ही मैं हर्ष से पाग. लों की तरह चीखा, ''अशोक–रामू'' तब वे हमारे निकट पहुंचे। हममें से एक मिनट तक कोई कुछ नहीं बोला फिर अशोक ने कहा,'' चलो, घोड़े कर रखे हैं।'' पारीक सा. व मैं दोनों चुपचाप घोड़ों पर जा बैठे। मात्र डेढ किमी वह भी उतार का रास्ता है। पूरे रास्ते हमारे बीच विशेष बातचीत नहीं हुई। हमारे तीनों परिजन सख्त नाराज लग रहे थे तथा हम अपराध बोध से दबे जा रहे थे। मैंने पूछा, 'आप लोग यहां कैसे पहुंचे?' रामू ने बताया, 'बारां पुलिस स्टेशन में वायरलेस से मैसेज गया था। हम आते समय प्रवीण ाजी को फोन करके चले थे। मुजफ्फरनगर से साथ हो गए। आप लोगों के बचने की कोई उम्मीद नहीं बताई गई थी। आज सुबह ही खबर मिली कि कोई नहीं मरा है, तो हमें आपके आने की उम्मीद हो गई। अभी शाम को पता लगा कि दो टूरिस्ट आ रहे हैं तो हम यहां देखने आ गए। आपने कपड़े ही ऐसे पहन रखे थे कि हम पहचान नहीं पाए।' श्री पंडातीर्थ धर्मशाला पहुंच हम घोड़ों से उतरे। अशोक, रामू व प्रवीणजी ने भी इसी धर्मशाला में ही कमरा ले रखा है। मैंने बैग में से चाबी निकाल हमारे कमरे का ताला खोला तथा हम चुपचाप अपने बिस्तरों में दुबक गए। यहां हमें बहुत सारे सवाल झेलने पड़े। थकान के मारे हम जवाब नहीं देना चाह रहे हैं। हमारे परिजनों को हुई तकलीफ से हमें शर्मिंदगी हो रही है। भोजखंडी में खाई गोली का प्रभाव भी अब समाप्त हो गया है। हमने पुनः एक–एक काम्बीफ्लेम गोली खाई तथा बीमार बन कर सो गए।

दुर्भाग्यपूर्ण व कष्टसाध्य पर रोमांचकारी यात्रा का समापन तो हुआ लेकिन हमारा बखेडा समाप्त नहीं हुआ। पुलिस व प्रशासन हमसे पूछताछ करना चाहता है, धर्मशाला स्टाफ व परिजन हमारी आपबीती सुनना चाहते हैं तथा पूरा गांव हमारी कल्पित बहादुरी के किस्से सुनने को उत्सुक है। रात में हमने पुनः बुखार की दवाइयां ली। हम दोनों साथी वाकई पूर्णतः बीमार हो चुके हैं। अब तो यहां से चुपचाप शीघ्रातिशीघ्र निकल जाने में ही भलाई है। रात में ही योजना बन गई थी। प्रातः पांच बजे छह घोड़े आ गए। आज 9 मई 2001 बुधवार है। हमने छः बजे चोपता में घोड़े छोड़े। वहां से एक जीप से साढे आठ बजे गुप्तकाशी पहुंचे तथा वहां से मुंहमांगे किराए पर एक टाटा सूमो जीप हरिद्वार के लिए की। हम आज चोरों की तरह भाग रहे हैं। कल के बहादुर आज एकदम डरे, थके, सहमे, गुमसुम हमारे परिजनों के पहरे में यात्रा कर रहे हैं। हमें लगातार बुखार आ रही है तथा पुलिस द्वारा पूछताछ के लिए रोके जाने का डर है इसलिए हम तुरंत यहां से निकलना चाहते हैं। हरिद्वार पहुंच हमने टेक्सीवाले को विदा किया एवं हम मुजफ्फरनगर तक बस में आए। कुंवर साहब प्रवीणजी ने बहुत जिद की लेकिन वे सिर्फ पारीक साहब को ही रोक पाए। हमने दिल्ली आकर देहरादून एक्सप्रेस पकड़ी। कुछ प्रयास के बाद आरक्षण मिल गया। मैं पूरी रात भंयकर गर्मी से परेशान रहा। कोटा प्लेटफार्म पर तारीख 10 मई 2001 गुरुवार सुबह सात बजे उतरे। मैंने साबुन से हाथ–पैर व मुंह धोकर पांच दिन से जमा मैल उतारा। बारां की रेलगाडी में बैठ जब मैं 10 बजे प्लेटफार्म पर उतरा तो भावविह्वल हो गया और मेरी आंखों में आंसू आ गए। घर पहुंच मैं बिस्तर पर पसर गया। पत्नी सेवा में आ जुटी व छोटा भाई हरि डाक्टर को लेने दौड़ पड़ा। मैं पूर्णतः बीमार बहुत सारी दवाइयों के साथ कमरे में बंद हो गया। घंटे भर में ही अनेकों मित्र व रिश्तेदार आ जुटे। मुझे मर्ज बढ़ता गया और शाम को मुझे अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। मैं अर्द्धचेतनावस्था में पड़ा रहा। मेरा कॉटेज मित्रों व रिश्तेदारों से भरा रहता। रामू तुंगनाथ व भोजखंडी की घटना सुना–सुना कर परेशान होता रहता। मैंने चुप्पी साधे रखी। हां, हूं और ना सिर्फ तीन अल्फाज मेरे मुंह से निकल रहे थे। हाथ–पैर, होंठ, आंखें तक हिलाने की श्रद्धा मेरे में नहीं बची थी। 10 मई रात से 20 मई प्रातः साढे नौ बजे तक अस्पताल में भर्ती रह मैं हिमालय की थकान उतारता रहा। बीमार पारीक साहब का उनकी बेटी–दामाद घर पर इलाज करा रहे हैं ऐसे समाचार हमें मिलते रहे। मेरी कई जांचें हुई पर बीमारी का पता नहीं लगा। इस अवधि में कई नसीहतें सुनने को मिली पर मेरे ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जो हमने इस यात्रा में देखा है, उसे कौन नहीं देखना चाहेगा। दुर्घटनाएं होती रहती है पर यह अदम्य साहसी इंसान नए–नए खतरों से खेलता रहता है। क्यों? मैं अगले वर्ष पुनः हिमालय दर्शनार्थ जाने की तमन्ना रखता हूं। ईश्वर ने चाहा तो मेरी ये इच्छा अवश्य पूरी होगी।